IISR, CALICUT
00980

भारत के किसान

भारत के किसान

भाग १

पंजाब, हिमाचल प्रदेश, जम्मू और कश्मीर

लेखक
महेन्द्रसिंह रन्धावा, डी. एस-सी.
प्रेमनाथ

★

हिन्दी रूपान्तर
ओमप्रकाश शर्मा

ICSSR 980.
208

प्रकाशक
भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद्, नयी दिल्ली

Central Plantation Crops
Regional
673011
Acc. No. 980
Date 18-12-1978

©
सर्वाधिकार सुरक्षित
1963

631
K3

प्रधान सम्पादक	:	डी० राघवन
सम्पादन और प्रोडक्शन	:	ओमप्रकाश शर्मा
सहायक सम्पादक (प्रोडक्शन)	:	मुनीन्द्रकुमार जैन रामकृष्ण पाराशर
उप-सम्पादक	:	शक्ति त्रिवेदी विनय कुमार भटनागर

★

प्रकाशक	:	भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद् के लिए श्री दलीपसिंह, अवर सचिव द्वारा प्रकाशित
मुद्रक	:	जगदीशप्रसाद अग्रवाल, एम. ए., दी एजुकेशनल प्रेस, आगरा
प्रथम संस्करण	:	4,000
तिथि	:	अगस्त 1963
मूल्य	:	8.75 रु०
प्राप्ति स्थान	:	व्यवसाय प्रबंधक, भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद्, कृषि भवन, नयी दिल्ली

भूमिका

मुझे यह जान कर प्रसन्नता हुई कि भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद् 'भारत के किसान' नामक एक पुस्तकमाला प्रकाशित कर रही है। यह बड़ा अच्छा और सामयिक प्रयास है।

भारत एक विशाल देश है जिसका क्षेत्रफल 1.3 करोड़ वर्गमील है। इसके समुद्र तट की लम्बाई 3 हजार मील है। दलदली चिकनी मिट्टियों से लेकर यहाँ चट्टानी मिट्टी तक पायी जाती हैं। भारत का धरातल समुद्र तल से 29 हजार फुट तक ऊँचा है। हिमाच्छादित पर्वत, वन, चरागाहें, उपजाऊ मैदान और रेगिस्तान, सभी प्रकार के भू-प्रदेश भारत में हैं। यहाँ एक ओर झुलसती धूप और गर्म जलवायु है तो दूसरी ओर सुहावना और स्वास्थ्यकर मौसम भी मौजूद है। सन् 1961 की जनगणना के अनुसार भारत की आबादी 43 करोड़ से कुछ अधिक है और यहाँ पर साढ़े पांच लाख से भी ऊपर गाँव हैं। इन सभी गाँवों में कृषि जीवन की विविध झाँकियों के दर्शन होते हैं क्योंकि आज भी हमारे देश का आर्थिक आधार खेती ही है। राष्ट्रीय आय का 50 प्रतिशत से अधिक हमें खेती से मिलता है और 70 प्रतिशत से अधिक मनुष्य खेती में लगे हुए हैं। यही कारण है कि राष्ट्रीय उत्पादन, रहन-सहन और प्रति व्यक्ति राष्ट्रीय आय को बढ़ाने के लिए एक सशक्त कृषि-आधार बनाना जरूरी है। खेती की सफलता के लिए जहाँ उन्नत बीज, उर्वरक, खाद, औजार, सिंचाई, कृषि क्रियाओं का ज्ञान, फसल-सुरक्षा सम्बन्धी उपाय, हाट व्यवस्था, पैदावार को लाने और ले जाने सम्बन्धी सुविधायें जरूरी हैं, वहाँ यह भी जरूरी है कि किसान इन सब में दिलचस्पी लें। कोई भी कार्यक्रम कितनी भी सूझ-बूझ से क्यों न बनाया जाये, उसकी सफलता गाँव के उन लाखों किसानों पर निर्भर करती है जो प्रत्यक्ष खेती करते हैं।

भारतीय जनता की सांस्कृतिक एकता अधिकांश में किसान के आदि रूप से ही विकसित हुई है क्योंकि कृषि-भूमि, उसका प्रबन्ध और उसके उपयोग की कहानी ही तो मानव सभ्यता की कहानी है। हमारी संस्कृति आज भी इसीलिए सजीव बनी हुई है क्योंकि खेती आज भी ग्रामीण भारत में जीवन का आधार बनी हुई है। ग्रामीण भारत का केवल एक ही धर्म रहा है और वह है खेती। इसलिए यदि भारत को समझना है तो यहाँ के ग्रामीण जीवन के शक्तिदायक स्रोतों को पूरी तरह समझना होगा।

ग्रामीण भारत की शक्ति उन स्वस्थ सांस्कृतिक परम्पराओं और इतिहास में निहित है जो हमें अपने पुरखों से धरोहर के रूप में प्राप्त हुए हैं और जिन पर हमारी बुनियादी एकता आधारित है। यही कारण है कि बाहर से देखने पर यहाँ विभिन्न

प्रकार की विविधता के भले ही दर्शन होते हों, किन्तु बाहरी विभिन्नता और अनेकता के गर्भ में यहाँ एक ऐसी समन्वयकारी एकता छिपी हुई है जिसने देश के सभी भागों को एकता की लड़ी में पिरोया हुआ है। 'भारत के किसान' पुस्तकमाला में हमें इन्हीं तथ्यों के बार-बार दर्शन होते हैं।

'भारत के किसान' के प्रथम भाग में पश्चिमोत्तर भारत के राज्य पंजाब, हिमाचल प्रदेश तथा जम्मू और कश्मीर के देहाती जीवन की झलक मिलती है। देश के स्वतन्त्र होने के बाद उपरोक्त तीनों राज्यों ने काफी प्रगति की है। इनमें पंजाब विशेष रूप से उल्लेखनीय है।

पश्चिमोत्तर भारत के ये राज्य सम्पूर्ण देश के लिए शुरू से ही सजग प्रहरी का काम करते रहे है। किन्तु हमारी उत्तरी सीमा पर चीन द्वारा आक्रमण किये जाने के कारण इन तीनों प्रदेशों का और विशेष रूप से इनके उत्तरी सीमावर्ती क्षेत्रों का आज असाधारण राष्ट्रीय महत्त्व हो गया है। प्रकृति ने इन क्षेत्रों को ऐसे विविध बहुमूल्य साधनों से सम्पन्न किया है कि यदि इनका उचित ढंग से विकास किया जाय तो यहाँ के लोगों का जीवन काफी समृद्ध बन सकता है।

प्रस्तुत पुस्तक पश्चिमोत्तर भारत के उपरोक्त तीनों प्रदेशों की भौगोलिक स्थिति, जलवायु, मिट्टियों, फसलों व कृषि क्रियाओं और ग्राम संगठन का विवरण देते हुए लोक संस्कृति के सन्दर्भ में यहाँ के कृषकों की जीवनी के रूप में लिखी गयी है और इस क्षेत्र की एक बड़ी माँग को पूरा करती है। विषयानुकूल चित्रों के समावेश से इस पुस्तक में मानवीय स्पर्श का पुट पड़ गया है जिससे इसकी उपयोगिता और बढ़ गयी है। आशा है यह पुस्तक रुचिकर और लाभदायक सिद्ध होगी।

राम सुभग सिंह

नयी दिल्ली
29 जुलाई, 1963

(राम सुभग सिंह)
कृषि मन्त्री, भारत सरकार

प्रस्तावना

जब से पं० जवाहरलाल नेहरू ने सामुदायिक विकास योजना का उद्घाटन किया है तब से ग्रामीण भारत के बारे में देश और विदेश में काफी दिलचस्पी पैदा हो गयी है। आम जनता में भी भारत के विभिन्न राज्यों के किसानों के जीवन को जानने की उत्सुकता दिखाई पड़ती है कि वे किस तरह के वातावरण में और कैसे घरों में रहते हैं, उनके खेत की मिट्टी किस तरह की है, वे कौन कौन सी कृषि क्रियायें काम में लाते हैं, वे क्या खाते हैं और वे अपना मनोरंजन किस तरह करते हैं। कश्मीर से लेकर त्रिवेन्द्रम तक और बम्बई से लेकर शिलांग तक हमें भारतीय किसान हर स्थान पर या तो खेतों को जोतते मिलेंगे या उन्हें काटते मिलेंगे या खलिहानों में अनाज को बरसाते मिलेंगे। उत्तर में हिमाच्छादित हिमालय से लेकर दक्षिण में नारियल के बगीचों तक हमको न केवल जलवायु और मिट्टी की दशाओं में ही विभिन्नता मिलेगी वरन् देहाती जीवन में भी ऐसी विविधता दिखाई पड़ेगी जो हमें आश्चर्य में डाल सकती है।

पिछले काफी समय से एक ऐसी पुस्तक की आवश्यकता अनुभव की जा रही थी जिसमें भारत की खेतिहर जातियों के न केवल रहन-सहन, गाँव, घर और संस्कृति के बारे में सूचनायें उपलब्ध हों बल्कि अलग अलग प्रदेशों की कृषि क्रियायें, जलवायु, मिट्टियाँ, बोयी जाने वाली फसलों आदि की भी सूचना मिल सके। 1955 में भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद् के परामर्शदात्री मण्डल में मैंने यह सुझाव रक्खा था कि उपरोक्त तथ्यों पर आधारित 'भारत के किसान' नाम से एक पुस्तकमाला प्रकाशित की जाय। क्योंकि भारत एक विशाल देश है और अलग अलग प्रदेशों में कृषि सम्बन्धी विभिन्नतायें है इसीलिए जो लोग कृषि प्रशासन से सम्बन्धित हैं उनको भी सम्पूर्ण भारत की खेती के बारे में विस्तृत रूप से जानकारी नहीं है। सचाई तो यह है कि यदि कोई व्यक्ति भारतीय कृषि की पूरी झाँकी देखना चाहता है तो उसे यह जानने के लिए कम से कम पाँच वर्ष की यात्रा, अध्ययन और निरीक्षण की आवश्यकता पड़ेगी। यही कारण है कि परामर्शदात्री मण्डल ने इस पुस्तक के द्वारा किसानों की समस्याओं को समझने की बात को सहज ही स्वीकार कर लिया और यह निश्चय किया गया कि 'भारत के किसान' नाम से एक पुस्तकमाला प्रकाशित की जाये। प्रस्तुत पुस्तक इसी पुस्तकमाला का प्रथम खण्ड है जो पंजाब, हिमाचल प्रदेश तथा जम्मू और कश्मीर के किसानों से सम्बन्धित है। पंजाब के किसानों के बारे में जो सूचनायें इस पुस्तक में दी गयी हैं वे अधिकतर मेरे उस निजी अनुभव पर आधारित हैं जो मुझे इस राज्य में विकास आयुक्त और विस्थापित महा-निदेशक के रूप में प्राप्त हुआ। क्योंकि ये काम ऐसे थे जिनसे मुझे लाहौल से कुल्लू तक और हिमालय से हिसार तक गांव-गांव को देखने का अवसर मिला। इसके अतिरिक्त अँग्रेजी प्रशासन

के जमाने में जो जिला गजेटियर तैयार किये गये थे उनसे भी काफी उपयोगी सामग्री प्राप्त हुई। जम्मू और कश्मीर राज्य के किसानों के बारे में श्री प्रेमनाथ ने सूचनाएँ संकलित की हैं। यह अब तक के उपलब्ध साहित्य पर आधारित है। इनमें से विशेष रूप से (1) कश्मीर की घाटी (लेखक—वाल्टर लौरेंस),(2) जम्मू और कश्मीर प्रदेश (लेखक–फैड्रिक ड्रयू), (3) कश्मीर का प्राचीन भूगोल (लेखक–एम० ए० स्टीन),(4)यह कश्मीर है(लेखक-पियर्स गर्विस)और(5)जादुई लद्दाख (लेखक-मेजर गोम्पर्ट्स) पुस्तकें मुख्य हैं। इसमें वे सूचनाएँ भी सम्मिलित हैं जो राज्य के कृषि निदेशक श्री जी० एम० वट से प्राप्त हुई थीं। हिमाचल प्रदेश के बारे में संकलित सूचना वहाँ के कृषि निदेशक डा० एल० एस० नेगी की सामग्री पर आधारित है।

स्मरण रहे कि भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद् भारत के विभिन्न राज्यों के किसानों के बारे में शुरू से ही दिलचस्पी लेती रही है। 1941 में तत्कालीन कृषि आयुक्त डा० वर्न ने 'धरती के लाल' नाम से एक पुस्तक अँग्रेजी में प्रकाशित की थी। इस पुस्तक में उन्होंने स्वयं 'मराठी किसानों' पर एक लेख लिखा था। इस में विभिन्न राज्यों के कृषि निदेशकों से प्राप्त सभी सूचनाएँ शामिल थीं। यह अपने ढंग की पहली पुस्तक थी, इसलिए सचमुच में यह सराहनीय कार्य था। फिर भी सामग्री को प्रस्तुत करने का ढंग और अच्छा हो सकता था। इसमें किसानों को उन के वातावरण जैसे पहाड़, चट्टानें, मिट्टियों, प्राकृतिक दशाएँ, जलवायु आदि से अलग रख कर उनका वर्णन किया गया था।

सच तो यह है कि नारियल के बगीचों, तेज धूप में धान के खेतों की पृष्ठभूमि में तमिल और केरल के किसान कितने सुन्दर लगते हैं। इसी प्रकार लद्दाख, लाहौल, स्पीति, कुल्लू, कांगड़ा, गढ़वाल और कुमायूं के पर्वतीय किसान अपने वातावरण में कितने भले मालूम पड़ते हैं और पंजाब के मेहनती किसानों के गेहुँए रंग का वहाँ की बादामी मिट्टी के साथ कितना साम्य है। इन सब बातों की अनुभूति मुझे उस समय हुई जब मैंने विभिन्न राज्यों का दौरा जिन्स समितियों और अनुसंधान शालाओं के सिलसिले में किया। तभी मुझे विभिन्न प्रदेशों की कृषि के बारे में व्यापक और सघन रूप से अनुभव हुआ। इससे मुझे पता चला कि मद्रास के कोयम्बटूर जिले के गोंडर किसानों का कोई मुकाबला ही नहीं है क्योंकि अपने छोटे-छोटे खेतों पर जिनमें बिजली के कुएँ लगे हुए हैं, वे केला, गन्ना, पान और धान जैसी फसलें उगाते हैं। आन्ध्र प्रदेश के गुंटूर जिले के कम्मा किसान तम्बाकू, हल्दी जैसी व्यापारिक फसलों की खेती करने में निपुण होते हैं। फसलों को कतारों में बोना और उर्वरकों का उपयोग यहाँ के किसानों की प्रगतिशीलता की निशानी है। गुजरात के खेड़ा जिले के पटेल भी कितने ऊँचे किसान हैं जिन्होंने वहाँ की रेतीली मिट्टी में पानी का अधिकतम उपयोग करने के लिए भूमिगत नालियाँ बना कर सिंचाई की एक ऊँची विधि विकसित की है। इनकी सहकारी योजनाओं को चलाने की सफलता उनकी व्यापारिक सूझबूझ का सूचक है। वास्तव में भारत के किसान अन्य देशों

के किसानों की अपेक्षा अपने ही देश के विभिन्न राज्यों के किसानों से बहुत कुछ सीख सकते हैं।

चित्रों द्वारा विषय को प्रदर्शित करना प्रत्येक पुस्तक का एक अनिवार्य अंग होता है क्योंकि जो बात शब्द द्वारा व्यक्त नहीं होती उसे चित्र व्यक्त कर सकते हैं। सौभाग्य से इस पुस्तक को चित्रित करने के लिए श्री हरी कृष्ण गोरखा जैसे प्रतिभा-सम्पन्न चित्रकार की सेवाएँ उपलब्ध हो गई। उनके द्वारा दिये गये चित्र इस पुस्तक में विभिन्न प्रदेशों के किसानों की झाँकी और वहाँ के दृश्यों को बड़े ही सुन्दर ढंग से पेश करते हैं। इन चित्रों में ग्रामीण भारत के जन जीवन और उनकी विभिन्न क्रिया कलापों का बहुत सुन्दर चित्रण हुआ है। हमें इनमें साधारण लोगों की भावनाओं, उद्गारों और उद्वेगों का उन्हीं के वातावरण में दर्शन होता है। इस काम में सबसे बड़ी कठिनाई स्त्रियों के चित्र लेने में हुई। सचमुच भारत में यह काम बड़ा जटिल और कठिन है। हिमालय क्षेत्र और केरल की स्त्रियाँ अपने पुरुष वर्ग के सामने चित्र लेने पर कोई आपत्ति नहीं करतीं, पर पंजाब की किसी स्त्री का चित्र लेना जानबूझ कर संकट को मोल लेना है। चित्र लेने का यह काम सफलतापूर्वक नहीं हो पाता यदि सामुदायिक विकास योजना की समाज सेविकाओं ने इसमें मदद न की होती।

इस प्रकार की पुस्तकें लिखने में जो कठिनाई आती है उसके कारण यह पुस्तक सर्वांगीण रूप से पूर्ण नहीं बन पायी। बहुत प्रयत्न करने पर भी हिमाचल प्रदेश और जम्मू और कश्मीर की फसलों के उत्पादन के बारे में आधुनिकतम आँकड़े उपलब्ध नहीं हो सके। खेतिहर जातियों का विवरण देने में भी काफी कठिनाई सामने आयी क्योंकि प्रगति और शिक्षा के अभाव में आम लोग अपनी आलोचना को सुनकर उत्तेजित हो जाते हैं। वह तो चाहते हैं कि उनकी केवल अच्छी बातें सामने आयें और जब उनके गुण और दोषों दोनों का वर्णन किया जाता है तो यह उनको भला नहीं लगता। इस कारण से मुझे अनेक खेतिहर जातियों के बारे में हुए अनुभवों को सीमित ही रखना पड़ा।

मुझे पूरी आशा है कि पुस्तक के नवीन संस्करणों में यह कमियाँ दूर हो जायेंगी और पूरा विश्वास है कि इस पुस्तकमाला के अन्तर्गत प्रकाशित पुस्तकें उन सभी लोगों द्वारा दिलचस्पी से पढ़ी जायेंगी जो भारत की कृषि और भारत के किसानों में रुचि रखते हैं।

महेन्द्रसिंह रन्धावा

नयी दिल्ली,
दिनांक 29 जुलाई 1963

हिन्दी रूपान्तर के विषय में दो शब्द

भारत के किसान : भाग 1 (पंजाब, हिमाचल प्रदेश तथा जम्मू और कश्मीर) अँग्रेजी पुस्तक फार्मर्स ऑफ इन्डिया : वौल्यूम 1 का हिन्दी रूपान्तर है। मूल पुस्तक देश के प्रसिद्ध वैज्ञानिक डाक्टर महेन्द्रसिंह रन्धावा और श्री प्रेमनाथ ने लिखी है।

भारतीय जनता की सांस्कृतिक एकता का आरम्भ देश की खेतिहर जातियों से ही हुआ है और भारतीय एकता को मजबूत बनाने में यहाँ के ग्रामीण क्षेत्रों ने महत्वपूर्ण भाग अदा किया है। भारत की खेतिहर जातियों के विकास और प्रगति का अध्ययन जब भौगोलिक स्थिति, मिट्टियों, जलवायु, फसलें, कृषि क्रियायें, ग्राम संगठन और सांस्कृतिक जीवन की पृष्ठभूमि में किया जाता है तो संस्कृति का समन्वयकारी दृष्टिकोण अधिक स्पष्टता के साथ उभरता है। यह हिंदी रूपान्तर इसी दृष्टि से तैयार किया गया है और इसमें ऐसी अनेक नयी सूचनाएँ शामिल की गयी हैं जो उपरोक्त दृष्टिकोण के लिए आवश्यक थीं। इससे हिन्दी रूपान्तर में अध्यायों का क्रम मूल अँग्रेजी पुस्तक से पूरी तरह बदल गया है। पंजाब, हिमाचल प्रदेश तथा जम्मू और कश्मीर—इन तीनों प्रदेशों की सामग्री को समान ढांचे में प्रस्तुत करने के लिए हिन्दी रूपान्तर में प्रत्येक प्रदेश को नीचे लिखे अध्यायों में बाँट दिया गया है:—

(1) परिचय (2) जलवायु (3) मिट्टियाँ (4) फसलें और कृषि क्रियायें (5) खेतिहर जातियाँ (6) ग्राम संगठन (7) सांस्कृतिक जीवन। इससे पुस्तक को जहाँ एकरूपता मिली है वहाँ मूल अँग्रेजी पुस्तक के 30 अध्याय रूपान्तर में घट कर 21 ही रह गये हैं। प्रत्येक प्रदेश के 'परिचय' नामक अध्याय में भौगोलिक स्थिति के अतिरिक्त संक्षिप्त इतिहास भी दे दिया गया है।

रूपान्तर में अध्यायों को उपरोक्त तरीके से सजाने के कारण न केवल इसका कलेवर ही कम हुआ है वरन् पुनरावृत्ति का दोष भी कम से कम रह गया है। इसके लिए मूल अँग्रेजी पुस्तक के पंजाब प्रदेश के 3 अध्यायों क्रमशः (1) फसलें, (2) कृषि क्रियायें, और (3) बागवानी को एक कर दिया गया है और लाहौल, कुल्लू, कांगड़ा, मध्यवर्ती मैदानों और हरियाना के किसानों के 4 अध्यायों को भी 'खेतिहर जातियाँ' नाम से एक अध्याय के अन्तर्गत ले लिया गया है। इन अध्यायों में 'ग्राम' शीर्षक के नीचे दी गयी सामग्री हिन्दी रूपान्तर में 'ग्राम संगठन' नामक अध्याय में शामिल कर दी गयी है। इसी प्रकार 'भूगर्भ विज्ञान' के अध्याय को 'मिट्टियाँ' नाम के अध्याय में शामिल कर दिया गया है जैसा कि मूल अँग्रेजी पुस्तक में भी हिमाचल प्रदेश तथा जम्मू और कश्मीर प्रदेशों में दिया गया है।

इसी प्रकार मूल पुस्तक के हिमाचल प्रदेश के अध्याय 'वनों' को 'फसल और कृषि क्रियाओं' के अन्तर्गत ले आए हैं तथा जम्मू और कश्मीर के अध्याय 'बागवानी' को फसलों और कृषि क्रियाओं में शामिल कर दिया है।

हिन्दी रूपान्तर का मूल्य कम करने की दृष्टि से मूल अँग्रेजी पुस्तक के सबसे अधिक उपयोगी आधे चित्र ही रूपान्तर में शामिल किये गये हैं। इस बात का भी प्रयत्न किया गया है कि पुस्तक के सभी आंकड़े नवीनतम हो जायें।

इस तरह हिन्दी रूपान्तर को पाठ्यसामग्री, सफाई, छपाई और अन्य दृष्टियों से आधुनिकतम और प्रामाणिक वैज्ञानिक पुस्तक बनाने का प्रयत्न किया गया है।

यह हिन्दी रूपान्तर भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद् के प्रकाशन विभाग के हिन्दी यूनिट के सम्मिलित प्रयत्नों का फल है क्योंकि इसको तैयार करने में हिन्दी यूनिट के सभी कर्मचारियों ने भाग लिया है। प्रेस के सक्रिय सहयोग के कारण ही इस सम्पूर्ण पुस्तक का मुद्रण एक माह से भी कम की अवधि में पूरा होना सम्भव हुआ है।

आशा है हिन्दी पाठक इस रूपान्तर का न केवल स्वागत करेंगे वरन् अपनी सम्मति और सुझाव देकर परिषद् के आगामी प्रकाशनों में भी मार्गदर्शन करने में सहायक होंगे।

यह पुस्तक भारत सरकार के शिक्षा मन्त्रालय के हिन्दी में लोकप्रिय वैज्ञानिक पुस्तकों की प्रकाशन योजना के अन्तर्गत प्रकाशित की गयी है। इसमें अँग्रेजी के वैज्ञानिक टैक्नीकल शब्दों के लिए केन्द्रीय हिन्दी निदेशालय अथवा वैज्ञानिक और पारिभाषिक शब्दावली के स्थायी आयोग द्वारा स्वीकृत शब्दावली का प्रयोग किया गया है। अन्त में पुस्तक में प्रयोग किए गए शब्दों की हिन्दी अँग्रेजी पारिभाषिक शब्दावली भी दी गयी है।

नयी दिल्ली
29 जुलाई, 1963

ओमप्रकाश शर्मा
सम्पादक (हिन्दी)

विषय-सूची

अध्याय | पृष्ठ संख्या

1. पंजाब

1. **परिचय** 1-8

भौगोलिक विवरण, पहाड़ी क्षेत्र, उप-पर्वतीय क्षेत्र, मैदान ।

2. **जलवायु** 9-11
3. **मिट्टियाँ** 12-16

कुल्लू की मिट्टियाँ, जलोढ़ मिट्टियाँ, जिलों की मिट्टियाँ ।

4. **फसलें और कृषि क्रियाएँ** 17-29

प्रमुख फसलें, बागवानी, विभिन्न बागवानी क्षेत्र, कृषि क्रियाएँ, पहाड़ों की कृषि क्रियाएँ, मैदानों की कृषि क्रियाएँ ।

5. **खेतिहर जातियाँ** 30-59

लाहौल और स्पीति के किसान, कुल्लू घाटी के किसान, कांगड़ा घाटी के किसान, मध्यवर्ती मैदानों के किसान, हरियाना के किसान, गैर खेतिहर लोग ।

6. **ग्राम संगठन** 60-72

लाहौल के गाँव, कुल्लू के गाँव, कांगड़ा के गाँव, मांभा के गाँव, मालवा के गाँव, दोआब के गाँव, हरियाना के गाँव ।

7. **सांस्कृतिक जीवन** 73-82

लोकगीत, लोकनृत्य, कसीदाकारी : बाग और फुलकारी ।

2. हिमाचल प्रदेश

8. **परिचय** 83-90

हिमाचल का इतिहास, भौगोलिक विवरण ।

9. **जलवायु** 91-92
10. **मिट्टियाँ** 93-94
11. **फसलें और कृषि क्रियाएँ** 95-101

वनस्पतियाँ, प्रमुख फसलें—रबी की फसलें, खरीफ की फसलें ।

अध्याय		पृष्ठ संख्या
12.	**खेतिहर जातियाँ**	102-108
13.	**ग्राम संगठन**	109-113
14.	**सांस्कृतिक जीवन** खेती सम्बन्धी विश्वास, मेले-तमाशे, लोकसंगीत, लोकनृत्य ।	114-121

3. जम्मू और कश्मीर

15.	**परिचय** भौगोलिक विवरण, लद्दाख, बाल्टिस्तान और दर्दिस्तान ।	125-129
16.	**जलवायु**	130-131
17.	**मिट्टियाँ**	132-135
18.	**फसलें और कृषि क्रियाएँ** कश्मीर के फल, कृषि क्रियाएँ, प्रमुख फसलें, डल झील के तैरते हुए खेत ।	136-149
19.	**खेतिहर जातियाँ** जम्मू के निवासी, दर्दिस्तान के निवासी, कश्मीर घाटी के निवासी, पूर्वोत्तर पर्वतों के निवासी, लद्दाखी लामा ।	150-169
20.	**ग्राम संगठन**	170-178
21.	**सांस्कृतिक जीवन** कश्मीरी मुसलमानों के उत्सव व गीत, कश्मीरी पण्डितों के उत्सव व गीत, त्यौहार, कश्मीर के लोकगीत, कश्मीर की नृत्यकला, कश्मीर के लोकनृत्य ।	179-196
22.	**शब्दावली**	197-204

चित्र-सूची

1. लाहौल घाटी में स्थित ये पर्वत चोटियाँ और उनके बीच का दर्रा अपनी बर्फीली पृष्ठभूमि और प्राकृतिक छटा दिखाने के लिए मानो मूक निमंत्रण दे रहा है। ··· पृष्ठ 5
2. बर्फीली पहाड़ियों के साये में कुल्लू का यह गाँव सीढ़ीनुमा खेतों और फलदार पेड़ों से घिरा है। ··· 6
3. पंजाब के गाँवों में अब भी अलस सुबह चक्की की घर्र-घर्र की आवाज सुनाई देती है। ··· 15
4. ये गद्दी किसान स्त्रियाँ काम करते हुए भी अपनी ममता को नहीं भूल पातीं क्योंकि 'मन में स्नेह, हाथ में काम' ही इनका जीवन-दर्शन है। ··· 16
5. भारत में आधुनिकता और प्राचीनता दोनों का चोली दामन का साथ है। आधुनिक पंजाब में अनेक गाँवों में अनाज पत्थर की ओखली में छड़ा जाता है। ··· 16
6. फसल खलिहान में आती है तो किसान का मन खुशी से नाचने लगता है। ये किसान पंजों की सहायता से दानों को भूसे से उड़ा-उड़ाकर अलग कर रहे हैं। ··· 25
7. घर में अनाज लाने की खुशी में रोहतक का यह किसान फसल को बरसाने में कमर तोड़ मेहनत कर रहा है। ··· 26
8. दिन भर के श्रम से थकी खेत से लौटती हुई एक लाहौली नारी। ··· 31
9. लाहौल के इन बालकों की गुलाबी मुस्कराहट कितनी मन-मोहक है। ··· 32
10. कुल्लू के इस गड़रिये का उमड़ा प्यार न रुका तो उसने बकरी के नवजात बच्चों को अपने चोले में रख लिया। ··· 35
11. कुल्लू की यह गृहिणी कितनी प्रसन्न है। ··· 36
12. कांगड़ा की नयी नवेली दुलहिन। ··· 41
13. इसी पंजाबी ग्रामीण नारी का ही यह साहस है कि वह सिर पर पानी भरे 2-3 गागर और गोद में बालक को लेकर चल सके। ··· 42
14. कुल्लू की यह श्रम-बाला श्रम साधना में लीन भी अपनी ममता और माता के कर्तव्य को नहीं भूली है। ··· 47

15. अमृतसर जिले के इस युवक सिक्ख किसान को अपने फावड़े पर भरोसा है कि वह खेतों से सोनारूपी फसल प्राप्त कर सकेगा। ... 47

16. प्रसन्न मुद्रा में फिरोजपुर का एक युवक किसान। ... 48

17. आभूषणों से सजी एक हरियानी महिला। ... 53

18. गाय के लिए आज भी हरियाना के इन गाँवों में माता जैसा प्यार पाया जाता है। हरियाना की यह नारी बछड़े को प्यार करती हुई आत्मविभोर-सी हो उठी है। ... 54

19. संकट की इस वेला में ग्रामीण भारत पीछे नहीं रह सकता। पंजाब के ये ग्रामीण नौजवान ग्राम रक्षा दल में सम्मिलित होकर देश की आन और शान को बचाने के लिए छाती खोले तैयार खड़े हैं। ... 65

20. अपने धर्म को बचाने के लिए सिक्खों को रण का बाना पहनना पड़ा, फिरोजपुर का यह निहंग सिक्ख आज भी उसी परम्परा का प्रतीक है। ... 66

21. गुरदासपुर का यह लोकगायक चिमटे की सहायता से अपने गीतों के स्वरों को ताल देता है। ... 75

22. गाँधीजी ने चरखे को राष्ट्रीय पुनरुत्थान का एक आवश्यक अंग माना था। उसी चरखे के मधुर संगीत में यह पंजाबी महिला खोयी-सी जान पड़ती है। ... 76

23. हरियाने की पोशाक में अभी तक लहंगे का प्रमुख स्थान है। ... 79

24. पंजाब के सांस्कृतिक जीवन में गुरु नानक की छाप स्पष्ट दिखाई पड़ती है। यही कारण है कि पंजाब में गाँव-गाँव में गुरुद्वारे नजर आते हैं। ... 80

25. कोटगढ़, हिमाचल प्रदेश का एक दृश्य। सीढ़ीनुमा खेत साफ नजर आ रहे हैं। ... 89

26. हिमाचल प्रदेश की नारी को कदम-कदम पर कठोर श्रम का पाठ सीखना पड़ता है। भारी गट्ठर उठाये इन नारियों के वात्सल्यपूर्ण मुखों से ईमानदारी स्पष्ट झलकती है। ... 90

27. हिमाचल प्रदेश की नारी की वेशभूषा यहाँ की संस्कृति का प्रतीक है। कोटगढ़ की इस युवती के सिर का स्कार्फ यहाँ की विशेषता है। ... 103

28. हिमाचल प्रदेश के कुछ युवक और युवतियाँ; इनकी भुजायें रात-दिन पहाड़ों से लड़ती हैं। ... 104

29. परम्परागत आभूषणों से विभूषित शिमला पर्वत की ये तीन नारियाँ कितनी स्वस्थ और प्रसन्न हैं। ... 111

30. अपनी परम्परागत पोशाक में चम्बा का यह दम्पत्ति अपनी ही कल्पनाओं में खोया-सा जान पड़ता है। ... 111

31. खाली समय में हिमाचल प्रदेश की नारियों में ऊन की कताई खूब प्रचलित है। ... 112

32. पर्वतराज की यह पुत्री सदियों से चले आये आभूषणों से सुसज्जित है। ... 117

33. ताल में बँधे इन लोक नर्तकों के थिरकते पैर दर्शकों के हृदयों में उल्लास की लहर पैदा करते हैं। ... 118

34. ये नरनारी लोकनृत्य के लिए तैयार हैं जो इन पहाड़ी प्रदेशों में मनोरंजन का एकमात्र साधन है। ... 118

35. श्रम साधना में लीन एक कश्मीरी किसान। ... 137

36. कश्मीरी किसान चावल की गहाई करते हुए आने वाले खुशहाल दिनों की कल्पना मात्र से ही कितने प्रसन्न हैं। ... 138

37. यह कश्मीरी मछियारा शिकार के लिए तैयार है। ... 147

38. यहाँ धान से चावल अलग करने का पुराना तरीका आज भी प्रचलित है। ... 148

39. बेटी के गोदी में आते ही हर मां की बाँछें खिल जाती हैं। यह कश्मीरी मां भी इस भावना से अछूती नहीं है। ... 153

40. दो डोगरा युवक प्रसन्न मुद्रा में। ... 154

41. कश्मीर घाटी की यह नारी अपनी परम्परागत पोशाक में कितनी भली लगती है। ... 159

42. और देखिए बकरवल समुदाय की इस युवती की छवि को भी। ... 160

43. शिलाओं के बीच अथक श्रम करने के बाद आराम करता हुआ यह हंजी परिवार कितना प्रसन्न है। ... 163

44. चाय अब तो भारत का राष्ट्रीय पेय बन गया है और यह कश्मीरी परिवार भी इससे अछूता नहीं है। ... 164

45. यदि ग्रामीण घर ऐसे ही साफ सुथरे हों जैसा यह जम्मू का ग्रामीण घर है तो फिर भारत को स्वर्ग बनने में देर न लगेगी। ... 171

46. कश्मीर के एक किसान का यह घर बीती सदियों की कहानी-सी कहता जान पड़ता है। ... 172

47. कश्मीर के गाँव की एक सुबह। ... 175

48. कश्मीर के एक खुशहाल गाँव के कुछ कई मंजिले मकान। ... 176

49. कश्मीर की इस वृद्ध युगल जोड़ी में भी दो शरीर और एक आत्मा की भावना निहित-सी दिखाई पड़ती है। ... 189

50. वर्तमान संकट के कारण लद्दाख का महत्त्व बहुत बढ़ गया है। यह ल्हासी युवतियाँ भी इसके लिए तैयार दिखाई पड़ती हैं। 189

51. अभावों में भी बचपन की गुलाबी दिखाई पड़ ही जाती है। कश्मीर के इस बालक और बालिका की यह मुस्कराहट इसका प्रमाण है। ... 190

52. यहाँ लड़कियाँ भी खेती में हाथ बँटाती हैं। लगता है इस बालिका ने यह गेहूँ का गट्ठर शायद अपने आप ही काटा है। ... 190

53. लोकनृत्य के लिए तैयार जम्मू के कुछ डोंगरा नर्तक। ... 193

54. डरिये नहीं, ये कोई राक्षस नहीं हैं, ये तो चेहरे लगाये हुए लद्दाखी नृत्यकार हैं। ... 194

1. पंजाब

श्रम साधना ही पंजाब की समृद्धि का मूल मन्त्र है। यही कारण है कि विभाजन के बाद गृहहीन पंजाबियों पर भाग्य आज फिर मुस्करा रहा है। आदि काल से ही वीरता, बलिदान और परिश्रम की परम्पराओं के इस प्रदेश ने बँटवारे के अभिशाप को अपनी मेहनत से वरदान में बदल कर नये भारत में सम्मानपूर्ण स्थान प्राप्त कर लिया है।

—सम्पादक

I.

परिचय

भारत का पंजाब राज्य पश्चिम में पाकिस्तान से, उत्तर में हिमाचल प्रदेश, जम्मू-कश्मीर और तिब्बत से, पूर्व में उत्तर प्रदेश से और दक्षिण-पश्चिम में राजस्थान से घिरा हुआ है। देश को स्वतन्त्रता मिलने पर 1947 में बँटवारे के बाद पंजाब दो खण्डों में विभाजित हो गया। इस बँटवारे के बाद ही पूर्वी पंजाब भारत का एक राज्य बना और 1956 में इसमें पंजाब की पूर्वी रियासतों (पैप्सू) को भी मिला दिया गया। आजकल इस राज्य में 18 जिले, 73 तहसीलें और 21,516 गाँव हैं। जिलों के नाम इस तरह हैं:—हिसार, रोहतक, गुड़गांव, करनाल, अम्बाला, शिमला, कांगड़ा, होशियारपुर, जालन्धर, लुधियाना, फीरोजपुर, अमृतसर, गुरदासपुर, भटिंडा, कपूरथला, महेन्द्रगढ़, पटियाला और संगरूर।

पाँच नदियों के प्रदेश के कारण ही इसका नाम पंजाब पड़ा था। आज से 6 हजार वर्ष पूर्व यह प्रदेश हड़प्पा सभ्यता का केन्द्र था जो आमतौर से इतिहास में सिन्धु-घाटी सभ्यता के नाम से जाना जाता है। इस सभ्यता के क्रम से बने हुए नगर, उसकी प्रौढ़ संस्कृति, चित्रों द्वारा लिखाई का आविष्कार, मकानों में पक्की ईटों का इस्तेमाल, तांबे और पीतल का उपयोग आदि बातों से पता चलता है कि उस काल में भी यह प्रदेश कितना सभ्य था। वैदिक काल में पंजाब पांचाल, गान्धर्व और कैकेय प्रदेशों के नाम से जाना जाता थो। कहते हैं कि महर्षि वशिष्ठ इसी प्रदेश में हुए थे। सामवेद के गान लिखने वाले जैवाल, धर्मशास्त्र के रचयिता गौतम ऋषि, योग दर्शन के सृष्टा पतंजलि और प्रथम वैज्ञानिक व्याकरण बनाने वाले पाणिनी का इसी प्रदेश में पालन-पोषण हुआ था। भरत के बेटे तक्षशील ने इसी प्रदेश में तक्षशिला नगर की नींव डाली थी जहाँ पर तक्षशिला विश्वविद्यालय 700 ईसा पूर्व से लेकर छठी शताब्दी तक बराबर उन्नति करता रहा। इसी प्रदेश में राजा पुरु हुए जिन्होंने सिकन्दर जैसे विख्यात योद्धा से हार खाने के बाद भी यही चाहा कि जैसा बर्ताव एक राजा दूसरे शत्रु-राजा से आमतौर पर करता है वही उनके साथ भी किया जाये।

यही वह प्रदेश है जहाँ पर मिस्र, फारस, यूनान, चीन, अरब, मध्य एशिया और भूमध्य सागर से मंगोल, यूनानी, आभीर, हूण, गूजर और अहीर आदि जातियों ने भारत में प्रवेश किया था। इनकी अलग भाषायें थीं, अलग रीति-रिवाज थे, अलग वेश-भूषा थी और अलग देवी-देवता थे। पर ये सभी भारत की सांस्कृतिक एकता

के विराट स्रोत में इस तरह हिलमिल गये कि आज उनमें से किसी के भी विशुद्ध रूप का पता नहीं चलता।

भौगोलिक विवरण

प्राकृतिक रूप में पंजाब को तीन भागों में बाँटा जा सकता है: (1) पहाड़ी क्षेत्र, (2) उप-पर्वतीय क्षेत्र, तथा (3) मैदान।

पहाड़ी क्षेत्र

इस प्रदेश के समतल मैदान को पहाड़ी इलाके से अलग करने वाली पट्टी सतलज नदी के किनारे-किनारे व्यास नदी के तट पर स्थित हाजीपुर से रोपड़ तक चली गयी है। फिर पहाड़ी इलाकों में घुसकर वह पठार का रूप धारण कर लेती है। इस क्षेत्र में छोटी-छोटी पहाड़ियों से लेकर 15,000 फुट ऊँचे धौलाधर जैसे पहाड़ हैं। धौलाधर कांगड़े और चम्बा को अलग करता हुआ डलहौजी के आसपास व्यास नदी के किनारों के साथ-साथ झुकता चला गया है।

कांगड़ा की घाटी : कांगड़ा की घाटी 26 मील लम्बी है। यह घाटी व्यास नदी के साथ पूर्व दिशा में आगे बढ़ती हुई तलहटी में जाकर फिर इसके साथ ही मिल जाती है। यह कहीं पथरीली है और कहीं इसमें चश्मे, नाले और झरने बहते हैं। इस घाटी में अनेक गाँव बसे हुए हैं। पंजाब में इसी घाटी में चाय की खेती होती है। इसके नीचे मैदान हैं जिनमें बड़े सुन्दर गाँव हैं। इस प्रदेश को बर्फीले पहाड़ों से आने वाली नदियाँ सींचती हैं। यहाँ फल-फूलों के वृक्षों की बहुतायत है। पहाड़ों के किनारे चीड़ और देवदार के वृक्ष हैं और उनके बराबर सजी हुई चट्टानें हैं जिन पर वर्ष भर बर्फ जमी रहती है।

कांगड़ा की घाटी अन्त में कुल्लू की घाटी में मिल जाती है जो हिमालय पर्वत श्रेणियों के मध्य में 18 हजार फुट ऊँचाई पर स्थित है। यहाँ काफी क्षेत्र में धान की खेती होती है। यहाँ छोटे-छोटे गाँव बड़े सुन्दर हैं जहाँ परियों जैसी रंग-बिरंगी पोशाक पहने लोग आनन्द से घूमते फिरते हैं।

आगे रोहतांग और बड़ा लच्छा दर्रों के द्वारा लाहौल, लद्दाख, स्पीति और यारकन्द तथा मध्य-एशिया के अन्य प्रदेशों की ओर व्यापारिक रास्ते बने हुए हैं, जिन पर खच्चर आदि आसानी से जाते हैं।

लाहौल : लाहौल का क्षेत्रफल 1,764 वर्गमील है। यहाँ के प्राकृतिक स्रोतों का संगम अधिकांशतया चेनाब से और शेष का सिन्धु नदी से होता है। खोकसर और दारचा से चन्द्रा और भागा नदियों तक आबादी फैली हुई है। इस घाटी के चारों तरफ ऊँचे-ऊँचे पहाड़ और बर्फ की नदियाँ हैं। इस भाग की ऊँचाई 9,000 से 21,000 फुट तक है। 9 हजार फुट से 12 हजार फुट की ऊँचाई वाले क्षेत्रों में ही आमतौर पर खेती की जाती है।

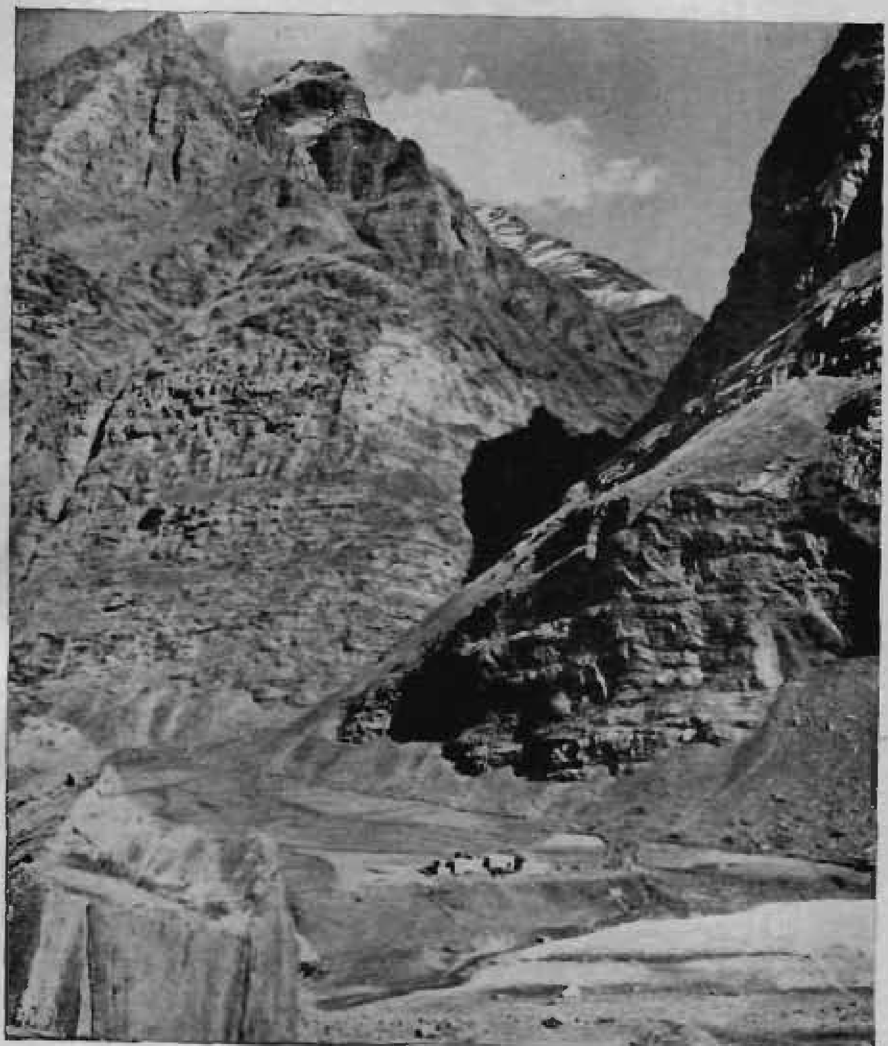

लाहौल घाटी में स्थित ये पर्वत चोटियां और उनके
बीच का दर्रा अपनी बर्फीली पृष्ठभूमि और प्राकृतिक
शोभा दिखाने के लिए मानो मूक निमन्त्रण दे रहा है

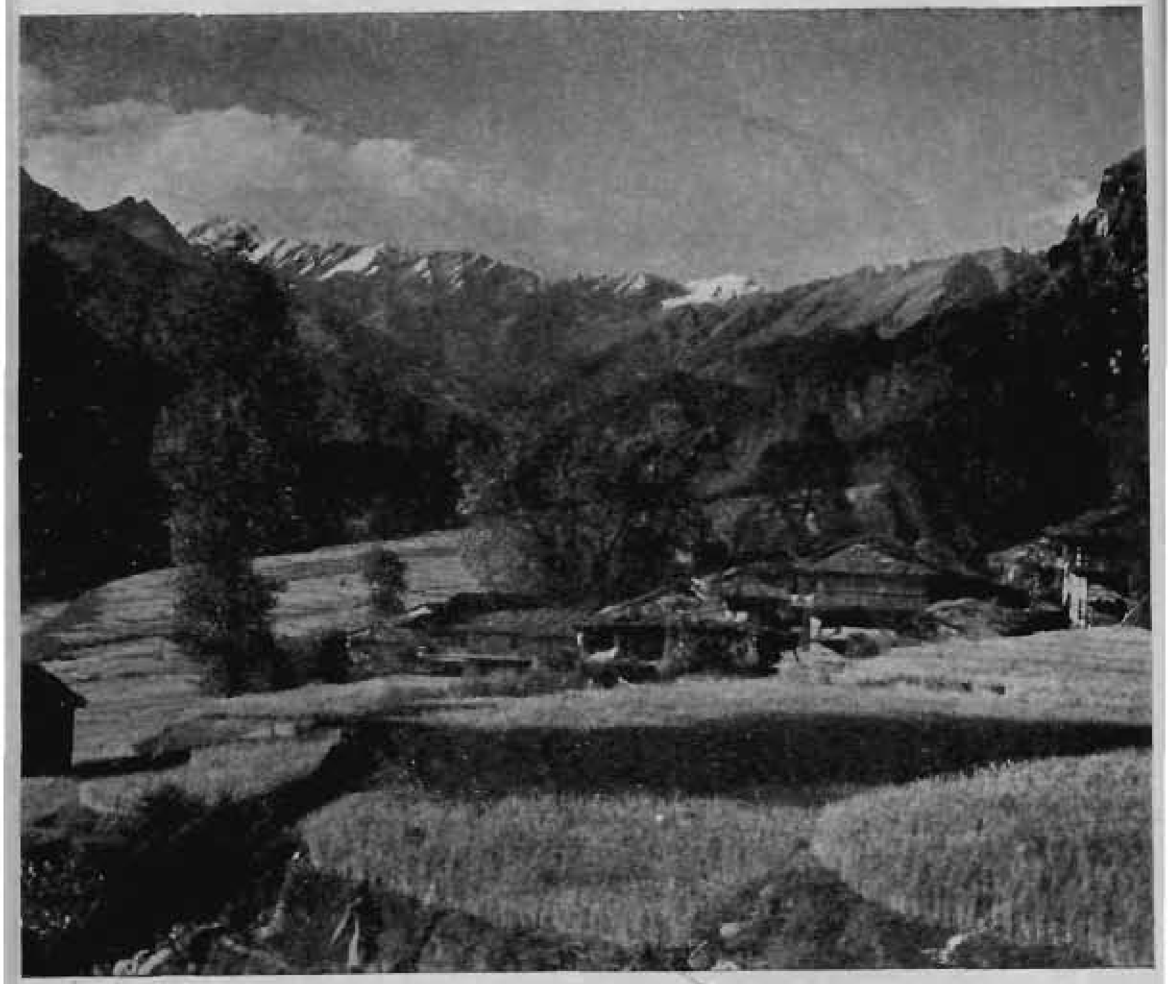

बर्फीली पहाड़ियों के साये में कुल्लू का यह गांव
सीढ़ीनुमा खेतों और फलदार पेड़ों से घिरा है

लाहौल के चार उपभाग हैं : (1) रंगलोई या चन्द्रा घाटी, (2) गढ़ या पुनान, (3) भागा घाटी, और (4) पाटन।

इनमें सबसे उपजाऊ पाटन व गढ़ हैं। इस क्षेत्र में खेतों के जंगल के बीच-बीच में बनाए गए सीढ़ीदार खेत मन को लुभा लेते हैं, और इधर उधर उगे फूलों से यह सुन्दरता और भी बढ़ जाती है।

यहाँ की जलवायु ठंढी और सूखी है। जाड़ा अधिक पड़ता है। गर्मी साधारण और वर्षा कम होती है। जाड़ों में यहाँ के रहने वाले कुल्लू की घाटियों में चले जाते हैं और फिर अप्रैल या मई के महीने में आकर खेतों को बोआई के लिए तैयार करते हैं।

स्पीति : लाहौल से स्पीति जाते हुए मोरंग का दर्रा बीच में पड़ता है। हिमालय की बहुत सी बर्फीली नदियाँ भी इस मार्ग में मिलती हैं। स्पीति 3,000 वर्गमील का एक त्रिकोण है जिसके एक ओर पश्चिमी हिमालय, दूसरी ओर मध्य हिमालय और तीसरी ओर कुंजुम की पहाड़ियाँ हैं। इनमें से कोई-कोई चोटी 23,000 फुट ऊँची है। कोई भी चोटी 10,000 फुट से कम ऊँची नहीं है। स्पीति नदी का उद्‌गम 20,000 फुट ऊँचा है जहाँ से वह पहाड़ियों के बीच में होती हुई मैदानों में आती है। इसकी दक्षिणी-पश्चिमी दिशा में पीन की घाटी है।

उप-पर्वतीय क्षेत्र

हिमालय के दक्षिण में उसके समानान्तर शिवालिक पर्वत की शृंखलायें फैली हुई हैं। सतलज से आगे बढ़कर ये पर्वत-श्रेणियाँ रेतीली चट्टानों का रूप धारण करने लगती हैं। इसके बाद चौड़े पठार आते हैं। होशियारपुर से धर्मशाला तक पर्वत ऊँचे होते हुए चले जाते हैं और अन्त में जाकर कांगड़ा की घाटी में मिल जाते हैं।

इस मार्ग में काफी पहाड़ी नदी-नाले हैं जो अपने उद्‌गम से चलकर एक सँकरे मार्ग से होते हुए मैदान में आने पर अपने पेटे को तब तक फैलाते चले जाते हैं जब तक कि मूल जलमार्ग कई शाखाओं में नहीं बँट जाता। फैलता हुआ पानी अपने साथ लाई हुई रेत को किनारों के दोनों ओर जमा कर देता है। गर्मी के दिनों में लू और आँधी से उड़कर रेत के टीले यहाँ से वहाँ पहुँच जाते हैं और छोटी-छोटी नदी व झरनों के बहाव को बदल देते हैं। इसके कारण यहाँ पर भूक्षरण की समस्याएँ पैदा हो गई हैं। अब इस प्रदेश में जंगल उगाकर इस समस्या को हल किया जा रहा है।

इस उप-पर्वतीय प्रदेश में अम्बाला, गुरदासपुर और होशियारपुर जिले के कुछ भाग आते हैं। इस प्रदेश की मिट्टी शिवालिक पर्वत श्रेणी की चट्टानी रेत और जलोढ़ मिट्टी का मिश्रण है जो रूप में और कृषि-गुणधर्मों में अलग-अलग स्थानों पर अलग-अलग है। इस क्षेत्र के उपजाऊ भागों में आम के बाग और दूसरी फसलें होती हैं और यहाँ का बंजर इलाका वीरान पड़ा है।

मैदान

सारा मध्य पंजाब चौड़े समतल मैदान में स्थित है, जिसका ढलाव दक्षिण पश्चिम की ओर है। हल्का ढलाव होने के कारण नदियों का वेग यहाँ की धरती के लिए बहुत उपयोगी है। प्रत्येक नदी ने मैदान में काफी चौड़ी घाटी बना ली है। नदियों के किनारे उस स्थान तक हैं जहाँ तक नदी बढ़ सकती है। जाड़ों में नदी का पाट कम हो जाता है परन्तु जब बर्फ पिघलती है तो नदी दोनों ओर कई-कई मील तक फैल जाती है। बरसात के बाद पानी घटने लगता है और दूर-दूर तक विस्तृत मैदान में रेत और उपजाऊ मिट्टी जम जाती है। यही कारण है कि नदी से दूर-दूर तक की भूमि उपजाऊ रहती है जिसमें तरह-तरह की फसलें पैदा होती हैं। इसके अलावा यह मिट्टी भी अच्छी किस्म की होती है।

यदि हम पंजाब के मैदानों पर विहङ्गम दृष्टि डालें तो हमें पहाड़ और घाटियां नहीं दिखाई पड़तीं। कहीं-कहीं कच्चे मकान और हरे खेत जरूर दिखाई देते हैं। उपजाऊ भागों में गाँव एक दूसरे से मिले हुए हैं। यहाँ आबादी और खेती का सुन्दर दृश्य दिखाई देता है। इस मैदान में पूर्व की अपेक्षा पश्चिम की ओर घनी आबादी है क्योंकि यहाँ नहरों का जाल बिछा हुआ है। भाखड़ा बाँध से नहरें निकलने पर पूर्वी भाग भी शीघ्र उन्नत हो जाएगा।

भारत में पंजाब के मैदान सबसे अधिक उपजाऊ हैं। लुधियाना से यमुना की घाटी तक और यमुना के किनारे-किनारे दिल्ली तक की भूमि गंगा नदी के मैदान का अंश है। पश्चिमी भाग सतलज, व्यास और रावी नदियों के पानी से सींचा जाता है। इस भाग को हम दोआब कहते हैं। यहाँ की भूमि सबसे अधिक उपजाऊ है।

2.

जलवायु

इस प्रदेश के विभिन्न क्षेत्रों की जलवायु अलग-अलग है। कुछ क्षेत्र पहाड़ी बर्फीले हैं, कुछ क्षेत्र गर्म और सूखे हैं। मैदानों की जलवायु गर्मी में बहुत गर्म—मई-जून का ताप 100-120° फैरेनाइट तक रहता है—और जाड़ों में बहुत ठंडा—दिसम्बर-जनवरी में ताप 40° फै० से भी कम—हो जाता है। गर्मी अप्रैल से जून तक रहती है। बरसात के दिनों में वर्षा होने वाले दिनों को छोड़ कर बाकी दिनों में तेज गर्मी पड़ती है। सितम्बर के महीने में मौसम हल्का हो जाता है। अक्तूबर-नवम्बर के महीने में साल का सबसे सुहावना मौसम रहता है। जाड़ा दिसम्बर से मार्च तक पड़ता है।

पंजाब के बाहरी और मध्य हिमालय तथा स्पीति और लाहौल क्षेत्र का जलवायु एक दूसरे से भिन्न है। यहाँ मौसम अधिकतर मैदानों जैसा ही रहता है। जाड़ा तेज पड़ता है। शिमला और केइलौंग में तापमान क्रमशः 17° और 3·5° फै० रहता है। दिसम्बर से ही बर्फ गिरना शुरू हो जाती है और गर्मी शुरू होने तक बराबर पड़ती रहती है। जनवरी-फरवरी में घना कोहरा पड़ता है। इसके बाद मार्च से तापमान बढ़ने लगता है और मौसम सुहावना होता जाता है। औसत वर्षा केइलौंग में 20 इंच और धर्मशाला में 117 इंच वार्षिक तक होती है।

जाड़े में बड़ी हल्की हवाएँ चलती हैं और मानसून पंजाब में नहीं आते। कभी-कभी तूफान के साथ बारिश भी हो जाती है। गर्मी खत्म होने तक बंगाल की खाड़ी से आने वाले दक्षिणी मानसून यहाँ जमकर वर्षा करते हैं। वर्षा के बादल पूर्वी हिमालय से टकरा कर पश्चिमी की ओर चल देते हैं और मैदान में बरस जाते हैं।

हिमालय की तलहटी में काफी वर्षा होती है। मैदान में बरसते-बरसते मानसून हल्के पड़ जाते हैं और दक्षिण पश्चिम की ओर जाकर समाप्त हो जाते हैं। कभी-कभी बम्बई की तरफ से आने वाले मानसून बंगाल की खाड़ी की तरफ से आने वाले मानसूनों से टकरा कर सारे प्रदेश में वर्षा कर देते हैं।

प्राकृतिक भाग

भू-विज्ञान के अनुसार पंजाब के दो प्राकृतिक भाग हैं (1) मैदान, और (2) हिमालय-क्षेत्र।

मैदान : मैदानों का अधिकांश भाग सिन्धु और गंगा की जलोढ़ मिट्टी का बना हुआ है। परन्तु इसका कुछ भाग तलछटी चट्टानों का भी है जो दिल्ली और दक्षिण पूर्व की अरावली पर्वत शृंखला का ही अंश है। ये तलछटी चट्टानें स्लेटी, चूनाधारी और ऊपर के क्षेत्र में क्वार्टजाइट (स्फटिक) पत्थर की बनी हुई हैं।

हिमालय क्षेत्र : हिमालय क्षेत्र को मोटे तौर पर तीन भागों में बाँटा जा सकता है : (1) उत्तरी, (2) मध्य, और (3) दक्षिणी। उत्तर क्षेत्र को तिब्बती क्षेत्र कहा जाता है जो कनवाड़ से होता हुआ स्पीति व लाहौल तक चला जाता है। यहाँ पर जो तलछटी जमावटें पायी जाती हैं उनमें से कुछ कैम्ब्रियन और कुछ क्रैटेशियस काल की हैं। सबसे पुरानी जमावटें स्लेटी और स्फटिक पत्थरों की बनी हुई हैं। उनमें से अधिकांश की रचना फोसिल विहीन (आदिकाल के जन्तुओं के अवशेषों से रहित) हैं। लेकिन कुछ ऊँची जमावटों में मध्य और उत्तर केम्ब्रियन युग के त्रिखण्डी (ट्राइलोबाइट) जैसे जीवों के अवशेष भी मिलते हैं। इनके ऊपर की परत भारी लाल स्फटिक पत्थरों की हैं जो सम्भवतया निम्न सिल्युरियन युग में उपस्थित थे। उनके ऊपर चूने की चट्टानें हैं जो त्रिखण्डी और शंख-सीपी वर्ग के जीवों के अवशेषों की बनी हुई हैं। धीरे-धीरे जैसे ऊँचाई की ओर बढ़ते जाते हैं चूने के पत्थर का स्थान श्वेत क्वार्टजाइट या स्फटिक लेता चला जाता है। क्वार्टजाइट के ऊपर की जमावटें विभिन्न मोटाइयों की हैं जिनके ऊपर केलकेरियस चूने का पत्थर जमा हुआ है और उसके ऊपर की जमावट शैलधारी है जो परमियन युग का प्रतिनिधित्व करती है। इनमें से सबसे ऊँची जमावट 'प्रोडक्ट्स शैल' नाम से जानी जाती है जो हिमालय के सभी भागों में मिलती हैं। ये उत्तरी परमियन युग के द्विपादों के अवशेष और अमोनाइट खनिजों की बनी हैं। इन शैलधारी जमावटों के ऊपर अमोनाइट की एक परत पायी जाती है जो आगे जाकर चूने पत्थर के विशाल भण्डार में मिल जाती है। यह सम्भवतया निम्न और मध्य ज़ोरासिक युग की हैं। इन जमावटों में सभी प्रकार के अवशेष पाये जाते हैं, जिनको भूगर्भी कालानुसार पहचान लिया गया है।

हिमालय की तलहटी में परिवर्तनशील, बिल्लौरी (क्रिस्टैलाइन) और अजीवाश्मीय (अनफॉसिलीफेरियस) चट्टानें पायी जाती हैं। बिल्लौरी चट्टानें कुछ तो परिवर्तनशील चट्टानों के आधार पर कैम्ब्रियन स्लेटी चट्टानों के सम्पर्क में आने से बनी हैं और कुछ स्वतः ही प्रकट हो गयी हैं। परिवर्तनशील चट्टानों के दक्षिणी भाग में अजीवाश्मीय तलहटी चट्टानें चम्बा की तरफ होकर कांगड़ा और शिमला की पहाड़ियों में होती हुई गढ़वाल तक चली गयी हैं। इन चट्टानों में चूना पत्थर, स्लेट, क्वार्टजाइट आदि की अज्ञात युग की चट्टानें हैं।

जौनसार श्रेणी : इस श्रेणी में अति प्राचीन भूरे रंग की स्लेटी चट्टानें हैं जिन पर नीले रंग के चूने पत्थर की पट्टी पायी जाती है और उसके बाद लाल स्लेटी और क्वार्टजाइट की चट्टानें हैं। जौनसार बाबर और पूर्वी सिरमूर में क्वार्टजाइट की चट्टानों पर बहुत दूर-दूर तक ज्वालामुखी का लावा पटा हुआ है। इसके बाद चूना पत्थर की चट्टानों की शक्ल कुछ सुधर गयी है और उत्तर में देवबन्द श्रेणी तक इसी

प्रकार की चट्टान पायी जाती हैं जिनको देवबन्द श्रेणी की चट्टानें कहते हैं। ये ही चट्टानें सिरमूर और शिमला के उत्तर में शाली चोटी पर भी मिलती हैं। इस श्रेणी की चट्टानों के बाद कार्बनयुक्त कोयले जैसी कार्बोनेशियस चट्टानें हैं। ये हिमालय के निचले क्षेत्र में दूर-दूर तक फैली हुई हैं। इन चट्टानों के नीचे की तह में काफी मोटी भूरी स्लेटी पत्थर की परत है जो तिब्बती क्षेत्र की तलहटी में पायी जाने वाली चट्टानों से मिलती जुलती हैं। ये स्लेटें शिमला-स्लेटें कहलाती हैं। इनके ऊपर के भाग में गुलाबी रंग के चूना पत्थर की परत है। ये आमतौर पर शिमला के बहुत से भागों में तथा मसूरी और चम्बा क्षेत्रों में पायी जाती हैं। इन पर कार्बोनेशियस शैल की परत चढ़ी हुई है और उसके नीचे काफी मोटी क्वार्टजाइट पत्थर की पट्टी है। ये दोनों मिलकर क्रोल श्रेणी की चट्टानें कहलाती हैं। सोलन के पास के पहाड़ों में क्रोल श्रेणी की चट्टानों में चूने पत्थर की काफी मोटी तह और बीच-बीच में कार्बोनेशियस शैल भी पाया जाता है।

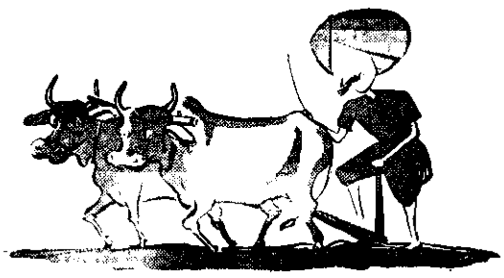

3.

मिट्टियाँ

पंजाब में तीन प्रकार की मिट्टियाँ पायी जाती हैं। (1) हिमालय क्षेत्र की मिट्टियाँ, (2) उप-पर्वतीय क्षेत्र की मिट्टियाँ, और (3) जलोढ़ मिट्टियाँ।

खेती की दृष्टि से हिमालय प्रदेश की मिट्टियाँ अधिक महत्त्व की नहीं हैं। यहाँ की मिट्टी का तल अधिक गहरा नहीं है यद्यपि भूगर्भी विकास की दृष्टि से ये पूरी तरह विकसित हो चुकी हैं। इनमें चूना और फासफोरस कम है। घुलनशील लवण लेशमात्र है किन्तु जीवांश काफी पाया जाता है। इन मिट्टियों की प्रकृति अम्लता से लेकर उदासीन तक है। यहाँ की मैदानी मिट्टियाँ सिन्धु गंगा घाटी की जलोढ़ मिट्टियों के वर्ग में आती हैं। इनमें अधिकांश मिट्टियाँ ऐसी तलछट की बनी हैं जिसका आधार रेतीली चट्टानें हैं और जहाँ पर भूमिगत पानी उपलब्ध है। मिट्टी की ऊपरी पपड़ियों में आमतौर पर दस से पन्द्रह प्रतिशत तक चिकनी मिट्टी पायी जाती है और उनकी 10 इंच मोटी पट्टी ऊपर जमी रहती है। मिट्टी की पट्टी में आमतौर पर सोडियम लवण पाये जाते हैं जो मिट्टी की उर्वरता पर बुरा प्रभाव डालते हैं इसलिए राज्य के लिए मिट्टी में से इन लवणों को दूर करने की समस्या बड़ी गम्भीर बन गयी है। रासायनिक दृष्टि से इन मिट्टियों में पर्याप्त खनिज पदार्थ होते हैं। इनमें जीवांश की कमी है और नाइट्रोजन अंश भी कम है। यहाँ के मैदानों की अधिकतर मिट्टियाँ रेतीली दोमट से दोमट तक हैं। इन मिट्टियों में आमतौर पर घुलनशील लवण बराबर मिलते हैं तथा इनकी निचली तहों में कंकड़ (गठीला कैल्शियम कार्बोनेट) तो पाये ही जाते हैं।

कुल्लू की मिट्टियाँ

कुल्लू क्षेत्र में पायी जाने वाली अधिकांश मिट्टियाँ श्वेत बालू मिट्टी (पौडसोल) समूह की हैं। अन्तर सिर्फ उनकी नीचे की तहों में पायी जाने वाली कैल्शियम की मात्रा का है क्योंकि कहीं-कहीं मिट्टियों के नीचे की तह में कैल्शियम ज्यादा मात्रा में होता है और कहीं कम। यह अन्तर विभिन्न परिधियों के उच्च अक्षांशों पर होने के कारण हो गया है। अस्थायी तौर पर इन मिट्टियों को कुल्लू की श्वेत बलुई समूह (पौडसोल) की मिट्टियाँ कहा जा सकता है।

पौडसोल टाइप की सुधरी मिट्टी पर देवदार के पेड़ खूब फलते फूलते हैं। जीवांशधारी मिट्टियों में देवदार अधिक नहीं फलता फूलता। पौडसोल वाली अच्छी मिट्टियाँ वे कही जा सकती हैं जिन पर चीड़ के पेड़ खूब उगते हैं।

जलोढ़ मिट्टियाँ

पंजाब की जलोढ़ मिट्टियों की भूगर्भी रचना बहुत पुरानी नहीं है। इसलिए इन मिट्टियों के विभिन्न संस्तरों का पूरी तरह विकास नहीं हुआ है और इन मिट्टियों के ऊपरी भाग में इस प्रकार के तल बहुत कम देखने को मिलते हैं।

दोआब की मिट्टी खेतों के लिए बहुत उपयुक्त है। इसमें क्षारीयता तथा लवणता भी बहुत कम है। बान की मिट्टी कुछ घटिया किस्म की हैं और ओकान में पायी जाने वाली मिट्टी में भारी लवण हैं। कराई की मिट्टी का पी० एच० अंश काफी अधिक है। हालांकि अधिकतर मिट्टी में बहुतायत से घास उगी हुई दिखाई देती है लेकिन इस कारण इन मिट्टियों को अच्छी किस्म की नहीं माना जा सकता। जहाँ मिट्टी में भूगर्भी जल-तल नीचा है, वहाँ तो मैंगनीज की काफी मात्रा इकट्ठी नहीं हो पाती पर शेष मिट्टियों में जल-तल तक मैंगनीज पाया जाता है।

पंजाब में भूक्षरण की अपने में एक विशिष्ट समस्या है जो शिवालिक पर्वत क्षेत्रों के कारण पैदा हो गयी है। पंजाब के उत्तरी भागों में भूक्षरण के कारण काफी व्यापक क्षेत्र में कटन छटन से गहरे गढ़े पड़ गये हैं और राजस्थान से लेकर पंजाब के निचले क्षेत्रों तक का भूक्षरण वायु के कारण होता है। भूक्षरण की दृष्टि से पंजाब की मिट्टियों को 3 भागों में बाँटा जा सकता है (1) गहरी खड्डुधारी धरती, (2) रेतीले पठार, (3) दक्षिणी बलुई पट्टी। पहाड़ी तलहटी की मिट्टियों में तथा हिमालय और शिवालिक के ढालू मैदानों में गहरा कटाव पाया जाता है। इस क्षेत्र में गुड़गांव, अम्बाला, होशियारपुर, कांगड़ा और गुरुदासपुर जिले का बहुत सा भाग आता है। आमतौर पर तलहटी और चिकनी मिट्टी के अंश बढ़ने के साथ-साथ मैंगनीज अंश भी बढ़ते हैं। इसके घटने पर मैंगनीज अंश घटता जाता है।

जिलों की मिट्टियाँ

गुरुदासपुर और कांगड़ा जिले के तीन चौथाई भाग को छोड़कर बाकी पंजाब में जलोढ़ मिट्टियाँ हैं। राज्य के उत्तरी पूर्वी और दक्षिणी पश्चिमी दिशाओं में अर्ध शुष्क या सूखी दशाओं के पैदा होने के कारण यहाँ की काफी जमीन कल्लर हो रही है। नीचे भिन्न-भिन्न जिलों की मिट्टी के बारे में संक्षेप में बताया गया है :

गुरदासपुर : जिले में दोमट मिट्टी है जिसमें 10 प्रतिशत चिकनी मिट्टी है। इसमें चूना कम और मैगनीशिया ज्यादा है। इसमें पोटाश और फासफोरस अनुकूलतम मात्रा में है किन्तु इनकी पौधों को उपलब्ध होने वाली मात्रा आवश्यकता से कम है।

कांगड़ा : यहाँ की मिट्टी अधिकतर चिकनी दोमट है। ये आमतौर पर अम्लीय हैं और इनका पी० एच० मान 5 से 6 के बीच रहता है। इसमें नाइट्रोजन बहुत है। फासफोरस तथा पोटाश की कुल तथा पौधों को उपलब्ध मात्रायें कम हैं।

होशियारपुर : इस जिले की मिट्टी दोमट है जिसमें फासफोरस, पोटाश और नाइट्रोजन अनुकूल मात्रा में पाये जाते हैं।

जालन्धर : यहाँ की कुछ मिट्टी रेतीली दोमट है और कुछ तलछटी दोमट है जिनमें नाइट्रोजन अनुकूल मात्रा में पाया जाता है।

फीरोजपुर : यहाँ की मिट्टियाँ अधिकतर रेतीली दोमट पर क्षारीय हैं। कुछ मिट्टियों में चूना बहुत है तथा शेष मिट्टियों में पोटाश, फासफोरस और नाइट्रोजन की अनुकूल मात्रा पायी जाती है।

अम्बाला : यहाँ की मिट्टी की प्रकृति दोमट है किन्तु इसमें तलछटी अंश भी काफी मात्रा में मिलते हैं। ये कुछ क्षारीय हैं और इसमें घुलनशील लवण की मात्रा कम है। इनमें पोटाश और फासफोरस की अनुकूल मात्रा है तथा सामान्यतया नाइट्रोजन की मात्रा कम पायी जाती है।

करनाल : यहाँ की मिट्टियाँ आकृति में बलुई-दोमट तक हैं। ये काफी मात्रा में क्षारीय है तथा इनमें पी० एच० मान 10 तक पाया जाता है। भूमि के जलसार में सोडा बाईकार्बोनिट भी खूब पाया जाता है। मिट्टियों की सतह से तो ऐसा मालूम होता है कि इनमें नाइट्रोजन खूब है पर इनमें फासफोरस की कमी है।

रोहतक : यहाँ के मारू खेती अनुसंधान केन्द्र द्वारा कुछ मिट्टियों की बनावट का विश्लेषण किया गया जिससे यहाँ सतह की मिट्टी दोमट तथा नीचे की मिट्टी चिकनी पायी गयी। ये मिट्टियाँ मामूली क्षारीय हैं और इनमें नाइट्रोजन व फासफोरस की कमी है।

हिसार : यहाँ की मिट्टी दोमट है और नीचे की गहराई की मिट्टी में सोडियम क्लोराइड और सोडियम सल्फेट बराबर मात्रा में पाये जाते हैं। इनमें पी० एच० मान 7·5 से 9 तक है। उन मिट्टियों में जिनमें सोडियम क्लोराइड तथा सोडियम सल्फेट बराबर मात्रा में हैं, घुलनशील नमक की मात्रा अधिक है। इनमें नाइट्रोजन 0·0—0·06 तक पाया जाता है।

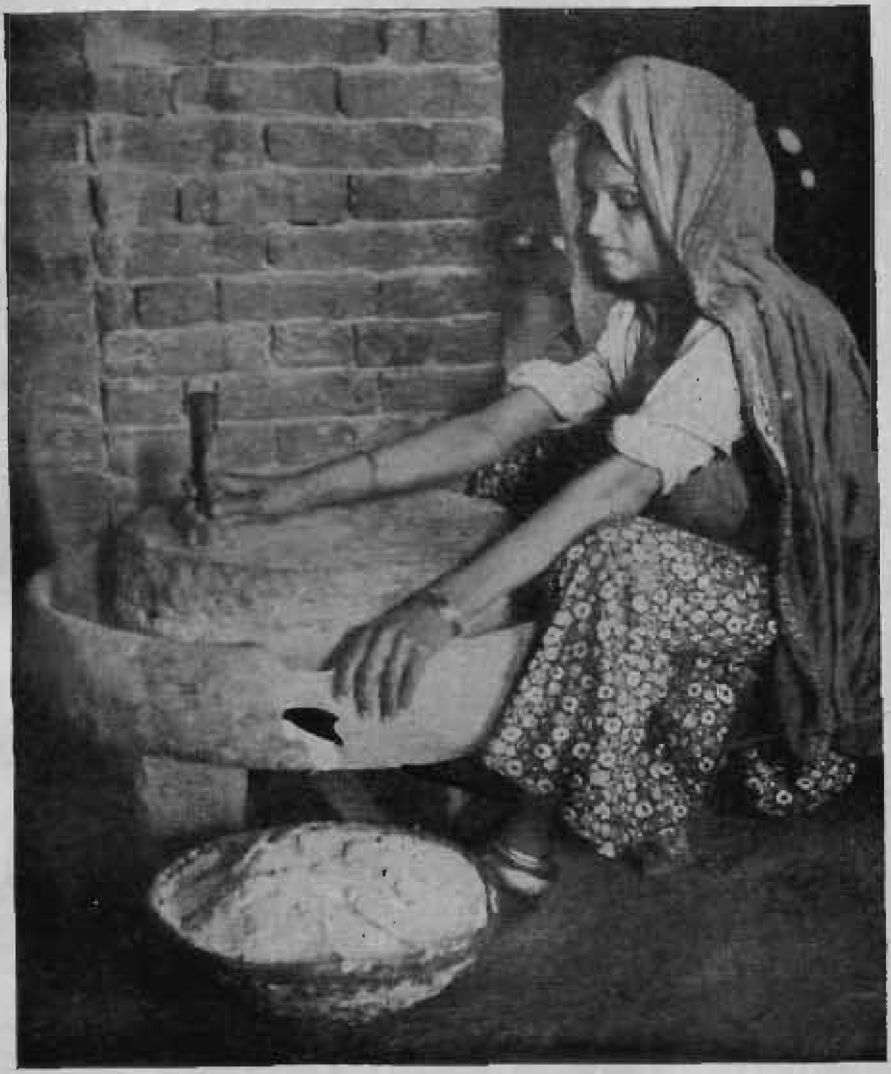

पंजाब के गांवों में अब भी अलस सुबह चक्की
की घर्र-घर्र की आवाज सुनाई देती है

'मन में ममता और स्नेह तथा हाथ में काम'
ही गद्दी कृषक नारी का जीवनदर्शन है

पंजाब के अनेक गांवों में अनाज आज
भी पत्थर की ओखली में छड़ा जाता है

4.

फसलें और कृषि क्रियाएँ

पंजाब के 70 प्रतिशत मनुष्यों का व्यवसाय खेती है। इस प्रदेश का क्षेत्रफल 30,28,800 है। उपयोगिता के विचार से पंजाब के क्षेत्रफल को पाँच भागों में बाँटा जा सकता है:—(1) वनों के अंतर्गत क्षेत्रफल 8,35,000 एकड़ है, (2) 78,63,000 एकड़ ऐसी भूमि है जिसमें खेती नहीं की जा सकती, (3) बेकार पड़ी हुई उपजाऊ भूमि 23,98,000 एकड़ है, (4) परती भूमि 17,70,000 एकड़ है, तथा (5) हल के नीचे की भूमि 1,74,22,000 एकड़ है। 1954-55 ई० में कुल सिंचित कृषि भूमि का क्षेत्रफल 91,20,000 एकड़ था जब कि 1947-48 ई० में यह केवल 62,78,000 एकड़ थी। 1949-50 ई० में कुल बोये गये क्षेत्रफल में 37 प्रतिशत सिंचित भूमि थी जो देश के अन्य राज्यों की तुलना में सबसे अधिक थी क्योंकि देश में कुल भूमि में से औसतन 16·7 प्रतिशत सिंचित भूमि है।

1947 से पहले पंजाब की नहरी सिंचाई सारे विश्व में प्रसिद्ध थी। विभाजन के उपरान्त इन नहरों का एक तिहाई भाग ही भारत को मिला। अब इस प्रदेश में चार बड़ी नहरें हैं:—(1) 'अपरबारी दोआब' नहर जो माधोपुर में रावी नदी से निकलती है, (2) 'सरहिन्द' नहर जो रोपड़ में सतलज से निकलती है, (3) 'पश्चिमी यमुना' नहर जो ताजेवाला में जमुना से निकलती है, और (4) फीरोजपुर क्षेत्र की नहरें।

पंजाब की मुख्य फसलें, गेहूँ, चना, बाजरा, मक्का, चावल, ज्वार और जौ हैं। ये 1,63,00,000 एकड़ क्षेत्रफल में पैदा होती हैं। यहाँ की नकदी फसलों में कपास, रबी, तिलहन और गन्ना महत्त्वपूर्ण हैं। पंजाब का भारत में गेहूँ और चने के उत्पादन में दूसरा, जौ और मक्का में तीसरा तथा बाजरे और गन्ने में चौथा स्थान है।

विभाजन के तुरन्त बाद खाद्यान्न की फसलों में यह प्रदेश स्वावलम्बी नहीं था किन्तु उन्नत कृषि विधियाँ अपनाकर न केवल इसने अपनी जरूरतों को ही पूरा किया है वरन् यह अपनी आवश्यकता से भी अधिक उत्पादन करने लगा है। यहाँ अनाजों का उत्पादन 1952-53 में 33,46,000 टन था जो 1956-57 में बढ़कर 35,19,000 टन हो गया। चना 10,15,000 से बढ़कर 19,54,000 टन हो गया और कपास 4.36 लाख गाँठों से बढ़कर 8 लाख गाँठों तक पहुँच गयी।

प्रमुख फसलें

गेहूं : यह पहाड़ी क्षेत्रों में बारानी क्षेत्रों को छोड़कर लगभग राज्य के सभी भागों में होता है। इसकी पैदावार के मुख्य जिले फीरोजपुर, लुधियाना, अमृतसर, जालंधर, करनाल, रोहतक, हिसार, भटिंडा, संगरूर और पटियाला हैं। यहाँ पर गेहूँ की तीन प्रजातियाँ उगाई जाती हैं:—(1) ट्रीटीकम डुरुम—इसकी बालों में लम्बा सींकुर और लम्बा डंठल होता है, (2) ट्रिटीकम स्फारोकोकम—इसमें सींकुर नहीं होता, तथा दाना छोटा और गोल होता है। इसका डंठल छोटा पर मजबूत होता है, और (3) तीसरी ट्रिटीकम सैटीवम्—इसमें दाना बीच के आकार का होता है।

गेहूँ की जुताई वर्षा के बाद ही आरम्भ हो जाती है। बारानी खेतों को 8 से 20 बार तक जोता जाता है। सिंचाई की गयी भूमि में 5–6 बार की जुताई काफी होती है। एक साल खेत खाली रखकर यदि गेहूँ बोया जाता है तो फसल अच्छी होती है। सींचे गये खेतों में एक साल गेहूँ बोकर दूसरे साल कपास या गन्ना बोया जाता है। कभी-कभी गेहूँ से पहले गर्मियों का चारा भी बो दिया जाता है। एक एकड़ गेहूँ के लिए 24 सेर बीज काफी होता है। जो गेहूँ देर में उगाया जाता है या बारानी खेतों में बोया जाता है उसकी मात्रा अधिक होती है। सिंचित भूमि में 11 से 15 मन प्रति एकड़ तक गेहूँ होता है जबकि बारानी खेतों में 5 से 8 मन प्रति एकड़ उपज ली जा सकती है। राज्य में गेहूँ की प्रति एकड़ औसत उपज 15 मन है।

चना : यह रबी की फसल है और वर्षा के अनुसार बोया जाता है। हल्की रेतीली भूमि पर इसकी फसल अच्छी होती है। यह फीरोजपुर, हिसार, करनाल, रोहतक, संगरूर और भटिंडा जिलों में खूब पैदा होता है। बुआई सितम्बर से अक्तूबर तक और कटाई मार्च के बाद तक होती है। आमतौर पर बुआई के लिए एक एकड़ में 12 से लेकर 16 सेर तक बीज इस्तेमाल किया जाता है। गेहूँ या जौ के साथ भी चौथाई चना बो दिया जाता है।

जौ : यह भी रबी की फसल है जो अक्तूबर से जनवरी तक बोयी जाती और अप्रैल में कटती है। आमतौर पर बुआई में एक एकड़ में 28 से 30 सेर तक बीज इस्तेमाल होता है। जौ लगभग सारे पंजाब में बोया जाता है। गुड़गांव, हिसार और फीरोजपुर जिलों में जौ का दो तिहाई क्षेत्रफल बारानी धरती है।

चावल : चावल गुड़गांव और शिमला जिले को छोड़ कर सारे राज्य में बोया जाता है। कांगड़ा, करनाल, गुरदासपुर, अमृतसर और फीरोजपुर जिलों में यह खासतौर पर होता है। यह खरीफ की फसल है। इसकी बोआई और रोपाई तीन महीने के अन्दर हो जाती है। मई-जून में धान को बियाड़ में बो दिया जाता है और जून से लेकर आधे अगस्त तक इसकी रोपाई की जाती है। सितम्बर से नवम्बर के अन्त तक फसल कट जाती है। कांगड़ा जिले में जहाँ घनी वर्षा होती है धान बखेर कर बोया जाता है। इसकी ऊँची किस्में बासमती, मुश्कान, हंसराज और बाड़ा हैं। मध्यम

दर्जे की किस्में परमल और सोन हैं और मोटे चावलों में बेगमी, सथरा और झोना आदि हैं।

मक्का : यह सारे प्रदेश में होती है, परन्तु कांगड़ा, होशियारपुर, जालन्धर, अमृतसर, लुधियाना, संगरूर और पटियाला में यह ज्यादातर बोई जाती है। मक्का पीली और सफेद दो तरह की होती है। पीली मक्का अधिक पैदा की जाती है। एक मोटी मक्का भी होती है जो शिमला के आस-पास होती है। जब इससे अनाज की फसल लेनी होती है तो इसे जुलाई-अगस्त में बोई जाता है और अक्तूबर में काट लेते हैं। किन्तु जब हरे चारे के लिए बोते हैं तो इसे मार्च-अप्रैल में बोकर दो महीने बाद काटते हैं। इसमें अनाज की फसल के लिए 8 सेर प्रति एकड़ और चारे के लिए 16 सेर प्रति एकड़ बीज पड़ता है। यहाँ मक्का एक एकड़ में 8 से 20 मन तक उगाई जाती है। सिंचित धरती में इसकी पैदावार अधिक होती है।

बाजरा : यह पंजाब के दक्षिणी भाग का विशेष खाद्यान्न है। इसकी 90 प्रतिशत फसल बारानी धरती में बोई जाती है। बोआई मानसून आने पर जून से अगस्त तक होती है। छोटे दाने की फसल बाजरी और बड़े दाने की फसल बाजरा कहलाती है। बाजरी अच्छी होती है परन्तु बाजरा से अधिक उपज मिलती है इसलिए किसान अधिकतर इसे ही बोते हैं। इसकी कटाई आधे सितम्बर से नवम्बर तक हो जाती है। इसके एक एकड़ में दो तीन सेर तक बीज पड़ता है और उपज 5-6 मन प्रति एकड़ होती है।

ज्वार : यह अधिकतर सिंचित भूमि में चारे के लिए अप्रैल के शुरू में तथा अनाज के लिए वर्षा शुरू होने पर बारानी भूमि में बोई जाती है। यह तीन महीने में पक जाती है। पंजाब के दक्षिण-पूर्वी भाग में और भी जल्दी पक जाती है। इसमें अनाज के लिए 8 सेर प्रति एकड़ बीज और चारे के लिए 20 सेर प्रति एकड़ बीज पड़ता है। इसकी उपज एक एकड़ में 5 से 8 मन तक होती है। इसे पंजाब के दक्षिणी जिलों में जाड़े में बड़े चाव से खाते हैं।

मोटे अनाजों की एक साधारण किस्म, रागी कांगड़ा में पैदा होती है। अन्य किस्म कंगनी कांगड़ा, करनाल, गुरदासपुर जिलों तथा चीना किस्म मध्य और आंतरिक हिमालय क्षेत्रों में पैदा होती है। मोटे अनाज अपेक्षाकृत अनुपजाऊ धरती में बोये जाते हैं और इसका अधिकतर भाग चारे की तरह पशुओं को खिला दिया जाता है।

दालें : मूंग को आमतौर पर मक्का, ज्वार और बाजरे की फसल में मिला कर बोते हैं। उड़द, मसूर, मोंठ, अरहर और कुल्थी (चने और मटर को छोड़कर) यहाँ पैदा होने वाली मुख्य दालें हैं। यह अधिकतर मध्यम दोमट मिट्टियों में होती है और सूखे को काफी सह सकती है। पंजाब के मूंग पैदा करने वाले जिलों में हिसार का स्थान प्रमुख है जहाँ यह बारानी फसल के रूप में उगाई जाती है। उड़द भी एक गौण फसल है जो मक्का के साथ दोमट मिट्टियों में उगाई जाती है। नम और पर्वतीय क्षेत्रों में पैदा होने वाली उड़द मैदानी इलाकों में उगाई जाने वाली उड़द से जल्दी

गलती है। यह विशेषकर कांगड़ा, गुरदासपुर, फीरोजपुर और अम्बाला में होती है। बाढ़ग्रस्त क्षेत्रों में मसूर अधिक बोई जाती है। यह अकेली और कभी-कभी जौ के साथ बोई जाती है। पंजाब में इसको उगाने वाले क्षेत्रों में करनाल, अम्बाला, अमृतसर और गुरदासपुर प्रमुख हैं। मोठ राज्य की महत्त्वपूर्ण खरीफ की फसल है। यह बारानी फसल की तरह फीरोजपुर के आस-पास बोई जाती है। कुल्थी ज्यादातर पहाड़ी क्षेत्रों में होती है। मटर तथा अरहर रबी की फसलें हैं।

गन्ना : यह लगभग सारे राज्य में पैदा होता है लेकिन मुख्यतः करनाल, जालंधर, अम्बाला, रोहतक, संगरूर और गुरदासपुर जिलों में उगाया जाता है। गन्ने की फरवरी-मार्च में दस जुताई करने के बाद बोआई की जाती है। इसको खाद और सिंचाई की अधिक जरूरत होती है। इसकी कटाई नवम्बर से फरवरी और बाद तक भी होती है। गन्ने की प्रति एकड़ 300 से 500 मन तक पैदावार होती है।

तिलहन : पंजाब में मूंगफली, तोरिया, तिल, सरसों, तारामीरा, अलसी और अरंडी आदि तिलहन पैदा होते हैं। तिल अधिकतर अमृतसर और गुरदासपुर जिले में कभी अलग और कभी-कभी कपास, ज्वार, मोठ, बाजरा आदि के साथ बोया जाता है। तिल जून से जुलाई तक बोते हैं और अक्तूबर-नवम्बर में काट लेते हैं। इसको अकेले बोने पर प्रति एकड़ में 1–2 सेर बीज पड़ता है और उपज पाँच मन प्रति एकड़ तक होती है। मूंगफली लुधियाना में सबसे अधिक होती है। इसे जुलाई में बोकर नवम्बर में खोदते हैं। जब खेत में 15 से 20 सेर प्रति एकड़ के हिसाब से बीज डाला जाता है तो 15 से 20 मन (फली के रूप में) उपज प्राप्त होती है। तोरिया अधिकतर अमृतसर, गुरदासपुर और करनाल में होता है। नहरी सिंचाई के क्षेत्रों में यह अकेला बोया जाता है। इसकी बोआई सितम्बर में और कटाई जनवरी में होती है। बीज दो सेर प्रति एकड़ और उपज आठ मन तक है। सरसों अधिकतर असिंचित क्षेत्रों में रबी की फसलों चना, जौ और गेहूँ के साथ बोई जाती है। मुख्यतः गुड़गांव, करनाल, रोहतक, हिसार, फीरोजपुर, भटिंडा, पटियाला और महेन्द्रगढ़ जिलों में इसकी खेती की जाती है। इसकी बोआई अक्तूबर नवम्बर में और कटाई मार्च में होती है। औसत उपज 7 से 8 मन प्रति एकड़ है। तारामीरा सूखे क्षेत्रों के लिए सबसे उपयुक्त पाया गया है इसलिए अधिकांश बारानी क्षेत्रों में बोया जाता है। अकेला बोने पर प्रति एकड़ दो सेर बीज पड़ता है और चार-पाँच मन प्रति एकड़ तक उपज हो जाती है। यह अधिकतर हिसार, फीरोजपुर और गुरदासपुर के पहाड़ी इलाके में पैदा होता है। अलसी की फसल आमतौर पर कांगड़ा और गुरदासपुर जिलों के उप-पर्वतीय क्षेत्रों तक ही सीमित है। दूसरे जिलों में भी यह गेहूँ के खेत में चारों तरफ बोई जाती है। इसे अक्तूबर में बोकर मार्च-अप्रैल में काट लेते हैं। इसकी उपज लगभग 3 मन प्रति एकड़ है। अरंडी केवल गुड़गांव जिले में ही बोई जाती है। इसे जुलाई-अगस्त में बोकर मार्च-अप्रैल में काटते हैं। इसे अकेला बोने से 10–15 मन प्रति एकड़ की की उपज ली जा सकती है।

A... 980
Date

कपास : यहाँ हल्की भूमि को छोड़ कर हर तरह की भूमि में कपास बोई जाती है। परन्तु यदि यह उन्हीं खेतों में पैदा की जाय जहाँ इससे पहले उगाई गयी फसलों जैसे मक्का, गन्ना और तोरिया को भारी मात्रा में खाद दी हो तो इस में प्रत्यक्ष रूप से खाद नहीं दी जाती। दक्षिणी पश्चिमी पंजाब के जिलों में इसकी बोआई अप्रैल के शुरू से मई तक चलती है। अमृतसर, गुरदासपुर, होशियारपुर जिलों की बारानी फसल जून में पहली वर्षा होने के बाद बोई जाती है। लुधियाना और जालंधर में जहाँ कुओं से सिंचाई होती है, कपास मार्च से जून तक और नहर से सींची गयी भूमि में मई से जून तक बोई जाती है। देसी कपास के लिए 4–5 सेर और लम्बी रेशे वाली कपास के लिए 8 सेर प्रति एकड़ बीज पड़ता है। बोने से पहले सदैव ही खेत में पानी लगा दिया जाता है। इसकी 5 से 6 बार तक सिंचाई की जाती है। देसी किस्मों की चुनाई अगस्त से शुरू हो जाती है जब कि उन्नत किस्मों की चुनाई मध्य नवम्बर में होती है। कपास को अधिकतर स्त्रियाँ और बच्चे ही चुनते हैं जो उपज का कुछ भाग मजदूरी में ले लेते हैं। उन्नत किस्म की औसतन उपज 7 मन कपास प्रति एकड़ तक हो जाती है। देसी कपास की पैदावार कम होती है लेकिन वह जल्दी पकती है। अमेरिकन कपास के लिए फीरोजपुर जिला प्रसिद्ध है परन्तु अमृतसर की देसी कपास भी फीरोजपुर के मुकाबले की होती है।

चाय : यह केवल कांगड़ा जिले में ही होती है। 1849 में पहली बार यहाँ चाय की खेती शुरू की गयी थी जो तब से बराबर बढ़ती चली गयी है। 1854 में यह केवल 1,250 एकड़ भूमि में होती थी जबकि 1892 में इसका क्षेत्रफल 9,537 एकड़ तक हो गया था। 1953–54 में चाय की खेती 8,900 एकड़ में होती थी। 1956–57 में पंजाब में चाय की प्रति एकड़ उपज 266 पौंड थी। कांगड़ा घाटी में पैदा होने वाली चाय की किस्म उतनी अच्छी नहीं होती जैसी भारत के अन्य चाय-क्षेत्रों में।

बागवानी

पंजाब में अपेक्षाकृत कम क्षेत्रफल में फल और सब्जियाँ उगायी जाती हैं। यहाँ के कुल उपजाऊ क्षेत्रफल के एक प्रतिशत भाग में ही बागवानी की जाती है परन्तु इस प्रदेश में भिन्न-भिन्न प्रकार की मिट्टियाँ और जलवायु होने के कारण तरह-तरह की बागवानी फसलें उगाई जाती हैं। फलोत्पादन के विचार से हम पंजाब को पाँच भागों में बांट सकते हैं :

1. चार हजार से आठ हजार फुट तक की ऊँचाई की पहाड़ियों का क्षेत्र।
2. दो हजार से चार हजार फुट तक की ऊँचाई की छोटी पहाड़ियों का क्षेत्र।
3. उप पर्वतीय क्षेत्र।
4. मध्यवर्तीय मैदानों का क्षेत्र।
5. दक्षिणी सूखे क्षेत्र।

इन भागों में पैदा होने वाले फलों का वर्णन आगे दिया जा रहा है :

विभिन्न बागवानी क्षेत्र

ऊँची पहाड़ियाँ : इस क्षेत्र में कुल्लू का उपक्षेत्र, बाह्य सिराज, कांगड़ा जिले की लाहौल व स्पीति की घाटियाँ व पटियाला जिले की कंडाघाट तहसील आदि आते हैं। लाहौल और स्पीति के ऊँचे क्षेत्र में फलोत्पादन लाभदायक व्यापार नहीं है। स्पीति में जंगली खुबानी और लाहौल में सेब खूब होते हैं। परन्तु मध्य हिमालय के कुल्लू और शिमला क्षेत्र में सेब, चैरी, अखरोट, नासपाती और खुबानी इत्यादि फल अधिक पैदा होते हैं। सेब यहाँ का मुख्य फल है और कुल क्षेत्रफल के तीन चौथाई भाग में पैदा होता है। कुल्लू के सेब बड़े मशहूर हैं और दूर-दूर तक भेजे जाते हैं।

निचली पहाड़ियाँ : इस क्षेत्र में कांगड़ा जिले की निचली पहाड़ियाँ और कंडाघाट तहसील का कुछ भाग है। यहाँ गुठलीदार फल जैसे आड़ू, बेर, खूबानी, लोकाट और बादाम आदि खूब होते हैं। इसके अतिरिक्त आम, नारंगी, चकोतरा और नीबू के फल भी पैदा किये जाते हैं। यहाँ पैकननट भी जो कुछ दिनों पूर्व अमेरिका से लायी गयी थी, खूब पैदा की जाती है।

उप-पर्वतीय क्षेत्र : अम्बाला, होशियारपुर, गुरुदासपुर और पटियाला जिले के उप-पर्वतीय क्षेत्रों का जलवायु साधारण है और वर्षा का वार्षिक औसत 30 इंच से 40 इंच तक है। यहाँ पर आम व नीबू कुल के फल जैसे संतरा, माल्टा आदि बहुतायत से पैदा होते हैं। इस क्षेत्र में गुरदासपुर जिले की भूमि सबसे अधिक उपजाऊ है। यहाँ सुर्ख माल्टा और लीची खूब पैदा की जाती है। अम्बाला जिले में अधोई, टोलनवाली और खानपुर बस्तियों के बागों में और होशियारपुर जिले के डालमवाल के बागों में कल्मी, दसहरी, लंगड़ा, सफेदा किस्म के आम खूब होते हैं। गुरदासपुर जिले के दैयालगढ़ और खोजेपुर के बगीचों में सभी तरह के आम, लीची, सन्तरा, आड़ू, बेर और नाशपाती आदि उगाए जाते हैं। इसके अतिरिक्त यहाँ अमरूद, लोकाट, अनार और मीठे नीबू भी पैदा हो जाते हैं।

मध्यवर्ती मैदान : इस क्षेत्र में अमृतसर, जालंधर, कपूरथला, लुधियाना और भटिंडा जिले आते हैं। इस क्षेत्र की भूमि बहुत उर्वरा है और यहाँ तरह तरह के फल पैदा किये जाते हैं। यहाँ व्यापारिक बगीचे भी बहुत हैं। इस क्षेत्र में उगने वाले मुख्य फल चकोतरा, आम, अमरूद, अनार, लोकाट, नाशपाती, आड़ू और बेर हैं। नीबू कुल के फल यहां बहुतायत से होते हैं और माल्टा तो इस क्षेत्र की बहुत मशहूर देन है।

दक्षिणी सूखा क्षेत्र : इस क्षेत्र में अम्बाला जिले का बहुत सा भाग आता है। यहाँ की जलवायु गरम और शुष्क है लेकिन बाहरी इलाके की जलवायु कुछ नम और अच्छी है। जहाँ सिंचाई की सुविधा है वहाँ अच्छे-अच्छे बगीचे हैं। यहाँ अमरूद, बेर, आम, संतरे इत्यादि खूब पैदा होते हैं। यहाँ खजूर भी अच्छे होते हैं। ऐसा अनुमान है कि भाखड़ा नहर का पानी निकलने पर इस क्षेत्र में फलोत्पादन और बढ़ जाएगा।

कृषि क्रियाएँ

पंजाब मे दो मुख्य फसलें होती हैं। (1) रबी—जिसे हारी कहते हैं, और (2) खरीफ या सावनी की। रबी अक्तूबर-नवम्बर में बोई जाती है और मार्च से मई तक काटी जाती है। खरीफ जून या अगस्त में बोई जाती है और सितम्बर-अक्तूबर में काट ली जाती है। गन्ना या कपास सावनी की फसल में होते हैं यद्यपि ये सावनी से पहले ही बो दिए जाते हैं। प्रमुख फसलों का मौसम के अनुसार वर्गीकरण नीचे दिया गया है :

मौसम के अनुसार प्रमुख फसलों का वर्गीकरण

फसल	बोने का समय	काटने का समय
	रबी	
गेहूँ	अक्तूबर से दिसम्बर	अप्रैल
जौ	अक्तूबर से दिसम्बर	मार्च-अप्रैल
चना	सितम्बर	,,
सरसों	अक्तूबर	,,
	खरीफ	
चावल	रोपाई जुलाई से अगस्त में	अक्तूबर से नवम्बर
मक्का	बोआई जून से अगस्त में	,, ,,
बाजरा	जुलाई	,, ,,
ज्वार	,,	,, ,,
मूंगफली	,,	नवम्बर
तिल	जून-जुलाई	अक्तूबर से नवम्बर
मूंग	,,	सितम्बर से नवम्बर तक
उड़द	,,	सितम्बर से नवम्बर तक
गन्ना	मार्च से अप्रैल	दिसम्बर से अप्रैल तक
कपास	अप्रैल से मई	अक्तूबर से दिसम्बर तक

कुछ फसलें खरीफ और रबी के बीच में भी बोई जाती हैं। इन्हें जायद (अतिरिक्त) खरीफ या जायद रबी की फसल कहते हैं। जैसे तोरिया दिसम्बर के अन्त में पकता है और जायद खरीफ की फसल में आता है, तथा तम्बाकू, खरबूजा और तरबूज जून में कट जाते हैं इसलिए जायद रबी की फसल में आते हैं।

पंजाब में भिन्न-भिन्न प्रकार की मिट्टियाँ और जलवायु पायी जाती हैं। इसी कारण यहाँ के अलग-अलग क्षेत्रों में कृषि विकास भी अलग होता है जिनका क्षेत्रानुसार विवरण आगे दिया जा रहा है :—

पहाड़ों की कृषि क्रियाएँ

हिमालय के बाहरी भाग के कुछ मध्यवर्ती भाग में कहीं उपजाऊ दोमट मिट्टी है और कहीं अनुपजाऊ कड़ी चिकनी मिट्टी। उर्वरा भूमि में कई प्रकार की फसलें बोई जाती हैं। कड़ी मिट्टी में चना और घटिया दालें ही बोई जा सकती हैं। कांगड़ा घाटी की खरीफ की विशेष फसलें चावल, मक्का, ज्वार, बाजरा, दालें, अदरक और हल्दी इत्यादि हैं। रबी की प्रमुख फसलें जौ, गेहूँ, चना, तिलहन (सरसों, अलसी) और मटर हैं। कपास और गन्ना भी कहीं-कहीं बोया जाता है।

यहाँ के खेतिहर क्षेत्रों में आमतौर पर खेत बनाए जाते हैं और कहीं-कहीं पर झाड़ियों की बाड़ या पत्थरों से उनकी मेड़बंदी की जाती है। ये खेत ढलानों पर सीढ़ीदार होते हैं। जहाँ बहुत सीधे ढलान हैं वहाँ पर खेत बड़े तख्त के आकार के बराबर होते हैं। परन्तु देहरा और नूरपुर के पश्चिम में जहाँ सीधे ढलान कम हैं खेतों के आकार बड़े हैं। इन क्षेत्रों में भी कई जगह दुफसली खेती की जाती है और बोने का समय सितम्बर से दिसम्बर तक और दुबारा अप्रैल से जुलाई तक होता है। बोआई बीज बखेर कर की जाती है। धान के लिए आमतौर पर जापानी तरीका लोकप्रिय है।

यहाँ खेती के लिए कम औजार इस्तेमाल किए जाते हैं। इस्तेमाल किए जाने वाले कुछ औजारों की सूची नीचे दी जा रही है :—

पर्वतीय क्षेत्रों के कृषि औजारों का विवरण

नाम	विवरण
हल	जुताई का औजार।
लोहल	हल की फाल जो मिट्टी काटती है।
माही	लकड़ी का भारी पटेला जिसे बैल खींचते हैं।
माछ	खेत को समतल बनाने के लिए काम आने वाला हल्का घुमावदार पटेला।
दन्द्राल	बांसों के दाँतों वाला गोड़क।
मांभा, कुदाल या कुदाली	गुड़ाई के काम आने वाला हाथ का औजार।
भुकरा, कथैला या भरोता	ढेला तोड़ने वाला लकड़ी का मुग्दर या थपकी।
त्रिल	भूसा उड़ाने के काम आने वाला लकड़ी का तीन काँटों वाला पंजा।
दरांती	फसल काटने का लोहे का औजार।
काही या कुस्सी	चौड़े तवे की कुदाल।
रम्भा	हाथ से खरपतवार उखाड़ने के काम आने वाला खुरपी की तरह का लोहे का औजार।
कुल्हाड़ू या चिहों	लकड़ी काटने की बड़ी कुल्हाड़ी।

फसल खलिहान में आती है तो किसान का मन खुशी से नाचने लगता है। ये किसान भी उसी खुशी में पंजों की सहायता से दानों को भूसा उड़ाकर अलग करने में मग्न हैं

घर में अनाज आने की खुशी में रोहतक
का यह किसान फसल को बरसाने
में कमरतोड़ मेहनत कर रहा है

यहां सिंचाई के लिए बड़े झरने और पहाड़ी नदियों का जल इस्तेमाल किया जाता है। इनसे खेत तक पानी लाने के लिए नाले, नालियाँ और गूल बनायी जाती हैं। कभी-कभी एक झरने से ही पानी लाने के लिए 15-20 नालियाँ बनानी पड़ती है। ऊँचे खेतों में पानी लाने के लिए कड़ी मेहनत करनी पड़ती है। पहाड़ों के अन्दर के चश्मों का पानी वहाँ तक पहुँचाने के लिए उन्हें आवश्यक ढाल देने वाली नालियाँ बड़े हेर-फेर और टेढ़े-मेढ़े रास्ते से ले जाई जाती हैं। आमतौर पर यहाँ पर कुओं से सिंचाई नहीं होती।

लाहौल और स्पीति का अधिकतर भाग दिसम्बर से अप्रैल तक बर्फ से ढका रहता है। बर्फ पिघलने पर बोआई शुरू हो जाती है। स्पीति क्षेत्र का मुख्य खाद्यान्न जौ है। अच्छी फसल होने पर एक एकड़ में 25 मन जौ होते हैं। नीचाई पर जौ की बजाय गेहूँ की खेती ज्यादा की जाती है। यहाँ पर मटर और सरसों भी खूब पैदा होती है। लाहौल की मुख्य उपज जौ, गेहूँ, कोदों व आलू हैं। जौ की तीन प्रजातियाँ हैं: (1) सरनो, (2) जाद, और (3) थंगजाद। पहली किस्म के जौ में छिलका नहीं होता। यह यहाँ पर सब से अच्छा माना जाता है। दूसरी किस्मों में छिलका होता है। पाटन की घाटी में थंगजाद किस्म का जौ बहुत होता है। यह जुलाई में पकता है। इसके कटते ही उन खेतों में जई या कोदों बो दिया जाता है।

मैदानी खेतों में, जहाँ लोग खेतों के पास ही रहते हैं, प्रति वर्ष दो फसलें होती है और आबादी से दूर के खेतों में एक फसल होती है। दुफसली क्षेत्रों में मक्का और गेहूँ मुख्य फसल हैं। एक फसली क्षेत्र में दाल व चने की फसल होती है। पर्वतीय भूमि में मक्का और गेहूँ बहुतायत से बोया जाता है और अन्य भाग में बाजरा, चावल, सरसों, दालें और आलू बोया जाता है।

यहाँ सिंचाई गूलों और कुओं से होती है। चूँकि छोटे-छोटे खेत हैं इसलिए बहुत से किसान एक समय मिलकर सिंचाई करते हैं। यहाँ के किसान चश्मों के पास वाली भूमि में नालियाँ बनाकर गूल काट लेते हैं और कभी-कभी चट्टानों में सुरंग खोदकर भी खेतों में पानी ले जाते हैं।

खरीफ की जुताई जुलाई में शुरू हो जाती है और आधे अगस्त तक चलती रहती है। मक्का कहीं-कहीं तो अप्रैल में ही बो दी जाती है। रबी की फसल में जुताई और बोआई आधे सितम्बर से नवम्बर तक होती है और पिछेती गेहूँ दिसम्बर के शुरू तक बोया जाता है। मक्का की कटाई और छड़ाई अक्तूबर में होती है। चावल, दाल व बाजरे की कटाई-मड़ाई व बरसावन नवम्बर में होती है। रबी की फसल मध्य अप्रैल से मई के अन्त तक कट जाती है।

यहाँ अधिकतर किसान जाट और सैनी जाति के लोग हैं। ये लोग अच्छी खेती करते हैं। रबी की फसल खरीफ की फसल से अच्छी जुताई करके की जाती है। गेहूँ के खेत में चने के खेत से ज्यादा जुताई करनी पड़ती है इसलिए उसमें समय अधिक मिल जाता है। गेहूँ के लिए जुताई के अलावा अच्छा बीज बोना भी जरूरी है।

चने की जड़ें मजबूत होती हैं इसलिए इसकी अधिक देखभाल करने की जरूरत नहीं पड़ती। फिर भी पहाड़ों में मैदानों के मुकाबले जुताई कम ही होती है। यहाँ पहली जुताई को ढाल कहते हैं क्योंकि उसमें डले फूटते हैं और दूसरी को वाज कहते हैं। आमतौर पर पथरीली भूमि में जुताई तीन बार से अधिक नहीं की जाती। यहाँ गहरी जुताई अच्छी नहीं समझी जाती और वर्षा के बाद बीज भी गहरा नहीं बोया जाता। बल्कि जहाँ दलदली और मुलायम धरती हो वहाँ भारी पटेला के बजाय "सुहागा" (हल्का बेलन) चलाया जाता है जिससे ढेले फूट कर धरती समतल हो जाती है।

पहाड़ों पर बोआई तीन तरह से होती है :

१. **नली या पोरा विधि :** हल में ऊपर से एक बांस की नली लगा दी जाती है जिसका नीचे का सिरा मिट्टी में घुसा रहता है। यह तरकीब तब काम में ली जाती है जब मिट्टी की ऊपरी सतह में नमी कम हो। इस तरीके से बीज को डालने का कारण यह है कि वह मिट्टी में पहुँच कर नमी को हासिल कर सके।

२. **केड़ा विधि :** इसमें हल के साथ-साथ बीज को कूंड में डाल कर बोया जाता है। इस विधि से धरती में बीज ज्यादा गहरा नहीं पड़ता। यह तरीका तभी काम में लाया जाता है जब भूमि में काफी नमी हो।

३. **चट्टा विधि :** इसमें बीज खेत में बखेर कर बोया जाता है। इस तरह से बोने पर फौरन अंकुर फूटने लगते हैं। अगर उन्हें खेत की नमी सूखने पर बने हुए डलों पर बखेरा गया हो तो वे कम पनपते हैं। यह स्थिति आमतौर पर तब होती है जबकि केड़ा पद्धति से बोआई की गयी हो। इसके अलावा यदि बोआई के बाद हल्की वर्षा हो जाए तो मिट्टी पर पपड़ी जम जाती है। इस पपड़ी को 'कप्पड़' या 'करंडी' कहते हैं जो हल्की दोमट मिट्टी में दंद्राल चलाकर तोड़ी जाती है और खेत में दुबारा जुताई करनी पड़ती है। दंद्राल एक वक्र कृषि औजार है जिसमें बांस के ८-10 दांते लगे होते हैं।

फसल उगाने पर निराई-गुड़ाई करना यहाँ की कृषि क्रियाओं में विशेष महत्त्वपूर्ण है किन्तु मक्का की फसल में अवश्य निराई-गुड़ाई की जाती है। अच्छे किसान जानते हैं कि मिट्टी पर बनी पतली पपड़ी पलवार का काम देती है और धरती की नमी को सूखने नहीं देती।

मैदानों की कृषि क्रियाएँ

मैदान में भी अधिकतर फसल लेने के लिए तीन पद्धतियों का रिवाज है। (1) दुफसली, (2) रबी और फिर खरीफ, और (3) प्रत्येक वर्ष रबी। परन्तु यहाँ के अधिकांश क्षेत्र में जहाँ वर्षा अनिश्चित है दूसरी पद्धति से खेती नहीं हो पाती।

दो फसलें अधिकतर खाद दी हुई व नहर या कुएं से सींची हुई भूमि में ही होती हैं। यहाँ खरीफ में मक्का, फिर रबी में गेहूँ, चना या चारा बोया जाता है। अगर खरीफ की फसल में कपास बोई गई हो तो रबी में सेंजी चारा बोते हैं। जिन

इलाकों में नदी से सिंचाई होती है वहाँ ईख बोई जाती है। यह दुफसली के बराबर ही पड़ती है। आबादी के पास के कुएं से सींचे जाने वाले क्षेत्रों में तीन फसलें भी होती हैं। उनमें सब्जी या चारा बीच में बोया जाता है।

दुफसलों से फसल चक्र बना रहता है और कुछ समय के लिए भूमि खाली भी रहती है। जमीन नहरी सिंचाई या नियमित वर्षा पर निर्भर होती है और ऊँची जगह पर यहाँ दुफसली खेती ही होती है। रबी की फसल में खाली गेहूँ या गेहूँ-चना बोया जाता है। उसके बाद मामूली जुताई करके खरीफ की फसल में ज्वार या उड़द, मूंग वगैरह दालें बो देते हैं। इसके बाद जमीन को परती छोड़ देते हैं और फिर यही फसलें बोते हैं। अगर कभी वर्षा समय पर न हो तो यह क्रम टूट भी जाता है। एक-फसली खेती हल्की भूमि में वर्षा पर आधारित क्षेत्रों में होती है। अगर भूमि अच्छी होती है तो उस पर गेहूँ-चना या केवल गेहूँ बो देते हैं। अगर धरती रेतीली हुई तो केवल चना बो दिया जाता है। अच्छी भूमि में आमतौर पर पहले रबी और फिर खरीफ की फसल ली जाती है। इसके बाद एक साल तक धरती परती रहती है। लेकिन परती भूमि तभी छोड़ते हैं जब कि वर्षा न हो। नहरी सिंचाई की भूमि में भी यही होता है। यदि रबी की फसल हल्की रहे तो खरीफ में ज्यादा रकबे में चारा बो देते हैं ताकि पशुओं को भरपूर आहार मिल सके।

जुताई ज्यादातर बैलों से ही होती है, परन्तु भूड़ा धरती में ऊँट और तराई की धरती में भैंसे से भी जुताई करते हैं। उसके बाद ढेले फोड़ने के लिए एक चौड़ा पटेला 'सुहागा' खेत में फेरा जाता है। इसे बैल खींचते हैं और चलाने वाला उस पर खड़ा होकर बैलों को हाँकता है। इस सम्बन्ध में पंजाब में यह कहावत है कि पटेला या सोहागा की एक फिराई सैकड़ों जुताइयों के बराबर है क्योंकि पटेला चलाने से खेतों में नमी बनी रहती है। कड़ी ढेलेदार धरती की जुताई तब तक नहीं की जाती जब तक कि वह वर्षा से मुलायम न पड़ जाए। बोआई ज्यादातर हाथ से बीज फेंक कर या बीजणयन्त्र से की जाती है। नम मिट्टी की अपेक्षा खुश्क मिट्टी में ज्यादा मात्रा में बीज डालना पड़ता है। बोने से पहले खरपतवारों को उखाड़ कर निकाल देते हैं। बियाड़ की तैयारी के लिए की गयी सिंचाई को रौनी कहते हैं। रौनी सिंचाई के बाद खेत की एक जुताई और करते हैं और फिर पटेला चला देते हैं। फिर निराई तक खेत को नहीं छेड़ते। इसके बाद खरपतवार हटाने के लिए ही निराई-गुड़ाई करते हैं।

खाद : ज्यादातर खाद गोबर-कूड़े में राख मिलाकर तैयार की जाती है। ईख के खेत में तैयारी से पहले ईख-पत्तियों की राख की खाद देते हैं। कस्बों के पास की भूमि में कूड़े या मल की खाद दी जाती है। ज्यादातर सींची हुई भूमि में ही खाद देते हैं। हमारे देश में कुछ वर्षों से किसान रासायनिक खाद या उर्वरक भी काम में लाने लगे हैं। मक्का, गन्ना, रूई को तो खाद देनी पड़ती ही है। कभी-कभी गेहूँ को भी खाद देते हैं। चावल में भी खड़ी फसल में खाद दी जाती है।

5.

खेतिहर जातियाँ

पंजाब के गाँवों में चहल पहल अधिकतर मन्दिर, गुरुद्वारा, धर्मशाला, कुओं, भाड़ व गाँवों की दुकान पर ही होती है। जब घर की स्त्रियाँ काम से फारिग हो जाती हैं तो वे कुओं पर पानी भरने के लिए आ जाती हैं। शाम को लड़के या लड़कियाँ मक्का और चने लेकर भड़भूंजे की दुकान पर पहुँच जाते हैं। ये भाड़ धीवरों के होते हैं। चने भुनने की चटर-मटर की आवाज और बच्चों की चिल्लपों बड़ी सुन्दर लगती है। शाम को गाँव की दूकान पर या चौपाल पर इकट्ठे होकर लोग गप्पें हाँकते हैं। दुकानें ब्राह्मण या व्यापारी चलाते हैं।

सुबह के वक्त मुर्ग की बाँग के अलावा तेल के इंजन से चलने वाली चक्की की आवाज भी सुनाई देती है। किसान हल लेकर अलस सुबह अपने खेतों की ओर चल देते हैं और पशुओं की घंटियाँ ब्राह्म मुहूर्त मे ही सुनाई पड़ती हैं। चक्की की घर-घराहट भी दूर तक सुनाई देती है। किसान कड़ी धूप के कारण अपना काम सुबह १० बजे तक ही समाप्त कर देते हैं। उसी समय घरवाली कलेवा लेकर खेत पर पहुँच जाती है। कलेवे में गेहूँ की बासी चपाती, आम का अचार, नमक और मट्ठा या मक्खन होता है। नौ बजे से ही गलियों में लड़के और लड़कियाँ स्कूल जाने लगते हैं। दोपहर को किसान अपने पशुओं को प्याऊ पर पानी पिलाने ले जाते हैं और फिर कई घंटे तक लगातार गाँव में शान्ति बनी रहती है।

गेहूँ की सुनहरी बाल पकते ही वैसाखी के त्यौहार पर फसल कटना शुरू हो जाता है। अप्रैल, मई और जून में किसान बहुत व्यस्त रहता है। इन दिनों गेहूँ की कटाई, गहाई और ओसाई और दावतों का क्रम शुरू होता है। प्रत्येक परिवार एक-दूसरे को बुलाता है और दावतें करता है। कुछ दिनों तक बराबर यही क्रम चलता रहता है। दावत देने वाला दूसरे गाँववालों के यहाँ से दूध, दही इकट्ठा करके खीर व रायता बनाता है। किन्तु आजकल लोग व्यक्तिवादी अधिक हो गये हैं और दावतों (नैनदू) का प्रचार बहुत कम होता जा रहा है। पंजाब के किसानों में अनेक जातियाँ और उपजातियाँ हैं। उनका क्षेत्रानुसार वर्णन आगे दिया जा रहा है :

लाहौल और स्पीति के किसान

लाहौली एक मिश्रित जाति है। इनके चेहरे की बनावट में हम आर्य व अन्य जातियों की मिलावट देखते हैं। मर्द और औरत दोनों का शरीर छोटा और

दिन भर के परिश्रम से थकी खेत से
लौटती हुई एक लाहौली नारी

लाहौल के इन बालकों की गुलाबी
मुस्कराहट कितनी मनमोहक है !

गठा हुआ होता है। गालों की उभरी हड्डियाँ, बादाम जैसी तिरछी आँखें और चौड़े मुँह अनार्यों जैसे लगते हैं। इनका रंग सुर्खी लिए भूरा होता है। बूढ़ों के चेहरों पर झुर्रियाँ पड़ जाती है। यह बड़ी खुशदिल कौम है। इनके चेहरे से ईमानदारी व प्रसन्नता झलकती है। ये स्वभाव से सौम्य और कठोर वातावरण में हँसकर जीवन बिताने वाले लोग हैं।

औरतों के मुकाबले में मर्द समझदार और चतुर होते हैं। तिब्बत, लद्दाख, कुल्लू की घाटी और उत्तर-भारत के मैदानों में घूमने के कारण इनकी व्यापारिक बुद्धि भी बड़ी कुशाग्र होती है। ये लोग मजबूत हैं और हर खतरे का मुकाबला कर सकते हैं। ये कठोर जीवन के आदी हैं। ये शांतिप्रिय लोग हैं, आततायी और अपराधी नहीं। शायद यह बुद्ध धर्म के प्रभाव के कारण है।

नवम्बर से मार्च तक लाहौल के गाँव बर्फ से दबे रहते हैं और बाहर के सभी काम-काज बन्द हो जाते हैं। इस समय के लिए यहाँ के किसान बहुत सारा ईंधन जैसे उपले, झाड़फूस, भोजपत्र आदि इकट्ठा कर लेते हैं। इनका आधा दिन तो पशुओं को खिलाने पिलाने में खर्च हो जाता है।

जाड़ों के महीने में एक प्रकार से लाहौलियों की कैद सी हो जाती है। इन दिनों में ये अपने आपको खुश रखने की पूरी कोशिश करते हैं। दिसम्बर के शुरु में ही गोंधला, गुमरिंग और कंगसर के बड़े बड़े ठाकुर दावतों का सिलसिला शुरू कर देते हैं। ठाकुर गाँव के सब आदमियों को शाम को अपने यहाँ बुलाता है और उनको नमकीन मक्खन डली तिब्बती चाय दावत में देते हैं। इसके बाद चंग (जौ की देशी शराब) का दौर चलता है। फिर रात को आठ बजे के करीब प्रीति-भोज होता है। इसमें बकरे के माँस की कढ़ी, खमीरी और जई की रोटियाँ परोसी जाती हैं। बासी माँस इनको अधिक प्रिय है। यहाँ दो बरस पुराना बकरी का माँस बहुत रुचिकर माना जाता है और खाने के बाद में फिर चंग का एक दौर चलता है। फिर स्त्री पुरुष मिलकर लोकगीत गाते हैं। इन गीतों में अपने पूर्वजों की वीरता का वर्णन होता है। दस बजते बजते औरतें व बच्चे अपने घरों को चले जाते हैं और एक घंटे के बाद मर्द चले जाते हैं। फिर किसी दूसरे दिन कोई और आदमी भोज देता है। इस तरह दावतों का दौर चलता ही रहता है।

जाड़े की रातों में भी काम करके ये लोग मन बहलाते हैं। मर्द-औरतें ऊन कातते हैं और खूब बातें भी करते जाते है। बहुत से घरों में खड्डी भी होती है और बुनाई चलती रहती है। ऊनी कपड़ा उनके अपने भी काम आता है और इसे बिक्री के लिए बाहर भी भेजते हैं।

औरतों की शक्लें भी मिली जुली जातियों की प्रतीत होती हैं। कुछ की नाक अच्छी होती है और चेहरे की बनावट सुन्दर होती है, परन्तु आँखें वक्राकार होती हैं। कुछ जवान स्त्रियाँ बहुत सुन्दर लगती हैं। उनके लम्बे चेहरे, बादाम की सी आँखें,

गेहुँआ रंग काफी अच्छा लगता है। इनको सफाई अधिक प्रिय है। वे गाँवों के झरनों पर तौलिये, कंघे, शीशे लिए हुए अक्सर देखी जा सकती हैं। वे साबुन का भी प्रयोग करती हैं। 'डोलमाँ', 'अंगमाँ' अधिकतर लाहौली स्त्रियों के नाम हैं या उनके साथ में जुड़े हुए नाम होते हैं। बहुत से नाम 'सोनम डोलमाँ', 'ताशी पोलमाँ' 'ताशी यांकी', 'छेरिंगयाँकी', 'सोनम अंगमाँ', 'छिमी अंगमाँ' और 'हिशंवती' आदि हैं।

पोशाक : औरतें चुस्त पायजामा और कमर से चिपटा चौड़ा सा कुर्त्ता पहनती हैं। उसके ऊपर कमरबन्द और जाकट रहती है। इनको सुरमई, काले या भूरे कपड़े बहुत पसन्द हैं। कैलांग की स्त्रियाँ बड़ा सुन्दर श्रृंगार करती हैं। वे अपने बालों की बहुत सी चोटियाँ गूँथती हैं और उनको एक चांदी के जेवर से गूँथे रहती हैं। सिर पर बोड़ला जैसा जेवर पहनती हैं और उनकी कनपटी पर दो रंगीन गेंद भी लटकी रहती हैं। इस श्रृंगार के कारण उनके माथे चौड़े हो जाते हैं। यहाँ ज्यादातर मर्द औरत सरकण्डे के बुने हुए जूते पहनते हैं। अच्छे घरानों के लोग फरदार जूते भी पहनते हैं।

लाहौल की स्त्रियाँ परिश्रमी होती हैं और काम में मर्दों की मदद करती हैं। गूलों से सिंचाई का काम तो औरतें अकेली ही करती हैं। वे खेती का काम करते करते लोक गीत भी गाती जाती हैं और किसी परदेशी के आने पर शरमाती नहीं हैं।

विवाह : युवक और युवतियाँ एक दूसरे से खूब हिलते मिलते हैं। आपस में प्यार हो जाता है तो अंत में विवाह कर लेते हैं। शादी तय होने पर लड़का लड़की को भगा ले जाता है और फिर लड़की के पिता के पास चंग भेजता है। चंग स्वीकार होने पर सगाई हो जाती है। चंग अधिकतर स्वीकार कर ही ली जाती हैं। धार्मिक संस्कारों को पूरा करने के लिए लामा आता है। वह मन्त्र बोलता है और एकत्रित सभी स्त्री पुरुष मन्त्रों को दुहराते हैं। इसके बाद उत्सव मनाते हैं और खूब चंग पीते हैं। यहाँ बहु-पति प्रथा होने से जायदाद का बँटवारा कम होता है।

कुल्लू घाटी के किसान

कुल्लू की घाटी दूरस्थ और अगम्य होने के कारण अपना विशेष आकर्षण रखती है। कुल्लू के लोगों का सांस्कृतिक जीवन महत्त्वपूर्ण है। पुरातन हिन्दू तो कुल्लू को सृष्टि का अन्त समझते थे इसीलिए यहाँ की लोक भाषा में इसे "कुलान्त पीठ" कहा जाता है।

कुल्लू के लोग और स्थानों की अपेक्षा बड़े सीधे होते हैं। यहाँ के लोग अधिकांश अशिक्षित हैं। वे आपस में तो बड़े हँसमुख और मिलनसार होते हैं परन्तु परदेसी के प्रति बड़े कठोर होते हैं। यदि चतुराई से उन पर शासन किया जाय तो वे अफसरों से डरते हैं। वे कांगड़ा के लोगों के समान परिश्रमी, मितव्ययी और उद्योगी नहीं हैं तथा अंधविश्वासी और रूढ़िवादी अधिक हैं।

कुल्लू के इस गड़रिये का उमड़ा प्यार न रुका तो उसने
बकरी के नवजात बच्चों को अपनी गोदी में रख लिया

कुल्लू की यह गृहिणी कितनी प्रसन्न है !

यहाँ का समाज जाति नियमों से चलता है। उनका ऐसा विश्वास है कि मनुष्य के द्वार, बुलाने पर देवता भी रंज और खुशी के मौके पर आते हैं। धार्मिक और सामाजिक बन्धन कड़े हैं जिन्हें बंज कहते हैं। जाति बहिष्कार भी काफी प्रचलित है। यह अकारण नहीं होता। कभी-कभी दुष्ट स्त्री से छुटकारा पाने के लिए उग्र का सहारा लिया जाता है। झगड़े पंचायतें तय करती हैं। विशेषकर पार्वती घाटी के प्रदेश में वृद्धों का बहुत आदर होता है। युवक वृद्धाओं के पैर छूते हैं। मर्द और औरत दोनों ही बड़ों का आदर करते हैं। बसन्त में विवाहित बहनों के घर पाहुर या पूरियाँ भी प्रेमपूर्ण सम्बन्धी भेंट के रूप में भेजी जाती हैं। कुल्लू और सिराज सभी जगह यह रिवाज है। नयी बहू के साथ धर्माचार किया जाता है ताकि उसका मन बहल सके और उसे नया घर अजीब न लगे। इन्हें प्रेमपूर्ण सामाजिक जीवन अच्छा लगता है। यहाँ परियों की कहानियाँ बहुत प्रचलित हैं। सुन्दर-सुन्दर मन्दिरों के निर्माण से यहाँ के लोगों की सौन्दर्यप्रिय प्रकृति का पता चलता है। वे संगीतज्ञ व रसिक भी हैं। स्त्रियों द्वारा विवाह के अवसर पर सुन्दर गीत गाए जाते हैं।

कुल्लू की स्त्रियाँ अपने पति पर शासन करती हैं और स्वयं ही शासन करना चाहती हैं। यहाँ पर यह एक साधारण सी बात है कि मंगनी के समय ही लिखित प्रतिज्ञा द्वारा पति से वचन ले लिया जाता है कि वह पुनः विवाह नहीं करेगा जब तक कि पहली स्त्री पंगु या बांझ न हो जाय। स्त्री खेती में सहयोग देती है। घर के काम करने व बच्चों की मां होने के कारण वह अपने आपको घर की मालकिन समझती है। कभी-कभी ऐसा भी होता है कि पत्नी पति से न पटने पर या प्रेम होने पर पड़ौसी के साथ भी भाग जाती है।

सर्वरी घाटी के क्षेत्र में अक्सर यह होता है कि मंगनी के समय निश्चित धन ससुर को न दे सकने के कारण पति को धन के बदले में ससुर के घर तीन से सात साल तक की अवधि के लिये मजदूरी करनी पड़ती है। यहाँ शादी आमतौर पर मां-बाप की मर्जी से ही सम्पन्न होती है।

सारे सिराज व वजीरी-रूपी के कुछ भागों और कुल्लू तहसील के मलाना क्षेत्र में एक-एक स्त्री कई पति रखती है। ये भाग बहुत घने बसे हुए हैं। यहाँ लोगों के खाने के लिए पर्याप्त अन्न नहीं होता और हर वर्ष बाहर से मंगाना पड़ता है। इसीलिए यहाँ आर्थिक कठिनाई के कारण कई पति रखने का रिवाज पड़ गया है। यहाँ ज्यादातर 'कनैट' और दागी जाति के लोग हैं। ब्राह्मणों की आबादी बहुत कम है।

कनैत जाति : पूर्वी हिमालय के पहाड़ी क्षेत्र व पंजाब के कुछ क्षेत्रों की मुख्य खेतिहर जाति कनैत है। जनरल कनिंघम ने इन लोगों को संस्कृत साहित्य के अनुसार कुलीन जाति के लोग बताया है। उसकी राय है कि इस कौम के बहुत से नाम हैं जैसे कुनीनदास या कुलीनदास और ये आर्यों के आने से पहले सिन्धु नदी से लेकर ब्रह्मपुत्र तक हिमालय की तराई में बसे हुए थे। जब नीचे से आने वालों की संख्या बढ़ गयी तो ये ऊपरी पहाड़ियों पर बस गए।

कनैत एक बड़ी जाति है। इसमें दो कबीले है। एक खसिया और दूसरा राव या राहु। सम्भव है कि यह जाति आगन्तुक आर्य-वैश्यों और पहाड़ों की स्त्रियों के सम्पर्क से पैदा हुई हो। खसिया और राव जाति में काफी भेद है। खसिया ब्राह्मणों की तरह रिश्तेदार के मरने पर सूतक मानते हैं। खसिया लोग जनेऊ भी पहनते हैं मगर राव नहीं पहनते।

कनैतों में मुख्यतया किसान या गड़रिये लोग हैं। जब कोई उनसे जाति पूछता है तो वे ठाठ से अपने आपको 'जमींदार' बताते हैं। वे बड़े मेहनती और किफायत-सार होते हैं। मलाना के कनैत कुल्लू के किसानों से ज्यादा सुन्दर हैं। इसका कारण यह है कि उनका विकास लगातार संकरण के बाद हुआ है। इनकी भाषा बहुत कुछ तिब्बतियों से मिलती है। देखने में ये लोग एक दूसरे से काफी भिन्न हैं। कोई-कोई काले और सांवले भी हैं। ये लोग ज्यादा लम्बे तो नहीं होते मगर चुस्त, मजबूत और सुन्दर होते हैं।

स्त्रियों की आँखें अच्छी होती हैं और चेहरे पर भोलापन झलकता है। यहाँ सब से सुन्दर सिराज के लोग हैं। यहाँ की औरतें खेती के अलावा घर का बहुत काम काज करती हैं। उनको देश के अन्य सभी स्थानों की स्त्रियों की तरह पारिवारिक आजादी है। ये मेले तमाशों (नाचने) और मन्दिरों में खूब जाती हैं। उत्सव या मेलों में मर्द औरतें मिलकर गाते और नाचते हैं। लेकिन कुल्लू की औरतें अलग-अलग नाचती हैं और वह भी सिर्फ रात में। बसाहिर में मर्द औरत एक साथ नाचते है। लाग और पैरोल वजीरी लोग अक्सर मेलों से लौटते हुए नशे में धुत्त दिखाई देते हैं क्योंकि वे घर की खींची हुई 'सुर' या लुगरी (जौ की शराब) पीकर लौटते हैं। रूपी और सिराज में शराब पीना हेय समझा जाता है। जाड़ों में जब बर्फ के कारण वे कमरों में बन्द रहते है तो मर्द कम्बल या कपड़ा बुनकर समय बिताते हैं। कुल्लू की औरतें बुनाई नहीं करतीं। कुल्लू में नरायनु, पन्नू, सन्तु, दिल्लू, कमलू, लज्जू, दादू, जेठू, खिकू, रव्वकू आदि लोगों के नाम होते हैं।

दागी और कोली : दागी शब्द दाग (जानवर) से लिया गया है। ये मरे जानवरो की खालें उतारते हैं। कुल्लू में ऐसे लोग बहुत कम हैं, परन्तु सिराज में खाल उतारने वाले बहुत हैं। इनको भी दागी और कोली कहते हैं। परन्तु ये सब आपस में शादी विवाह कर लेते हैं और इनमें आपसी खान-पान भी खुला हुआ है। कोली जाति में आमतौर पर साबू, बुखो, गरीबू, ननकू, फतु, ललु, दीनू, खयालू, नन्दू आदि नाम होते हैं।

वेशभूषा : अधिकतर इस प्रदेश के लोग स्थानीय भेड़ की ऊन से हाथ के कते बुने कपड़े पहनते हैं। परन्तु रोजाना फटे पुराने कपड़े पहने रहते हैं। मर्द-औरत दोनों की पोशाक आकर्षक है। सफेद या लाल चारखाने का कम्बल या काली सफेद शतरंज की तरह की चादरें औरतों की पोशाक हैं। परन्तु ये चादर बहुत सफाई से एक ही पिन से सीने पर टकी रहती हैं और कमर पर एक पेटी से बँधी रहती हैं जिससे

बाहर की बनावट तो पूरी तरह दिखाई देती है परन्तु हाथ, घुटने और टाँगें ढक जाती हैं। मोजे शौक के लिए पहने जाते है, पर पिंडलियों पर ये लोग अकसर ऊन की पट्टियाँ बाँधते हैं। कुल्लू की स्त्रियाँ अपने सिर के वस्त्र को बहुत ही सजावट से पहनती हैं। युवा लड़कियाँ तो अकसर नंगे सिर रहती हैं। उनके सिर के बाल लम्बी चोटियों में गुथे रहते हैं। बहुत-सी स्त्रियाँ उनमें चुटीला भी सजावट के लिए लगा लेती हैं। बड़ी-बड़ी लड़कियाँ चोटियों का जूड़ा बना लेती हैं। जूड़े पर आकर्षक टोपी पहन लेती हैं। लेकिन ज्यादातर लोग सर पर रूमाल बाँधते हैं। ये रूमाल जिसे थिप्पू कहते हैं काला या सुर्ख होता है और बँधकर कनपटी पर आ जाता है। स्त्रियाँ कानों में वालियाँ पहनती हैं। कन्यायें या सधवायें सोने की बुलाक पहनती हैं। विधवायें बुलाक नहीं पहनतीं। गले में ये बहुत-सी मालायें, हाथों या कलाई में दस्तबन्द और चाँदी के कभी सादे और कभी जलेबीदार कड़े पहने रहती हैं। जेवरों का प्रदर्शन मेले या दावतों पर किया जाता है। जो औरतें शौक या गमी के कारण आभूषण नहीं पहनतीं वे इन मौकों पर अपने जेवर औरों को किराये पर दे देती हैं।

यहाँ के लोग ढीला-ढाला ऊनी लबादा पहनते हैं और पट्टीनुमा सफेद या खाकी जाकेट। यह कमर पर कपड़े से बँधी रहती है। इनके पायजामे ढीले होते हैं, जो टखनों पर बँधे रहते हैं। ये पोशाक शादी या खुशी के अवसर पर पहनी जाती है। गर्मी या अधिक काम के समय ये इसे उतार देते हैं। पोशाक के ऊपर सफेद या चारखाने का कम्बल लपेटे रहते हैं। यह कम्बल छाती के ऊपर से इस ढंग से लपेटा जाता है कि आगे पीछे शरीर तथा घुटनों तक का पूरा अंग ढक सके। यह एक पिन से अटका रहता है। कम्बल के ऊपर एक सुन्दर पीतल या लोहे की जंजीर लटकी रहती है जिनमें कुछ शल्य चिकित्सा के औजार जैसे नश्तर, जख्म कुरेदनी, कैंची, चाकू इत्यादि लटके रहते हैं। मर्द आभूषण नहीं पहनते। सिर्फ जंजीर या बाजूबन्द या किसी स्वर्गीय की याद में ताबीज पहन लेते हैं। सिर पर लाल गोटे वाली टोपी होती है उसमें ये कहीं-कहीं चाँदी के पिन खोंसे रहते हैं। उत्सवों पर मोर के पर भी लगा लेते हैं। बाह्य सिराज की घाटी में अधिकतर पगड़ी या सफेद टोपी पहनी जाती है। हरेक मर्द के कन्धे या पीठ पर एक लम्बी टोकरी लदी रहती है, जिसमें ऊन कातने की तकली, ऊन तथा लकड़ी आदि भर लेते हैं। गड़रिये छज्जेदार ऊँची टोपी पहनते हैं। हरेक के पास चकमक पत्थर व एक टाट का टुकड़ा डिबिया में रहता है। बरसात में इसी प्राचीन तरीके से यहाँ आग जलाते हैं। इन्हें फूलों का बड़ा शौक है। ये त्यौहारों पर गैंदे के हार पहनते हैं और नरगिस के फूल अपनी टोपी या बालों में लगाते है।

भोजन : कुल्लू के लोग दिन में तीन बार खाते हैं। सुबह 8-9 बजे के लगभग कलेवा करते हैं और फिर मध्याह्न का भोजन। इसे दोपहरी या धियां कहते हैं। शाम के भोजन को ब्याली कहते हैं। धनी लोग चावल, गेहूँ का आटा खाते हैं। गरीब जौ, मक्का या सस्ता चावल और सब्जी खाते हैं। जौ या मक्का की रोटी को सिधू कहते हैं। गेहूँ, चावल या सब्जी के मिले जुले भोजन को फिमरा कहते हैं। चावल या सरसों

की मिली-जुली भूजी को कच्पी कहते हैं। लुगरी यहाँ का आम पेय है जो कई तरह की होती है। सबसे अच्छी लुगरी शहद और कुछ जड़ी बूटियों के रस से बनती है जिसे धाएली कहते हैं। चावलों से तथा गेहूँ के आटे या चपाती को पानी में भिगो कर भी लुगरी बनती है। यहाँ पर खमीर लद्दाख से लाए हुए फफ (यीस्ट) या मंडल से उठाया जाता है।

कुल्लू में भोजन और दूध सस्ता है। गरीब लोग गेहूँ, जौ और चावल, कद्दू, कोदों इत्यादि खाते हैं। कद्दू और कोदों मैदानों में भी भेजा जाता है। इसे उपवास के समय लोग यहाँ खाते हैं। शराब बनाने में चावल भी काम आता है। शराब को लुगरी, सुर और चकती कहते हैं। ये मेले और विवाहों में पी जाती है। रूपी और सिराज के लोग लुगरी नहीं पीते।

कांगड़ा घाटी के किसान

कांगड़ा के किसानों में ब्राह्मण, राजपूत, गद्दी और घिरथ आदि चार जातियाँ हैं। राजपूतों में राठी भी आते हैं। राजपूत, ब्राह्मण और गद्दी शायद मैदानों से आकर यहाँ बस गये और घिरथ यहीं के आदिवासी लगते हैं। राजपूत और ब्राह्मण स्वयं काम न करके अन्य जातियों से खेती कराते हैं। किन्तु नये भूमि सुधार नियमों के मुताबिक जब से जोताओं को अधिकार मिले हैं तब से इन्हें भी हाथ से काम करने के लिए बाध्य होना पड़ा है।

राजपूत : राजपूतों को यहाँ मियां के नाम से सम्बोधित किया जाता है। जब भी उनसे कोई छोटा आदमी मिलता है तो उनको 'जयदिया' कह कर प्रणाम करता है। यहाँ और किसी को इस प्रकार सम्मान नहीं दिया जाता। आपस में भी ये इसी प्रकार अभिवादन करते हैं। इनमें छोटे लोग पहले प्रणाम करते हैं और बड़े उसका उत्तर देते हैं। मियाओं के भी बहुत भेद हैं और इन्हीं भेदों के अनुसार भिन्न-भिन्न रूप से अभिवादन किया जाता है। अभिवादन को यहाँ बहुत महत्त्वपूर्ण समझा जाता है। पहले यदि कोई अभिवादन नहीं करता या इसका दुरुपयोग करता था तो उसे जुर्माना या कैद की सजा तक दी जाती थी।

नाम और प्रतिष्ठा के बनाये रखने के लिए प्रत्येक मियां (राजपूत) चार सिद्धान्तों का पालन करता है :—हल न चलाना, अपनी बेटी का या स्वयं का छोटी जाति में विवाह न करना, लड़की की शादी के बदले में कभी रुपया न लेना तथा घर की स्त्रियों को सख्त पर्दे में रखना। हल चलाने के प्रतिकूल भावना पहले बहुत अधिक थी। इनकी धारणा थी कि धरती माता की छाती पर लोहे का हल चलाना पाप है, गाय के पुत्र 'बैल' को हल में जोतना भी पाप है, क्षत्रिय के हाथ में हल शोभा नहीं देता है और उत्तम व्यवसाय को छोड़ नीचा व्यवसाय करना भी प्रतिष्ठा को खोना है। किन्तु यह भावनाएँ अब दिनों दिन कम होती जा रही हैं।

स्त्रियों के पर्दे में अभी तक पहले जैसी सख्ती बरती जाती है। राजपूतों के मकान दूर से पहचाने जा सकते हैं क्योंकि वे अधिकतर अलग होते हैं जो या तो किसी

कांगड़ा की नयी नवेली दुलहिन

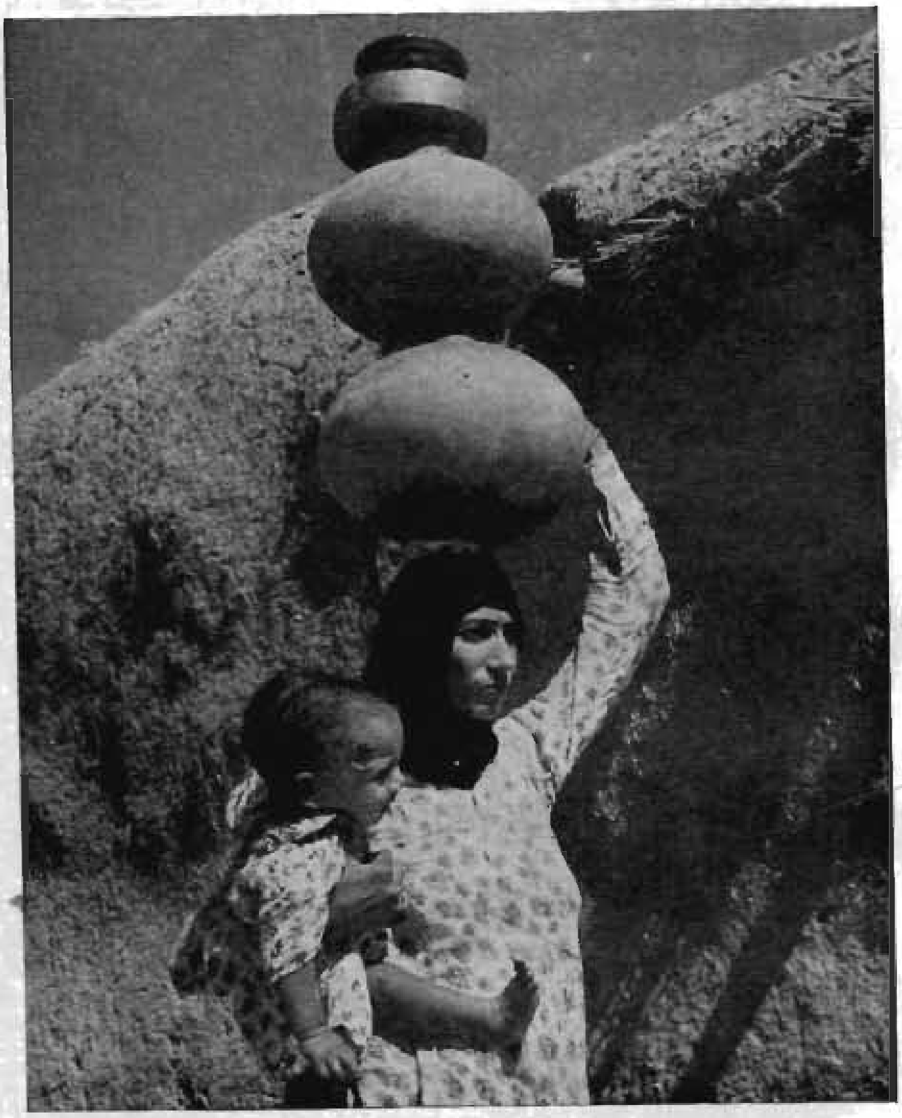

ममता और श्रम की साकार
मूर्ति पंजाब की कृषक नारी

पहाड़ की चोटी पर या जंगल के किनारे जहाँ स्वतः ही परदा रह सके, बनाये जाते हैं। अगर प्राकृतिक रूप से परदा नहीं होता तो परदे के लिए पेड़ों की ऊँची बाढ़ लगा दी जाती है। प्रत्येक घर से ५० कदम के फासले पर एक ड्यौढ़ी या मंडी होती है जिसके अन्दर कोई अपरिचित या बाहर का व्यक्ति नहीं घुस सकता।

बारनेस राजपूतों के बारे में लिखते हुए कहता है कि बड़े दुख की बात है कि राजपूत लोग अपने पुरातन विचारों में अभी तक चिपटे हुए हैं। उनके मोटे कपड़े से ढके दुर्बल शरीर और गूढ़ दृष्टि बतलाती है कि उन्होंने अपनी काल्पनिक मौलिकता को बनाए रखने के लिए बड़ा कष्ट उठाया है। पहाड़ के आस-पास की अच्छी भूमि स्वयं अन्न उगाने वालों के लिए है। परन्तु ऐसा करने में उनकी शान घटती है। अतः वे खेती न करके पहाड़ों पर बाज पकड़ते फिरते हैं या मैदानों में बेचने के लिए चिड़िया पकड़ते हैं। बाज को सिखाकर शिकार भी करते हैं। कुछ राजपूत बन्दूक से भी शिकार करते हैं। एक आदमी झाड़ियों को खुड़खुड़ाता रहता है, दूसरा बाज को छोड़ देता है। अगर कोई शिकार मिल जाता है तो इनका भोजन हो जाता है। कोई-कोई शाम को लौटते हुए सूअरों को भी बन्दूक से मार लेता है और उसके मांस से जीवनोपयोगी वस्तुएँ खरीद ली जाती हैं। फिर भी भूखों मरते रहना यहाँ मामूली बात है। यही कारण है कि बहुत से राजपूत हल चलाने लगे और इन्होंने खेती शुरू करके पुराने अखंड विश्वासों को तोड़ दिया है।

राजपूत स्त्रियाँ अन्य स्त्रियों की तरह नाज पीसती हैं, खाना बनाती हैं, कातती हैं, घर के लिए पानी भरती और ईंधन भी लाती हैं परन्तु पर्दे के कारण खेतों में काम नहीं करतीं जैसा कि राठी और घिरथिन स्त्रियाँ करती हैं।

राठी : ये वास्तव में किसान हैं जो पालमपुर और हमीरपुर तहसीलों में बसे हुए हैं। राठी और घिरथ कांगड़ा की दो मुख्य किसान जातियाँ हैं। उपजाऊ पूर्वी क्षेत्रों में कनैत अधिक बसे हुए हैं। जहाँ अधिक समतल और सिंचित भूमि है वहाँ घिरथ बसते हैं। परन्तु जहाँ अच्छी भूमि नहीं है वहाँ अधिकतर राठी रहते हैं। राठियों के गाँव में घिरथ का मिलना बहुत मुश्किल है। दोनों जातियों का अपना-अपना इलाका है। राठी एक मजबूत और खूबसूरत कौम है। उनके चेहरे सुन्दर, वर्ण गौर और शरीर मजबूत हैं। घिरथ काले और मोटे होते हैं। वे बीमार से रहते हैं। उनमें गठिया बहुत होती है। इन्हें देखकर दरअसल यह महसूस होता है कि अच्छी भूमि और जलवायु फसलों के लिए उपयुक्त हो सकती है लेकिन मनुष्य की शारीरिक बनावट के लिए नहीं। राठी सीधे सादे किसान हैं जो हथियारों का प्रयोग तक नहीं जानते। ये साथ-साथ ईमानदार और मेहनती भी हैं।

घिरथ : घिरथों के कई उपभेद हैं। होशियारपुर की दसूया तहसील के घिरथ चंग कहलाते हैं और उना के रहने वाले बाठी। कहावत है कि ये दक्षिण से आए थे क्योंकि ये शादी के अवसर पर दक्षिण की ओर मुँह करके अपने इष्टदेव की वंदना करते हैं। ये नाग की भी पूजा करते हैं। नागपंचमी का त्यौहार ये बड़े धूम-धाम से मनाते हैं।

पालम, कांगड़ा, रिहलू की घाटियों में घिरथों का बाहुल्य है। ये हरीपुर की घाटी में भी पाये जाते हैं। खुली घाटियों में उनके पास बड़ी उर्वरा भूमि है। ऊँचे कुल की घिरथ स्त्रियाँ परदा भी करती हैं और लोग अलगाव पसंद करते हैं। खुली घाटियों को उनके लिये छोड़ देते हैं जिनकी स्त्रियाँ परदा नहीं करती हैं।

घिरथ बहुत परिश्रमी कौम है। ये एक साल में दो फसलें उगाते हैं। ये सारे दिन खेती के काम में लगे रहते हैं। वर्षा आरम्भ होते ही वे धान रोपते हैं। धान ही उनका जीवन आधार है। इनकी औरतें काम में बहुत हाथ बटाती है। वे घुटने-घुटने कीचड़ में सारे दिन काम करती रहती हैं। वे लहंगों को कमर में खोंसे हुए दिन-दिन भर काम में लगी रहती हैं। धान के खेतों की नराई करना, काटना, समेटना तथा साफ करना इत्यादि सारा काम ये स्त्रियाँ पुरुषों के साथ-साथ करती रहती हैं। जाड़े की फसल बोने से पहले सब काम खतम कर दिया जाता है। खेतों में काम करने के अलावा घिरथ स्त्रियाँ रुई, लकड़ी, सब्जी, आम, दूध आदि भी शहर में बेचने जाती हैं। देखने में घिरथ कमजोर व रोगी लगते हैं फिर भी वे आराम से नहीं बैठते बल्कि सारे दिन काम करते रहते है। घिरथ और घिरथनें देखने में असुन्दर और थके माँदे लगते हैं। उनकी शक्ल तातार जाति जैसी होती है। कोई-कोई जवान स्त्री कुछ सुन्दर कही जा सकती है। घिरथ कभी शराब पीने में रुपया बरबाद नहीं करता और आपस में भी वे बड़े ईमानदार और सच्चे होते हैं।

गद्दी : कांगड़ा घाटी की सबसे मुख्य जाति गद्दियों की है। इनमें अधिकतर खत्री हैं। कुछ ब्राह्मण और राजपूत भी हैं। वास्तव में ये मैदानों से आये हुए शरणार्थी हैं। कहते हैं कि इनके पूर्वज लाहौर से औरंगजेब के राज्य काल में यहाँ आए क्योंकि उस समय धर्म परिवर्तन का बोलबाला था।

गद्दी सीधे और ईमानदार होते हैं। ये अपनी सच्चाई और सद्व्यवहार के लिए प्रसिद्ध हैं। बताते हैं कि अंग्रेजी काल में जब उन पर कांगड़ा के हाकिम जुर्माना करते थे तो वे उतना ही रुपया चम्बा रियासत के खजाने में जमा कर देते थे क्योंकि वे अपने आपको दोनों की प्रजा मानते थे। जंगलात के अपराधों को छोड़कर, जो साधारणतया सभी पहाड़ी लोग करते हैं, इस जाति में अपराध नहीं पाया जाता। ये लोग हँसमुख और विनोदप्रिय होते हैं। विवाह तथा उत्सवों में ये मिलकर नाचते हैं और लुगरी बहुत अधिक पीते हैं। इनके गीतों की लय बड़ी मीठी होती है जो कानों को बहुत अच्छी लगती है।

कुछ गद्दी भेड़ चराते हैं और कुछ खेती करते हैं। उनका धन भेड़-बकरी ही है। जाड़ों में वे अपनी भेड़ों को कांगड़ा की घाटी में मण्डी तथा सुकेत में और गर्मियों में धौलाधर की पहाड़ियों के पार चम्बा और लाहौल तक चराते हैं। इनमें बहुत से लोगों के पास धौलाधर पर्वत श्रेणी के दोनों तरफ के खेत हैं। ये कांगड़ा में जाड़ों में गेहूँ बोते हैं और गर्मियों में अपनी भेड़ों को धौलाधर के दूसरी ओर चम्बा में ले जाते हैं और वहीं पर खेती करते हैं।

इनका प्रिय भोजन जौ है जिसे वे अपने खेतों में उगाते हैं। वे भुने जौ का आटा बनाकर उसमें मधु मिलाकर मीठा करते हैं। वे बकरी का मांस भी खाते हैं। परन्तु मुख्य भोजन बकरी का दूध है। वे मंडी स्थित गुमान की खानों का नमक ज्यादा पसन्द करते हैं। ये अपनी भेड़ों की ऊन के कपड़े पहनना पसन्द करते है जिसे उनकी औरतें ही कात बुनकर तैयार करती हैं। सफेद ऊनी फ्राक पहने तथा छजलीदार टोपी लगाये वे इंगलैंड के छठी शताब्दी के किसान जैसे लगते हैं। झबरे और काले कुत्ते उनके चिर साथी हैं जिनके गले में पट्टे पड़े रहते हैं। ये कुत्ते तेन्दुओं से भी लड़ सकते हैं।

गद्दी गड़रिये छः महीने लाहौल की घाटी में रहते हैं। उन्हें कांगड़ा से लाहौल पहुँचने में एक महीना लग जाता है। ये गरम कोट व कम्बल ओढ़े खुली और बर्फानी हवाओं में सो जाते हैं। कभी-कभी तो उन्हें भेड़ों में ही घुस कर सोना पड़ता है। वर्षा में चट्टानों के नीचे घुस जाते है। कुमायू के भोटिया व्यापारी उनकी भेड़ों को खरीद लेते हैं। व्यापारी पर्वतीय क्षेत्रों में भेड़ों पर ही माल लाते ले जाते हैं।

लाहौल में ढालू चरागाह को धार या वन कहते हैं। धार के उपभाग को बंड कहते हैं। इस तरह के एक बंड में भेड़ बकरियों का एक पूरा गल्ला चर सकता है। हरेक धार की सीमायें निश्चित होती हैं और उनका अधिकार कुल्लू के राजा या लाहौल के ठाकुर से लेना पड़ता है। गद्दियों के पास दान या उपहार की भी भूमि है। गद्दी गड़रिये एक भेड़ कोठी के ठाकुर या नेगी को भेंट दे जाते हैं। इस भेंट को वे कर का रूप मान लेते हैं। लाहौली भाषा में इस कर को 'रिगतल' कहते हैं। यह भेड़ उत्सव पर मारी जाती है और इससे गाँव की दावत होती है।

पंजाब स्थित हिमालय क्षेत्र की गद्दी स्त्रियाँ अपनी सुन्दरता के लिए विख्यात हैं। स्वच्छ हवा, दूध का भोजन और खत्री रक्त होने के कारण उनके चेहरे बहुत सुन्दर होते हैं। उनकी सीधी नाक, कटीली आँखें, गोरा रंग और पतले होंठ सुन्दर मुस्कान लिए होते हैं। पालम घाटी की राजपूत और ब्राह्मण स्त्रियों की तुलना में वे ज्यादा खूबसूरत लगती हैं। यहाँ तक कि पहाड़ी लोक-गीतों में उनकी सुन्दरता का भी वर्णन होता है। यदि उन्हें पहाड़ों की रानी कहा जाए तो अतिशयोक्ति नहीं होगी। कहते हैं कांगड़ा चित्रकारी के विख्यात गुणग्राहक राजा संसारचन्द्र भी 'नोखू' नामक एक गद्दी स्त्री के प्रेम में लीन हो गए थे और उन्होंने बाद में उसे अपनी रानी ही बना लिया।

पोशाक : इस घाटी में मनुष्यों और स्त्रियों की पोशाक पंजाब के और भागों की तरह ही है। पुरुष वर्ग पगड़ी, पायजामा और कुर्ता पहनते हैं। औरतें कुर्ता, घघरी और हरे, पीले, नीले, रंग के दुपट्टे पहनती हैं। उन्हें नथ या बालू (बुलाक) बहुत प्रिय हैं। क्वारी कन्या और विधवाओं को छोड़कर प्रत्येक स्त्री इसे पहने रहती है। यह सौभाग्य का चिन्ह माना जाता है। छोटी जातियों को छोड़कर आमतौर पर स्त्रियाँ सोने की बालू बनवाती हैं।

यहाँ ऊँचे पहाड़ों के लोगों की पोशाक कुछ पृथक होती है। गद्दी अपने रंग-बिरंगे कपड़ों से पहचाने जा सकते हैं। वे ढीला ऊनी कुर्ता पहनते हैं जिसे चोला कहते हैं। यह कमर पर ऊन के मोटे रस्सों से बँधा रहता है। ये सिर पर बालदार टोपी पहनते है जो जाड़ों में कानों को ढकने के काम में आती है। इनकी टांगें नंगी रहती हैं। गद्दी लोग अपने चोले में सारी चीजें रख लेते हैं। कभी-कभी नये भेड़ के बच्चों को भी चोले में ही रखे रहते हैं। ये लोग चमड़े की पेटी में अपना भोजन रखते हैं। यहाँ की औरतें ऊन का कुर्ता और छपा हुआ लाल रंग का पेटीकोट पहने रहती हैं।

मध्यवर्ती मैदानों के किसान

मध्य मैदानों के क्षेत्र में अमृतसर, गुरदासपुर, फिरोजपुर, जालन्धर, कपूरथला, होशियारपुर, लुधियाना, भटिंडा, पटियाला, अम्बाला व संगरूर जिलों के कुछ भाग हैं। कपूरथला, अमृतसर और गुरदासपुर जिले के क्षेत्रों को मांझा कहते है। इसी क्षेत्र में विभाजन से पहले लाहौर का जिला भी शामिल था। कपूरथला, जालन्धर, होशियारपुर जिलों का व्यास और सतलज के बीच का क्षेत्र दोआब कहलाता है। फिरोजपुर, पटियाला, भटिंडा जिलों को मालवा कहते हैं। लुधियाना व पटियाला की फतहगढ़ तहसील और अम्बाला की रोपड़ और खरड़ तहसील के क्षेत्र को पौढ़ कहते हैं। जलवायु के अनुसार हरएक क्षेत्र के किसानों का भोजन, शारीरिक बनावट इत्यादि अलग-अलग है। मांझा और मालवा के किसान लम्बे, सुदृढ़ और सुगठित शरीर वाले हैं। दोआब के किसान अधिक बुद्धिमान होते हैं जिन्हें मझैल या दुआबिया कहते हैं।

पंजाब के मध्यवर्ती मैदानों की मुख्य-मुख्य किसान जातियाँ निम्नलिखित हैं :—

सिख जाट : सिख जाट पंजाब के किसानों में सबसे अच्छे हैं। शारीरिक शक्ति में वे दुनिया में किसी देश के किसान से कम नहीं हैं। संसार में मानव जाति की अच्छी से अच्छी नस्ल के रूप में सिख जाटों को नमूने के रूप में रख सकते हैं। सिख जाट साधारणतया लम्बा, मांसल, सुदृढ़, सीधा-सादा, सुन्दर नाक नक्शे वाला होता है। वह किफायतसार और अधिक मेहनती भी है। यद्यपि ये अधिक बुद्धिमान नहीं होते मगर जीवन के दैनिक व्यवहार में बड़े चतुर होते हैं। वे स्पष्टवक्ता और निर्भीक होते हैं। किन्तु झगड़ालू और जिद्दी होने के कारण आखिरी दम तक मुकदमे लड़ते रहते हैं। फिर भी इन्हें ईमानदार, मेहनती और उद्यमी कहा जा सकता है। लायलपुर नहरी क्षेत्रों के निवासियों का वर्णन करते हुए श्री एम० एल० डार्लिंग ने सिख जाटों के बारे में कहा है कि किसी भी क्षेत्र में इनसे अच्छे मनुष्य मुश्किल से मिलेंगे। भारतीय किसानों में सबसे अच्छे किसान अमृतसर, लुधियाना और जालंधर में पाये जाते हैं। ये सिख जाटों के जिले हैं और इस क्षेत्र को अच्छा माना जाता है। मितव्ययता और मेहनत के लिए लुधियाना का सिख अग्रणी है। अमृतसर का सिख यद्यपि खर्चीला और तेज स्वभाव का है परन्तु किसानों के नाते सबसे बढ़िया है। मेहनती, खेती के काम में चतुर तथा दृढ़ मांसल शरीर की दृष्टि से सिख जाटों ने

कुल्लू की यह श्रम-बाला श्रम साधना में लीन भी अपनी ममता और माता के कर्तव्य को नहीं भूल सकी

अमृतसर जिले के इस युवक सिक्ख किसान को अपने फावड़े पर भरोसा है। इसकी मदद से वह अपने खेतों से सोना पैदा कर सकेगा

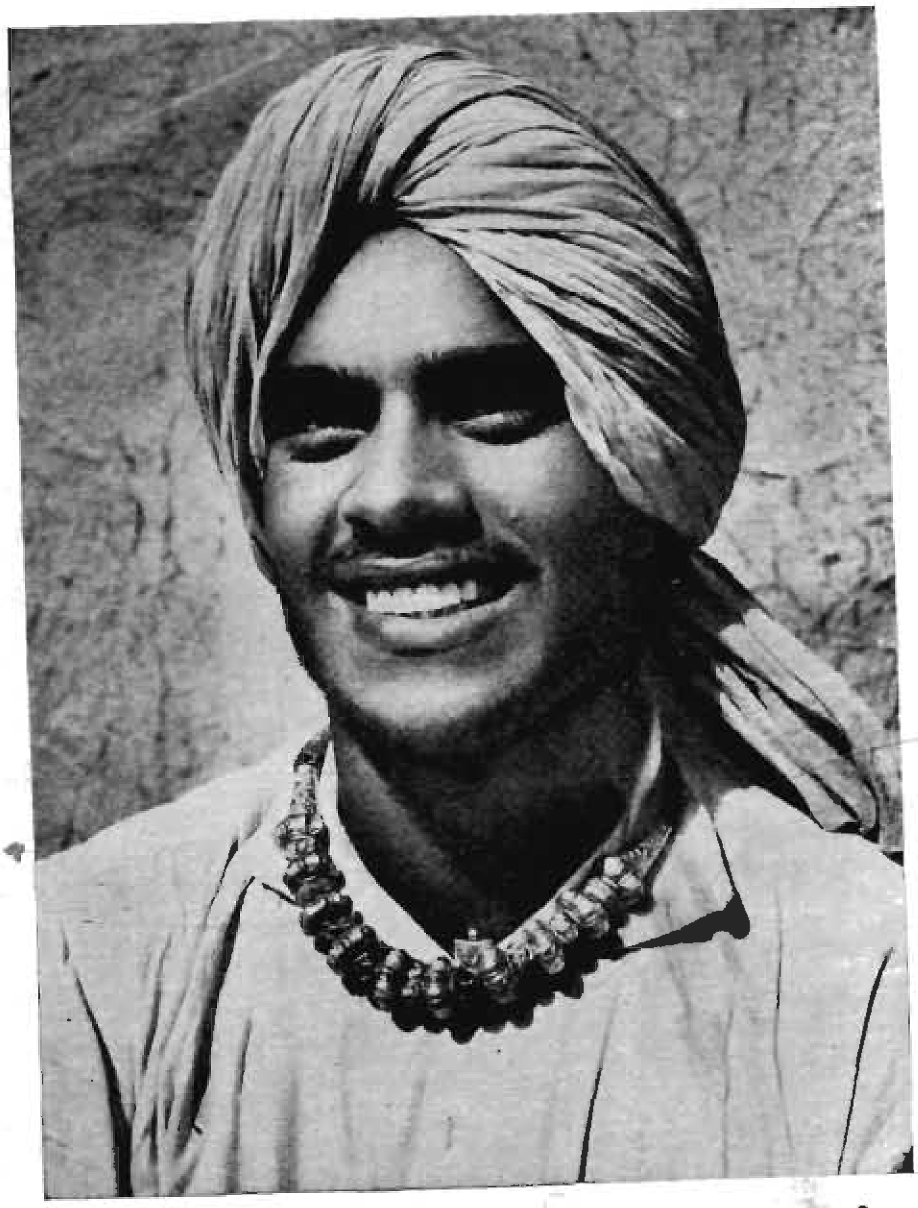

प्रसन्न मुद्रा में फिरोजपुर का एक युवक किसान

सबको पीछे छोड़ दिया है। केवल एक ही पीढ़ी में वह उन्नति के शिखर पर पहुँच गए हैं। ऐसा प्रतीत होता है कि भूमि की सारी शक्ति उनकी रगों में समा गयी है और प्रकृति ने उसको अपना अंग बना लिया है।

सिख जाट बहुत बढ़िया सिपाही भी है। वह रण में पीछे न हटने वाला और मुश्किलों का मुकाबला करने वाला तथा वफादार सिपाही है। दोआब के बहुत से सिख कैनेडा, अफ्रीका और संयुक्त राष्ट्र अमेरिका में जाकर बस गये हैं। कैलीफोर्निया में बसे इन लोगों ने वहाँ भी किसान के रूप में काफी प्रसिद्धि प्राप्त की है। कैनेडा में वे किफायतसारी हैं और अपने घर वालों को रुपया भी भेजते हैं।

औरतें शारीरिक बल में आदमियों से कम हैं। बालविवाह और घरेलू झंझटों के कारण वे जल्दी बूढ़ी हो जाती हैं। परन्तु वे आदमियों के समान मेहनती और सद्गृहणी हैं। घर का प्रबन्ध मिलजुल कर बड़ी होशियारी से करती हैं तथा परिवार पर उनका प्रभाव रहता है।

जाटों के विकास के बारे में अलग-अलग मत हैं। जनरल कनिंघम कहते है कि जाट और मेड़ भारत के इस भाग में आने वाली पहली जाति है। ये लोग ईसा से दो शताब्दी पहले सिकन्दर महान् की विजय के बाद ओक्सस के दक्षिण भाग की ओर से इधर आये। दूसरे विद्वानों का कहना है कि जाट राजस्थान से उत्तर में बढ़ते-बढ़ते पंजाब में बस गये। किन्तु आम लोगों का मत है कि इनका विकास राजपूतों से ही हुआ है और वे न पूर्व से आये हैं और न पश्चिम से।

सैनी : सैनी हिन्दू और मुसलमान दोनों हैं। ये अधिकतर जालंधर, होशियारपुर और अम्बाला जिले की रोपड़ और खरड़ तहसील में पाये जाते हैं। ये स्वयं अपने आपको माली मानते हैं। कहते हैं कि ये पहले उत्तर प्रदेश के मथुरा जिले में रहते थे। महमूद गजनवी के आक्रमण के समय में ये भागकर पंजाब में आये और कृषि के लिए उपयोगी भूमि देखकर यहीं बस गये। सैनी लोग बड़े अच्छे किसान हैं। सब्जी उगाने में ये बहुत विख्यात हैं। श्रम और योग्यता में वे किसी जाति से पीछे नहीं हैं। ये सब्जी की खेती अरैणों से भी अधिक अच्छी करते हैं परन्तु साधारण खेती को भी उन्होंने नहीं छोड़ा है। ये शान्तिप्रिय, धार्मिक और नम्र स्वभाव के हैं।

कम्बोह : कम्बोह अमृतसर, फिरोजपुर और जालंधर जिलों में मिलते हैं। ये अधिकतर मौंटगुमरी जिले की दिपालपुर और पाकपट्टन तहसीलों से आकर फीरोजपुर जिले में बस गये हैं। कई हजार कम्बोह अमृतसर जिले के पुराने निवासी हैं जो अब लायलपुर जिले में चले गये हैं।

कम्बोह अपने आपको अफगानिस्तान के कम्बोज प्रदेश से आया हुआ बताते हैं। वहाँ पठानों में अब भी कम्बोह (मुसलमान) मिलते हैं। कम्बोज देश की राजधानी गजनी है। कहा जाता है कि महाभारत के समय कौरवों की ओर से ये लोग युद्ध करने भारत आये थे और इसके बाद भारत में ही बस गये। ये घग्घर नदी के

किनारे और सतलज व व्यास के दोआब क्षेत्र में रहते हैं। ये लोग सुन्दर हैं और इनके नाक नक्शे भी अच्छे हैं। इससे मालूम होता है कि ये आर्यों की ही सन्तान हैं। कम्बोहों में हिन्दू, मुसलमान और सिख तीनों पाये जाते हैं। मौंटगुमरी से आये हुए लोग अधिकतर हिन्दू व सिख हैं। कृषि इनका मुख्य धन्धा है। ये अध्यवसाय और परिश्रम में किसी अन्य जाति से कम नहीं हैं। ये शान्तिप्रिय हैं और इनमें एक-दूसरे को सहायता देने की प्रबल भावना है। पंजाब में ऐसी कहावत प्रचलित है कि कौवा, किरार और कम्बोह अपनी जाति की बढ़ोतरी चाहते हैं और जाट, भैंस और मगरमच्छ अपनी जाति का नाश चाहते हैं।

प्रारम्भ में कम्बोह निरामिष थे अब इनमें कुछ लोग मांस खाने लगे हैं। वैसे वे हुक्का भी नहीं पीते परन्तु सिख कम्बोह शराब तक पीते हैं। हिन्दू सिख कम्बोहों में आपस में विवाह होते हैं। परन्तु ये जाति से बाहर विवाह नहीं करते। कम्बोहों के दो भेद हैं—बावन गोती और चौरासी गोती। अब इन दोनों उपजातियों में आपस में विवाह होने लगा है। इनमें विधवा विवाह भी प्रचलित है। बदले के विवाह की पहले बहुत परम्परा थी लेकिन झगड़े और पारिवारिक पतन के कारण यह प्रथा अब काफी कम हो गयी है।

कम्बोह बड़े किफायतसार हैं। बचत करना उनका शौक है। वे जेवर और अच्छे पशुओं पर खूब पैसा खर्च करते हैं और रुपये को जमीन में गाड़कर रखते हैं। विवाह के अवसर पर भी ये खर्चा करते हैं पर ये कर्ज कम लेते हैं। अधिकतर भूमिहीन और कम भूमि के पट्टेदार होने के कारण ये दूसरे के खेतों पर काम करते हैं। इसके अलावा एक बात और है कि अब सब जमींदार अपनी जमीनें स्वयं बोने लगे हैं और धीरे-धीरे इन लोगों की खेत पर मेहनत करने की गुंजाइश कम होती जा रही है। बहुत से जिलों में खेती करने वालों की अपेक्षा गैर खेतिहर अरोड़ा जाति ज्यादा उन्नतिशील नज़र आती है।

भोजन : साधारणतया किसान का कलेवा गेहूँ की बासी रोटी, दही और छाछ है। दोपहर मे उसको ताजी गेहूँ की रोटी, प्याज और अचार मिल जाता है। शाम के भोजन में वह गेहूँ की चपाती के साथ उर्द, मूंग या चने की दाल खाता है। जाड़े में दोआब का किसान मक्का की चपाती और सरसों या चने का साग बड़े स्वाद से खाता है। दूध या दूध से बने पदार्थ भी इसे बहुत पसन्द हैं। दही, लस्सी और मट्ठे के प्रयोग के कारण ही यहाँ के लोग दीर्घजीवी हैं।

मालवा और पौढ़ के मजदूर गेहूँ के बजाय ज्वार की रोटी ज्यादा खाते हैं। गोश्त या सब्जियाँ खास अवसरों पर खायी जाती हैं। भात भी त्यौहार या उत्सवों पर पका लिया जाता है। अब आलू, टमाटर, गाजर, मूली का प्रचार भी जोरों पर बढ़ रहा है। गर्मी में खरबूजे, तरबूज और बरसात में आम भी लोगों के प्रिय भोजन हैं।

पोशाक : सिख किसान हाथ के बुने कपड़े के कुर्ते और कच्छे बहुत पहनते हैं। वे नीला या लाल रंग का तहमद भी बाँधते हैं। लाल या पीले रंग की पगड़ी सिर

पर बाँधते हैं। जाड़ों में घर का बुना खेस (चादर) ओढ़ते हैं। अब तो स्वेटरों का रिवाज भी काफी बढ़ गया है। बहुत से लोग पायजामा पहनते हैं। फलालेन के कोट व पतलून भी पहने बहुत से लोग नजर आते है। औरतें सादा या छपा हुआ सलवार पहनती हैं। स्त्रियाँ सिर पर मलमल का रंगीन दुपट्टा और विधवाएँ सादा सफेद दुपट्टा ओढ़ती हैं। मालवा जिले में स्त्रियाँ कढ़ी हुई फुलकारी पहनती हैं। अब इसका रिवाज कम होता जा रहा है। साबुन तथा अन्य शृंगार प्रसाधनों का भी रिवाज बढ़ गया है। पहले सोने चाँदी के भारी जेवरात पहने जाते थे लेकिन अब यह रिवाज काफी कम होता जा रहा है।

हरियाना के किसान

हरियाना के दक्षिण प्रदेश के किसानों में अधिकतर हिन्दू जाट, अहीर, अरोड़े, ब्राह्मण, राजपूत, बिस्नोई, माली और मेव वगैरह हैं। रोहतक, हिसार और महेन्द्रगढ़ और गुड़गांव में अधिकतर जाट हैं। अहीर प्रायः गुड़गांव की रिवाड़ी तहसील में और रोहतक जिले की झज्झर तहसील में रहते हैं। अरोड़े करनाल में, ब्राह्मण रोहतक में, और गूजर हिसार, गुड़गांव, नारनौल और महेन्द्रगढ़ में अधिक पाये जाते हैं। गुड़गांव में मेवों की तादाद अधिक है। पंजाब के विभाजन के बाद पश्चिमी पंजाब से आकर भी कुछ जातियाँ हरियाना में बस गयी हैं। जैसे अरोड़े और कम्बोह रोहतक और हिसार में आकर बस गये हैं तथा करनाल जिले में वर्क आकर बस गये हैं।

जाट बड़े सीधे-सादे और मेहनती किसान हैं। अहीर बड़े होशियार और अच्छे काश्तकार हैं। अरोड़े भी अच्छे काश्तकार हैं मगर जाटों की तरह मेहनती नहीं हैं। ब्राह्मण काश्तकार तो हैं ही परन्तु इतने अच्छे नहीं जितने कि जाट और अहीर हैं। गूजर ज्यादातर पशुपालक हैं। राजपूत स्वयं जोतने की बजाय दूसरों से बटाई पर खेती कराते हैं। यहाँ के माली भी बड़े मेहनती हैं। हरियाना के काश्तकारों में हिन्दू जाट सबसे अधिक हैं। गाँवों में इनका विशेष महत्त्व है। इनके 12 गोत्र मलिक, हुड्डा, दलाल, राठी, अहलाव, गोलिया, जाखड़, दहिया, देसवाल, ढांकर, सहरावत और कादियां हैं।

जाट : जाटों की उत्पत्ति के बारे में सैटलमैन्ट अधिकारी श्री जौसिफ लिखते है कि पछादे और देसवाल जाटों का भेद रोहतक में नहीं है जबकि हिसार में यह भेद माना जाता है। जाति के लिए 'पाल' शब्द भी नहीं चलता। जाट आर्य या तूरानी रहे होंगे जिसका जनरल कनिंघम ने भी वर्णन किया है। ऐसा लगता है कि सोमनाथ मन्दिर के महमूद गजनवी द्वारा विध्वंस होने से पहले ये लोग रोहतक में आकर बस गये होंगे। ये अपने आपको राजपूत बताते हैं और कहते हैं कि वे राजपूतों की करी हुई स्त्री (करेवा) की सन्तान हैं। वे कहते हैं कि उनके पूर्वज मालवा, बीकानेर और धारनगर से आये जो प्राचीन हस्तिनापुर के पूर्व में स्थित थे। कोई भी यह नहीं मानता कि वे उत्तर पश्चिम से आये। मलिक जाट तो कहते हैं कि वे गढ़ गजनी से आये मगर साथ-साथ वे यह भी कहते हैं कि गजनी दक्खिन में थी किन्तु यह

भूगोल का परिहास है। इस तथ्य पर सर हेनरी बहुत जोर देते हैं। सर जार्ज केम्पबैल भी यह कहते हैं कि यह संसार के अनुभव के प्रतिकूल है कि किसी बड़ी कौम का विकास इस प्रकार हुआ हो। परन्तु यह स्पष्ट है कि दक्षिण पंजाब और राजपूताने के जाट ऐसे ही हैं जैसे कि पंजाब के उत्तरी जिलों के जाट। जब हम इस बात पर विचार करें कि बोलन दर्रे से लेकर नमक की शृंखलाओं तक और उत्तर में झेलम नदी से लेकर यमुना तथा अरावली की पहाड़ियों तक फैला हुआ सब क्षेत्र जाटों का ही है तो यही विश्वास करना पड़ेगा कि जाट भारत में पश्चिम से ही आये और ये राजपूतों के वंशजों में से ही एक है।

जाट तंदुरुस्त होते हैं। इनकी युवा स्त्रियाँ अति सुन्दर लगती हैं। वे बहादुर सिपाही भी पैदा करती हैं। ये बुद्धिमान और होशियार नहीं होते लेकिन मेहनत और अध्यवसाय में उनसे अच्छे काश्तकार नहीं हैं। वे अपनी जाति का बहुत ध्यान रखते हैं और पुरानी शत्रुता को खूब याद रखते हैं। यह भी कहावत है कि बहुत से गाँव में वह जूता भी रखा जाता है जिससे उन्होंने १८५७ में शत्रुओं को पीटा था। जब मजाक किया जाता है तो वे बहुत खुश होते हैं। उनकी कहावतों से बुद्धिमानी टपकती है चाहे उनका ही मजाक क्यों न उड़ता हो। यह भी कहावत है कि कपड़े, सन, मूंज, रेशम, मिट्टी, चारा और जाट पीटने से ही ठीक रहते हैं।

अगर कहीं पर स्त्री को पति का खजाना माना जाता है तो वह जाट की घरवाली ही है। वह अपने पति को हर काम में सहायता देती है। सिर्फ वह गाड़ी, हल, कुआं नहीं चलाती, वरन जाटनी खाना बनाती है, घर का प्रबन्ध करती है, खेत में अपने आदमी के लिए रोटी ले जाती है और खेती के काम में उसको खूब मदद देती है। वह मेढ़ बनाती है, हल के पीछे-पीछे बीज बिखेरती है, पानी की नालियों को भी ठीक करती है और शाम को चारे का गट्ठर भी सिर पर रख कर लाती है। खेती में मदद के अलावा वह पति को जागरूक और धार्मिक भी बनाए रखती है क्योंकि लोग अधिकतर धर्म की परवाह न करके भजन पूजन का काम औरतों पर ही छोड़ देते हैं। जाटों में बहुत सी कहावतें मर्द औरत के प्रश्नोत्तर पर बनी हैं। जाटों की एक कहावत के अनुसार लाल चावल, भैंस का दूध, घर में किफायती स्त्री और चढ़ने को घोड़ा ये चार स्वर्ग की निशानी हैं, बुरी रोटी और बकरी का दूध, कर्कशा स्त्री और मैले कपड़े ये नरक की निशानी हैं।

हिसार में दो प्रकार के हिन्दू जाट हैं। देसवाली और बागड़ी। बीकानेर के बाँगड़ प्रदेश से आए हुए जाट बागड़ी कहलाते हैं। देशवाली हरियाना जिले के दक्षिण पूर्व में स्थित तहसीलों में बसे हुए हैं।

बागड़ी जाट किफायतसार और मेहनती तो होता है मगर देशवाली के मुकाबले में कमजोर और बुद्धू होता है। यह शायद बागड़ के कठोर वातावरण के कारण है। देशवाली जाट सुन्दर, किफायती और अच्छा काश्तकार है। दोनों जाट शान्तप्रिय हैं। उनके यहाँ हत्या के अपराध बहुत कम होते हैं। वे अधिकतर झगड़े में नहीं पड़ते जब तक

घर और खेती के काम में हरियाना
की नारी का कोई मुकाबला नहीं

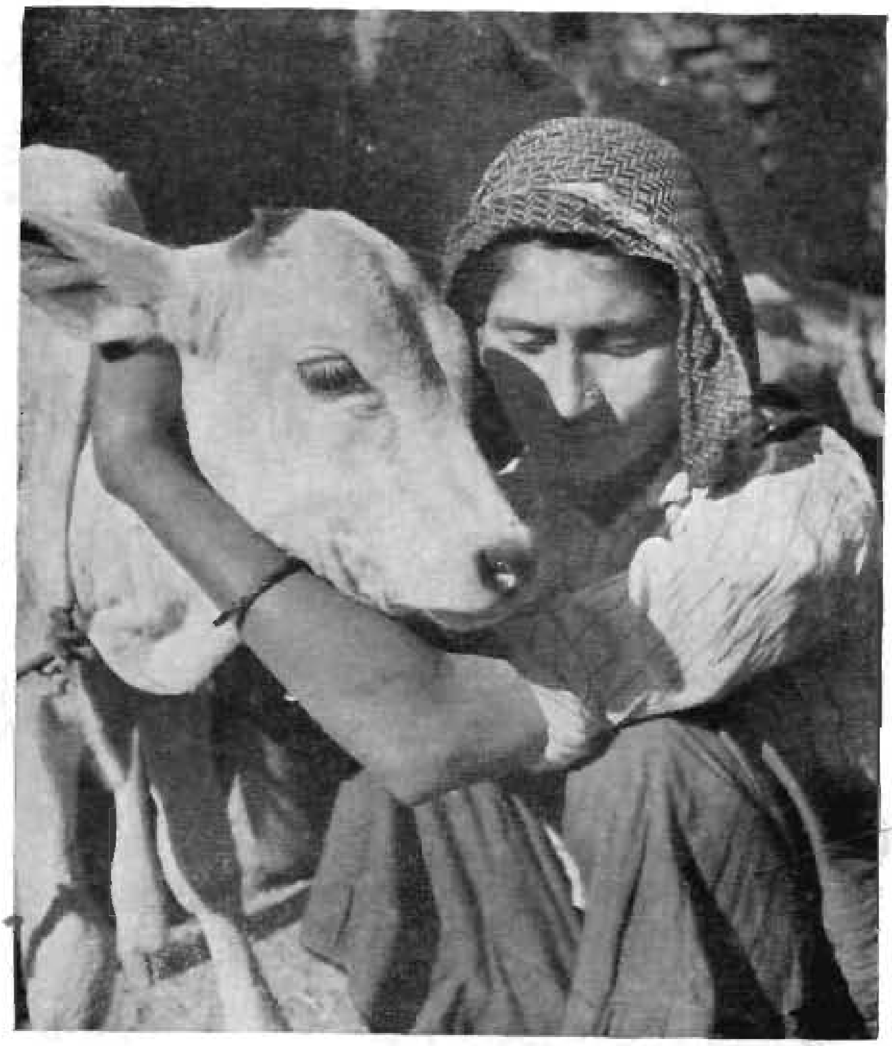

हरियाना की यह नारी बछड़े को प्यार
करती हुई आत्मविभोर-सी हो उठी है

कोई झगड़ा सामने न आ जाए। वास्तव में जाट जाति खेती में अद्वितीय है। जाट चाहता है कि उसके खेती करने में और आनन्द से जीवन बिताने में कोई दखल न दे। वह अपनी कौम वालों को फौरन रुपया भी उधार दे देता है।

राजपूत : राजपूत अभी तक अपने पूर्वजों की सैनिक प्रवृत्तियों को कायम रखे हुए हैं। वे बड़े सुस्त और अकुशल किसान हैं। वे अधिकतर ऋण में डूबे रहते हैं फिर भी फिजूलखर्ची और मुकदमेबाजी को नहीं छोड़ते। अपने गौरव को अवश्य कायम रखते हैं। वे जाट जाति को नीची दृष्टि से देखते हैं यद्यपि जाट मेहनत में उनसे बहुत ज्यादा बढ़े चढ़े हैं। राजपूत और जाट की कोई तुलना नहीं की जा सकती। राजपूत फिजलखर्च और बेपरवाह है। उसके अन्दर बहुत घमंड है और इसी कारण वह कठिन श्रम नहीं करता और अपनी स्त्री को भी कड़े पर्दे में बन्द रखता है।

अहीर : अहीरों का विकास जाटों से भी अधिक संदिग्ध है। रिवाड़ी में उनकी भारी तादाद होने पर भी उनका विकास रिवाड़ी से मानना संदिग्ध होगा। कहते हैं कि वे लोग मथुरा से आये। मगर रोहतक के अहीर कहते हैं कि वे पृथ्वीराज चौहान के वंशज हैं जिन्होंने करेवा की प्रथा जारी की थी। कृषि के कामों में वे जाटों से भी बढ़े चढ़े हैं। वे अधिकतर झज्झर तहसील के रेतीले क्षेत्र या रिवाड़ी में रहते हैं जहाँ गर्मियों में कुओं का पानी तक सूख जाता है। यहाँ खेती करने में उनकी बुद्धिमत्ता जाटों से भी अधिक मानी जा सकती है। कहावत है कि 'कोसली' का अहीर खेती की हर तदबीर जानता है। जाटों की तरह से इनके यहाँ भी विधवा विवाह प्रचलित है। अहीरों की स्त्रियों को नीले लहँगों और लाल ओढ़नी से स्पष्टतया पहचाना जा सकता है। ओढ़नी पर सफेद गोटा लगा रहता है। कहावत है कि 'बावन बगले कोसली और बांके कई हजार'। इसका अर्थ है कि अहीरों के गाँव में 52 पक्की बात करने वाले होते हैं तो कम से एक हजार व्यर्थ की शेखी बघारने वाले होते हैं। इसका एक अर्थ यह भी है कि जहाँ एक गाँव में 52 भी पक्के मकान होते हैं तो शेखी बघारने वाले सारे गाँव को ही पक्का बताते हैं। इसी कारण आस-पास के जाट इनसे ईर्ष्या करते हैं।

ब्राह्मण : ब्राह्मणों के गाँव जाटों के गाँवों से अलग हैं। जाटों की आदत है कि वे ब्राह्मणों को अपने साथ ही लाते हैं। जाटों की तरह उनके भी गाँव पुराने हैं। वे देखने में भी जाट से ही लगते हैं और उनके शरीर की गठन भी मजबूत होती है। गाँव के ब्राह्मण गौड़ ब्राह्मणों में गिने जाते हैं। सर जार्ज केम्पबैल ने लिखा है कि वे बंगाल के गौड़ नहीं बल्कि ये घग्घर नदी के किनारे वाले ब्राह्मण हैं। इसी से इनका नाम गौड़ है। इनके गोत्रों में वशिष्ट, गौड़, मिहरवाल, डबरा, भारद्वाज और कौशिक इत्यादि हैं।

ब्राह्मण जाटों से अच्छे किसान नहीं है। अब ये चौके के भी इतने कट्टर नहीं रहे जितने कि पहले थे। ब्राह्मण स्त्रियाँ घर में रोटी पकाने के सिवाय खेती के काम में मदद नहीं करतीं। घर में गाँवों के ब्राह्मण लोग पुरोहित भी हैं और किसान भी।

बिस्नोई : ये बड़े चतुर किसान हैं। ये होशियार और किफायतसार हैं। धन कमाने में तथा धन इकट्ठा करने में ये बहुत चतुर हैं। इनकी औरतें मजबूत और सुन्दर होती हैं। हिसार में एक गाँव बडोपाल है जहाँ की औरतें बहुत ही सुन्दर होती है और इस गाँव को हिसार का पेरिस कहते हैं। पेरिस की औरतों से इनका मुकाबला करना अतिशयोक्ति नहीं है बल्कि गर्व की बात है। बिस्नोई लोग बड़े झगड़ालू और मुकदमेबाज होते हैं। गाँव में कोई भी घर ऐसा नहीं होगा जिसमें घरेलू झगड़े न होते हों।

बिस्नोई एक प्रकार से हिन्दू ही हैं। ये विष्णु के अवतार झम्बा जी की पूजा करते हैं। इनकी कोई अलग कौम नहीं है बल्कि ये जाट, खत्री, बनिए और राजपूतों में से ही निकले हैं। ये अपनी जाति और धर्म के कट्टर हैं तथा अपने को बिस्नोई कहते हैं। इनकी वेशभूषा बागड़ियों जैसी है। ये मांस नहीं खाते न तम्बाकू पीते हैं। पूर्णमासी व पड़वा को न सूत ही कातते न हल ही चलाते हैं। ये हिन्दुओं के प्रतिकूल चोटी कटवाते हैं और सिर मुँडबाते है तथा मुर्दों को फूँकने की बजाय गाढ़ते हैं। ये ऐसी भूमि पर मुर्दे गाड़ते हैं जहाँ गाय बाँधी जाती है। कभी कभी ये मुर्दों को ड्योढ़ी में भी गाड़ते हैं। बिस्नोई ऐसा क्यों करते हैं ? क्या यह मुसलमानों का अनुकरण है ? इसके बारे में कई तर्क हैं। पहली बात तो यह है कि बिस्नोई धर्म रेगिस्तान के लोगों का धर्म है और यहाँ लकड़ी का काफी अभाव रहता है। भूमि की यहाँ कोई कमी नहीं होती। ऐसी स्थिति में मुर्दा जलाना गाढ़ने की अपेक्षा मँहगा पड़ता है।

बिस्नोई एक किफायती, समृद्ध और मेहनती कौम है। कृषि इनका मुख्य धंधा है और ये खेती में पूरी मेहनत करके अधिक से अधिक मुनाफा कमाने की फिक्र में रहते हैं। दूसरी बात यह है कि वे हिसार में रहने वाली दूसरी किसान जातियों की अपेक्षा अच्छी परिस्थितियों में बसे हुए हैं।

गूजर : जनरल कनिंघम ने गूजर जाति का विकास कुषाण या यूची या पूर्वी तातारों की तुख्ररी कौम से बताया है। यह कौम भारत में ईसा से एक शताब्दी पहले आयी और पाँचवीं सदी के मध्य में दक्षिण पश्चिम राजपूताने में गूजरों का साम्राज्य स्थापित हो गया। अधिकतर गूजर हिन्दू हैं और ये बड़े स्वस्थ और हट्टे-कट्टे होते हैं। ये खेती-बाड़ी में ज्यादा चतुर नहीं हैं पर ये कुशल पशुपालक हैं। कहीं-कहीं ये खेती भी करते हैं।

मेव : ये हरियाना के गुड़गांव जिले के मुख्य किसान जाति में के हैं। सर हरबर्ट रिसले ने अपनी किताब 'पीपल्स आफ इंडिया' में कहा है कि कदाचित इनका विकास भील जाति से हुआ होगा।

मेवों में 12 पाल और बावन गोत हैं, लेकिन पालों की संख्या का ठीक पता नहीं है। पाल 352 गोतों में ही शामिल हैं। पालों के नाम शायद इस प्रकार हैं :

1—बलन्त, 2—रतावत, 3—दरवाल, 4—लान्दावत, 5—चिर्कलोट, 6—दिमरोट, 7—दूलोट, 8—नाई, 9—पंगलोट, 10—दहंगल, 11—सिंगल, 12—कलेसा या कलासखी।

इनके अलावा एक अन्य पालखरे हैं। गुड़गांव के उत्तरी नूह में दहंगलों की संख्या ज्यादा है। नूह के दक्षिण पूर्व में चिर्कलोट है। पुन्हाने के पास भी चिर्कलोट हैं। लान्दावत, दिमरोट और दूलोट फीरोजपुर की घाटी में हैं। नूह के दक्षिण में दरवाल हैं। इन में आपस में बड़ी एकता है और प्रेम है।

मेव जाति में संकट काल में एक मन होकर कार्य करने की क्षमता है। ये सीधे सच्चे लोग हैं। ये लोग फीरोजपुर व नूह जैसे इलाकों में जहाँ वर्षा कम होती है कठिन मेहनत करके रोजी कमाते हैं।

कामगर लोग : चमारों का प्रधान काम चमड़ा रंगाई है। मगर वे लोग चमड़ा रंगते व पकाते नहीं। चमड़ा रंगने का काम रैगड़ या खटीक करते हैं। अपने साधारण काम के अतिरिक्त चमार साधारण कपड़ा बुनता है, खेत में काम करता है और मजदूरी में मरे हुए ढोरों की खाल उतारता है। साझे की खेती में मजदूरी का काम करता है और कटाई के समय में रोजाना की मजदूरी या लान कभी-कभी बटाई के रूप में लेता है। उसको ज्यादातर फटे खुर वाले जानवरों की खाल मिलती है। चमार सभी हिन्दू हैं और अपनी जमीन में खेती भी करते हैं। चूहड़ा हरएक जानवर का मांस खा लेता है। इसे साबुत खुर के जानवरों की खाल मिलती है जैसे घोड़ा या ऊँट आदि। धानक लोग पाखाना साफ करने का काम नहीं करते। सिर्फ सफाई का काम करते हैं। गाँवों में बुनाई का ज्यादातर काम ये ही करते हैं। उनसे गाँव के सन्देशवाहक का काम भी लिया जाता है। वे अपनी खेती भी करते हैं और मजदूरी भी करते हैं।

यहाँ स्त्री का जीवन श्रमपूर्ण है। वह सिर पर घड़ा रखकर कुयें पर से दिन में दो बार पानी लाती है और खाना बनाती है। जब आदमी खेत में काम करते हैं तब वह उनके लिए रोटी ले जाती है। निराई और कटाई के समय पुरुषों के काम में मदद करती है और खेत से लौटकर फिर खाना बनाती है। इसके अतिरिक्त खेतों में गोबर इकट्ठा करके उपले बनाती है और चरखा कातती है।

सुबह और शाम गाँव में औरतें अपने सिर पर घड़ा रखकर कुयें से पानी लाती दिखाई देती हैं, स्त्रियों का सिर पर घड़ा रखकर ले जाना एक कला है। सिर पर घड़ा रखे हुए संतुलन के साथ उनकी चाल बड़ी सुन्दर होती है और अनेक कवियों ने तो स्त्रियों की इस चाल की तुलना इसी कारण हंस की चाल से की है। पनघट पर औरतें अच्छे-अच्छे कपड़े पहनकर जाती हैं। दिन में दो बार औरतों को कुयें पर पानी लेने जाना पड़ता है और गाँव की औरतों के लिए पनघट ही क्लब का काम देता है क्योंकि वे यहाँ एक दूसरे से हिलमिल कर बातें कर लेती हैं। विवाहिता परदा करती हैं। कन्यायें मुँह खोले फिरती हैं। कुछ कन्यायें बचपन में बड़ी सुन्दर होती हैं परन्तु

घर के काम का असर उनके स्वास्थ्य पर पड़ता है। वे कभी-कभी बच्चों सहित कुयें में कूद पड़ती हैं। स्त्रियों की ज्यादा मेहनत का पुरुषों पर बुरा असर पड़ता है। वे घर के आगे बैठे हुक्का गुड़गुड़ाते रहते हैं या चौपाल में ताश खेलते और गप्प हांकते रहते हैं। मर्द औरतों को इसलिए शिक्षा देकर आगे नहीं बढ़ने देते कि वे ज्यादा पढ़कर काम नहीं करेंगी। परन्तु, अब लड़कियाँ स्कूलों में जाने लगी हैं।

सामाजिक तौर पर जाट अन्य कौमों से ज्यादा उन्नत हैं। उनकी स्त्रियाँ वैधव्य नहीं भोगतीं और वे पति के मरने पर दूसरे भाइयों से या किसी से भी शादी कर लेती हैं। इस प्रथा को यहाँ करेवा की प्रथा कहते हैं।

पोशाक और गहने : लोगों की पोशाक सादी है। लोग धोती पहनते हैं तथा एक कमरी या चादर जो दोहरी होने पर दोहर कहलाती है, रखते हैं। पगड़ी और जूता भी पहनते हैं। युवक रंगीन पगड़ी या चीरी पहनते हैं। बड़ों की पगड़ी को खंडवा कहते हैं। उच्च श्रेणी के आदमी लम्बा कोट और दुपट्टा ओढ़ते हैं जिससे प्रतिष्ठा प्रकट हो सके। औरतें घघरी और कुर्त्ती पहनती हैं। वे शादी के बाद अंगिया भी पहनती हैं जिससे वक्षस्थल बँधा रहे। सिर पर शीशे जड़ी ओढ़नी पहनती हैं। इसमें चाँदी की गोट लगी रहती है। अहीर स्त्री को नीले लहँगे और लाल ओढ़नी से अलग ही पहचाना जा सकता है। जाटों में विवाहिता जेवरों का बड़ा प्रदर्शन करती हैं। ये चूड़ियों के साथ चाँदी की पछेली पहनती हैं। कंगन, बाजूबन्द, बाजू चौक और टड मुकलावे के बाद पहने जाते हैं। बुझनी और डंडा (बड़े छल्ले) और विवाह के बाद नथ भी पहनी जाती है। हाथों में औरतें अँगूठी और हथफूल पहनती हैं। गले में हँसली और झालर या हमेल पहनी जाती है। अंगिया की बाहों में चाँदी के घुंघरू लटके रहते हैं और शीशे के टुकड़े भी बाहों की गोट पर जड़े रहते हैं।

आदमी जेवर नहीं पहनते। केवल त्यौहारों पर सोने की जंजीर और कानों में मुरकी पहनते हैं। उन्हें कभी-कभी दायें हाथ में कड़ा, कानों में मुरकी, गले में कंठी पहने भी देखा जा सकता है।

पंजाब के विभाजन के बाद बहुत से विस्थापित परिवार भी पाकिस्तान से यहाँ आ गये हैं। वे अपने साथ अपनी संस्कृति भी लाये हैं। धीरे-धीरे पुरानी और नयी सभ्यता घुलमिल रही हैं। अब स्कूल में जाने वाली लड़कियाँ सलवार-कमीज पहनती हैं। बड़ी औरतों ने भी घघरी छोड़कर सलवार पहनना शुरू कर दिया है। उन्होंने भारी चाँदी के जेवर छोड़ दिये हैं। लम्बी और तन्दुरुस्त जाटनी जो कभी पहले घघरी में सुन्दर लगती थी अब सलवार पहने हुए दिखाई पड़ती है। रंग बिरंगी घघरी का धीरे-धीरे लोप होना अवश्य कुछ-कुछ अखरता है।

भोजन : आदमियों का भोजन यहाँ सादा और कम व्यंजनों वाला होता है। मौसम के मुताबिक तथा अपने काम के अनुसार दो तीन या चार बार भोजन किया जाता है। सवेरे का कलेवा घरवाली खेतों पर ले जाती है। इसमें बाजरे या गेहूँ की तीन चार रोटी और शाम के भोजन में राबड़ी होती है जो चने या ज्वार के आटे को

मट्ठे में भिगोकर पकायी जाती है, जाड़ों में बाजरे और मूंग की दाल की खिचड़ी खायी जाती है। गेहूँ का आटा मेहमानों के लिए या श्राद्ध आदि के अवसर पर जब ब्राह्मण आदि जिमाये जाते हैं काम में लिया जाता है। रोटी के साथ दाल और साग भी खाया जाता है। मौसम में गन्ना भी खूब चूसा जाता है। इससे सर्दी से बचाव रहता है। यहाँ मठा या छाछ खूब पिया जाता है। नमक मिर्च का प्रयोग भी खूब होता है। माली खरबूजे, तरबूज और मूलियाँ खूब उगाते हैं और गाँवों में नाज के बदले में बेचते हैं। केवल उन मनुष्यों को छोड़कर जिन्होंने फौज में नौकरी की है यहाँ कोई मनुष्य गोश्त इत्यादि नहीं खाता।

गैर खेतिहर लोग

जो भूमिधारी पंजाब में स्वयं खेती नहीं करते वे किसानों की श्रेणी से अलग हैं। स्वयं अपनी जमीन जोतने बोने वालों के अधिकारों से इनके अधिकार पृथक हैं। मुद्दतों से इनके पास धरती है जो पीढ़ी-दर-पीढ़ी इन्हीं के अधिकार में चलती आ रही है। यह सिलसिला सिक्ख और अँग्रेजी शासन से बराबर चल रहा है। मौंटगुमरी जिले के अरोड़ा या खत्रियों को ये अधिकार 18 वीं शताब्दी में अँग्रेजी या सिक्ख शासनों से उस समय मिले जब नकाई सिक्खों ने यहाँ अपना अधिकार जमाया था। गुजरानवाला जिले में अँग्रेजी राज्य में खत्रियों की जमींदारी कायम हुई। परन्तु हाफिजाबाद तहसील के अधिकतर जमींदारों को जमीनें मुलतान के गवर्नर दीवान सावनमल ने भेंट में दीं। 1901 ई० से पूर्वी पंजाब भूमि अधिनियम के अनुसार खेतिहर भूमि को कोई भी खरीद सकता था। रुपया भी जमीन को गिरवी रखकर खूब दिया जाता था। बड़ी-बड़ी जमीनें साहूकार खरीद लेता था। कहीं-कहीं तो गैर खेतिहर जमींदार जाट किसानों के दिवालिया होने पर मालगुजारी देने की लिखत-पढ़त अपने नाम करा कर स्वयं ही जमीन के मालिक बन जाते थे।

हालांकि ये गैर खेतिहर जमींदार हाथ से स्वयं खेती नहीं करते थे लेकिन ये खेती की बढ़ोत्तरी में पूरी दिलचस्पी लेते थे। डार्लिंग ने लिखा है कि इस सूबे के दक्षिण पश्चिम के भागों में खेती की तरक्की शहर के रहने वालों के कारण ही हुई। 1859 में मुलतान की समृद्धि खेती न करने वाली अरोड़ा कौम के कारण ही हुई। इसने अपना रुपया और श्रम लगाकर भूमि को उर्वरा बनाया। अभी भी मुलतान डेरागाजीखाँ, मुजफ्फरगढ़, और झंग में अरोड़ा जमींदार साधारण जमींदारों से अच्छे और अधिक प्रगतिशील हैं। उदाहरण के लिए इन्होंने कुओं से पानी खींचने वाले बैलों के लिए अलग छायादार जगहें बनायीं और खेतों की नाली के किनारे-किनारे आम के पेड़ लगाये। यद्यपि ये स्वयं खेती नहीं करते परन्तु अपने मजदूरों की पूरी देखभाल करते हैं और आलस के कारण जोताओं से अपनी धरती को खराब नहीं करवाते। इन जिलों में अधिकतर इन्हीं के कारण ट्यूबवैल लगे। उत्तर में मियांवाली जिले में अरोड़ाओं ने ही खेती का अधिक प्रचार किया। रावलपिंडी और लायलपुर में बनाये गये कृषि फार्मों का श्रेय भी इन्हीं को है।

6.

ग्राम संगठन

विभिन्नता में एकता पंजाब के गाँवों का विशेष गुण है। यहाँ के गाँवों में जाने से ऐसा लगता है जैसे उत्तर प्रदेश, बिहार, महाराष्ट्र के किसी गाँव में पहुँच गये हों। इसका कारण यह है कि सभी प्रदेशों के गाँवों की बनावट एक जैसी है। पास-पास मकान, छोटी-छोटी गलियाँ एक मकान से दूसरे मकान तक चली जाती हैं। गाँव में कहीं एक कोने में पुराना सा तालाब या पोखर दिखायी पड़ता है जिसमें भैंसें नहाती हैं और धोबी कपड़े धोते हैं।

अन्य प्रदेशों के गाँवों की तरह यहाँ जाति-पाति का भेद कुछ कम है। यहाँ के लोग एक ही पूर्वज की सन्तान होते हैं, उनका गोत्र एक होता है, उनका रक्त सम्बन्ध भी होता है और अधिकतर जातियाँ काम के आधार पर बनती हैं।

देश की आजादी और बँटवारे के बाद यहाँ के गाँवों में काफी परिवर्तन हुआ है और सच तो यह है कि सारे ग्रामीण पंजाब में पश्चिमी पंजाब के विस्थापितों के बस जाने के कारण पुरानी बातें एक याद बन कर रह गयी हैं। बँटवारे के कारण पंजाब में ऊँच नीच का भेदभाव तेजी से खत्म हुआ है और समानता की भावना ने सभी तरह से घर कर लिया है। इसका कारण यह है कि पश्चिमी पंजाब के पुराने रईसों ने अपनी सम्पत्ति खोकर फिर से नया जीवन आरम्भ किया। इनमें से जो मेहनती और होशियार थे वे अपना मार्ग स्वयं खोज सके और जो सुस्त और पराश्रित थे वे पिछड़ गये। यहाँ लाहौर, शेखपुरा और गुजरांवाला के किसान आये, दुकानदार आये, साहूकार आये और बहुत से ऐसे लोगों ने जो हाथ से काम नहीं करते थे और जिनका यहाँ आने पर प्रगति का रास्ता रुक गया उन्होंने मेहनत के मोल को पहचाना और झूठे सम्मान को छोड़ कर अपने हाथ से काम करने की आदत डाली। वे जहाँ भी बसे वस वहाँ नया जीवन उभर आया। पुराने बाजार नये हो गये, और वहाँ पर सिलसिलेवार दुकानें तरह-तरह का सामान बेचने के लिए खुल गयीं। पूर्वी पंजाब के लोग कुछ पिछड़े हुए थे और उनकी औरतें परदा करती थीं पर पश्चिमी पंजाब के निवासियों के कारण पर्दा प्रथा ढीली पड़ गयी और उनके खानपान का ढंग बदल गया। शाकाहारी जनता भी मुर्गी, अण्डे और गोश्त खाने लगी और फलों की खपत दिन पर दिन बढ़ने लगी। यहाँ के गाँवों में भी सुन्दर गेटें दिखाई पड़ने लगे।

इस तरह बँटवारे ने यहाँ के जन जीवन को नया रूप दिया और उनके अन्दर यह बात पैदा की कि सारा मुल्क हमारा है और सारे देश के लोग हमारे भाई हैं और अगर पंजाब खुशहाल बनता है तो सारा देश खुशहाल बन जायगा इस तरह सारे काम में उनका नजरिया ही बदल गया।

गाँव में अधिक पैदावार करने के लिए चकबन्दी हुई। कई किसानों ने इसमें बड़े उत्साह से भाग लिया। उन्होंने खेती के सुधरे तरीके अपनाये और सरकार ने यातायात की व्यवस्था को तेजी से बढ़ाया। जो लोग कभी घरों में बिजली जलने की सोच भी नहीं सकते थे उनके घरों में रेडियो का संगीत सुनायी पड़ने लगा। नयी-नयी बातें आयीं तथा संचार सुधार ने भी आधुनिक रूप धारण किया जिससे वर्तमान ढाँचा बदल गया। 1950 से पहले लगभग सभी गाँवों में सिंचाई के लिए बैल और रहट होते थे। अब जगह-जगह पर पम्प दिखाई देते हैं। पम्प से रहट के मुकाबले में दुगनी सिंचाई हो जाती है।

इस तरह किसानों का जीवन स्तर ऊँचा उठ गया। उनके 50 प्रतिशत गांवों में बिजली आ गयी, पक्की सड़कें बन गयीं, पक्की नालियाँ बन गयी हैं। इस तरह पूरे गाँव का संगठन बदल गया। इसलिए भारत विभाजन के अभिशाप को पंजावियों ने अपनी मेहनत से वरदान में बदल दिया।

लाहौल के गाँव

लाहौल क्षेत्र की गाराघाटी के खास-खास गाँव कैलांग, कोलोंग और कारडंग है। गोंधला रंगलोई घाटी का मुख्य गाँव है। पाटन घाटी में कुल प्रदेश के 173 गाँवों में से 82 गाँव है। ये गाँव 11,500 फुट से अधिक ऊँचाई पर नहीं है। यहाँ के मकान चपटी छत के है और एक दूसरे के साथ सटकर बने हुए हैं ताकि जाड़ों में अन्दर ही अन्दर स्थायी रूप से आपसी सम्पर्क कायम रह सके। अधिकतर गाँव खेतों के निकट बसे होते हैं।

स्पीति में मकान एक दूसरे से अलग बनते हैं। कहीं-कहीं गाँव का एक चौक भी होता है। भवनों की छतें चपटी और साफ पुती हुई होती है। मकानों के ऊपर ईंधन भरा रहता है। कुछ गाँवों के दृश्य बहुत सुन्दर है। साथ में बौद्ध मठ भी दिखाई पड़ते हैं। 'काई' का बौद्ध मठ बहुत ऊँचा मठ है। यहाँ से यात्री सारे पठारों को देख सकते है। थांगयुड का मठ मध्यकालीन किला जैसा लगता है और इसके ऊपर विशाल हिमालय खड़ा हुआ बहुत अच्छा दिखाई देता है।

डांगर स्पीति की राजधानी है और यह 12,774 फुट की ऊँचाई पर आबाद है। यह कगार के ऊपर बसा है जो घाटी में होती हुई एक निचली ढाल पर जाकर खत्म हो जाती है। यहाँ के मकान भी कगारों पर खड़े हुए हैं। इस पहाड़ी पर एक ऐसा सरकारी मकान है जो पहाड़ी किला कहलाता है और इसके साथ कुछ खेतिहर क्षेत्र भी हैं। इसके नीचे एक मठ है। सचमुच यहाँ का दृश्य देखने में बहुत सुन्दर लगता है।

कुल्लू के गाँव

गाँव : दूर से देखने पर कुल्लू के गाँव बड़े सुन्दर लगते है। ये पहाड़ी क्षेत्र में अच्छे विश्राम स्थल से प्रतीत होते हैं। गाँव का दृश्य मनोहारी होता है पर खाद के लिए इकट्ठा किया गया गोबर का ढेर गाँव की गन्दगी को बढ़ा देता है।

यहाँ मकान अलग-अलग बने हैं। ये जैसी जगह होती है वैसे ही बनाये जाते हैं। मकान कुछ विचित्र तथा सुन्दर लगते हैं। इनकी लम्बाई-चौड़ाई से ऊँचाई अधिक होती है। इनकी छत ढालू होती है जो स्लेटी पत्थर या छप्पर की बनी रहती है।

इमारतों की लम्बाई चौड़ाई परम्परागत रीति के अनुसार 11×9, 19×9, 15×11, 18×9 और 18×11 फुट तक की होती है। मकान तीन चार मंजिल के भी होते हैं। मकान बनाने में अधिकतर चूना और गारा नहीं लगाया जाता केवल सूखे पत्थर होते हैं जिन्हें ठीक से रखने के लिए बीच-बीच में लकड़ी के तख्ते दीवार में रखे जाते हैं। साधारण मकान 40 से 50 फुट तक ऊँचे होते हैं।

नीचे की मंजिल की छत लकड़ी के तख्तों की होती है। वही ऊपर की मंजिल का फर्श होता है। इस मंजिल में ढोर बाँधते हैं। बड़े किसान का खिरक या बाड़ा अलग होता है। पहली मंजिल में अनाज या गोदाम बना लेते हैं। दूसरी मंजिल में बाल्कनी होती है। इस भाग में ये स्वयं रहते हैं। बाहर नसैनी लगाकर बाल्कनी में सीधे आया जा सकता है। घर के चारों तरफ पत्थर का एक घेरा भी बना लेते हैं।

कुल्लू के ऊपरी भागों में दो मंजिल के ही मकान होते हैं। सिराज में चार पाँच मंजिल के मकान होते हैं और अधिकतर पशु घर में ही बाँधे जाते हैं। बड़े जमींदारों के यहाँ बाड़ा अलग बना हुआ होता है।

कांगड़ा के गाँव

कांगड़ा घाटी के गाँव मैदानों के गाँवों से बिल्कुल नहीं मिलते। मकान छितरे और दूर दूर फैले हुए हैं। प्रत्येक कुटुम्ब का खेतों में ही मकान होता है। यहाँ कहीं छोटा कुटुम्ब है और कहीं बड़ा। कुछ गाँवों में ज्यादा जनसंख्या है लेकिन वहाँ भी मकान एक साथ मिले हुए नहीं दिखाई देते। गाँवों के झोंपड़े भी एक दूसरे से बहुत भिन्न हैं। हमीरपुर तहसील में तथा डेरा और नूरपुर तहसील में झोंपड़े पास पास बने हैं। यहाँ उनको गाँव कहते हैं। दूसरी जगहों में इनको 'लाढ़' कहते हैं। पुराने और बड़े गाँवों में ऊँची-ऊँची जाति के लोग रहते हैं। क्योंकि इन्हें पहले पहाड़ी राजाओं से बिना लगान के धरती मिल जाती थी। इसीलिए ये ज्यादा घने बसे हैं। आमतौर पर जो गाँव मैदानों के पास हैं जमीन की अधिक से अधिक मिलकियत बनाना चाहते थे। यही कारण है कि यहाँ बहुत सारे गाँव बसे हुए हैं।

हरेक आदमी अपने फार्म पर रहता है और वहीं मकान बना लेता है जो साधारणतया सूर्य की तरफ को होता है परन्तु हवा से बचा रहता है। ये मकान धूप में सूखी हुई ईंटों के तथा दुमंजिले होते हैं। अधिकतर लोग नीचे की मंजिल में

रहते हैं और ऊपर का हिस्सा भंडार के काम आता है। ऊपर की छत अधिकतर फूस की होती है, पर कभी कभी मोटे स्लेटी पत्थर की भी बना ली जाती है। इन पर बाहर लाल रंग की या हल्के रंग की लिपाई होती है। बाहर बहुत सफाई रहती है। आंगन में पेड़ों की या काँटों की बाढ़ लगा दी जाती है जिससे एकान्त रह सके। इस मकान के एक तरफ मवेशी के लिए छप्पर होता है जिसे कुरहल कहते हैं। दूसरे भाग को 'ओरी' कहते हैं जहाँ भेड़-बकरी रहती हैं। यदि फार्म का मालिक अमीर हो तो वह एक दो भैंस भी रखता है। ये अलग बाड़े में रखी जाती हैं जिसे मैंहारा कहते हैं। झोंपड़ी का फूस हर तीसरी साल बदला जाता है। जहाँ पर घास-फूस बहुत होता है वहाँ उसे हर साल बदला जाता है। झोंपड़ी के खंभे शीशम या ओरी या सिरस के बने होते हैं। हर्र, बहेड़ा या पीपल पूजनीय समझे जाते हैं अतः ये काम में नहीं लाये जाते। सिरस का पेड़ राजाओं या देवताओं के मकान बनाने के काम में आता है। प्रत्येक 'नवरात्रि' में झोंपड़ी की लिपाई होती है जिसमें ऊँची जाति की औरतों को छोड़कर सब काम औरतें ही करती हैं। इसी प्रकार विवाह के अवसर पर भी वर के मकान की सुन्दर पुताई होती है।

झोंपड़ी का दरवाजा पूर्व या दक्षिण की ओर होता है परन्तु इसका कोई खास नियम नहीं है। परन्तु मकान का मुँह पश्चिम की ओर कभी नहीं करते। राजपूत और ब्राह्मण गाँव की सबसे ऊँची और एकान्त जगहों में बसते हैं। ऊँचे वर्णों के मकान चतुर्भुजाकार होते हैं। खिडकी व दरवाजों के किवाड़ भी अन्दर की ओर ही खुलते हैं। यह सब ज्यादा पर्दानशीनी के कारण किया जाता है।

माझा के गाँव

माझा क्षेत्र के गाँव में घुसते ही आप देखेंगे कि घरों के मुख्य द्वार मुख्य सड़क की तरफ या उस सड़क से फटने वाली किसी गली की ओर होते हैं। दरवाजा खुलते ही चौक दिखाई देता है इसमें एक तरफ पशुओं की खोर और दूसरी तरफ रहने के कमरे बने होते हैं। ये कमरे लम्बे और कम चौड़े होते हैं। कहीं कहीं इनके आगे बरामदा होता है और कहीं नहीं भी होता। इनके एक तरफ लकड़ी की सीढ़ी लगी रहती है जिसके द्वारा छत पर चढ़ा जा सकता है। इन कमरों में खिड़कियाँ नहीं होतीं और हवा या रोशनी केवल दरवाजे से आती है। धुवाँ भी दरवाजे से ही निकलता है या छत के धमाले से निकल जाता है। परन्तु खाना आंगन के एक कोने में छप्पर डालकर तथा मिट्टी की दीवार बनाकर पकाया जाता है।

लोग खुली हवा में रहते हैं। सर्दी और वर्षा में ही कमरों में आते हैं। हरएक मकान में एक भरोली होती है। इसमें नाज भरा रहता है। इसमें नीचे से नाज निकालने के लिए एक सूराख होता है। खुले मकान में चारपाई, पल्हेंडी और चर्खे आदि रखे रहते हैं। छतों पर दीवार या कपास के डंठल या मिर्च, मक्का के बीज आदि सूखते रहते हैं। कुछ मकानों में ऊपर चौबारा भी बना होता है। किसी-किसी मकान में ड्योढ़ी भी मिलती है जिसमें एक छोटा सा द्वार होता है ताकि अन्दर का

सहन बाहर से दिखाई न दे सके। यह ड्योढ़ी जमींदारों के मकानों या हवेलियों में होती है। ड्योढ़ियों में ढोर बांधे जाते हैं या चारा रखा जाता है। हल व जुआ रखने के अलावा कभी कभी मेहमान भी यहीं ठहरा दिये जाते हैं। सम्पन्न आदमियों की ड्योढ़ी में लकड़ी पर नक्काशी की हुई चौखट लगी होती है। अमृतसर, गुरदासपुर, जालंधर, होशियारपुर, लुधियाना के जिलों में ड्योढ़ी का रिवाज नहीं है क्योंकि यहाँ के गाँवों में मकान खुले और हवादार होते हैं। यहाँ घनी आबादी होने के कारण लोग मकानों में बड़ी तंगी के साथ रहते हैं पर खेतों पर रहने के लिए झोंपड़ी नहीं बनाते। कुछ लोग कुओं के पास मकान बना लेते हैं, परन्तु ज्यादातर बस्ती से दूर या अलग जगह में नहीं बसते। इसका यह भी कारण है कि यहाँ अपराध बहुत होते हैं तथा चोरी इत्यादि हो जाने का काफी डर रहता है।

गाँव के कारीगर अधिकतर गाँवों में ही बसते हैं। उनके मकान छोटे-छोटे होते हैं। बढ़इयों के मकान अच्छे बने होते हैं जो गाँव में एक तरफ बने होते हैं। बढ़ई एक मितव्ययी कारीगर जाति है जो दूसरों की अपेक्षा किफायतसारी से रहती है। चमार तथा इसी प्रकार के अन्य कारीगरों के मकान गाँव के बाहर होते हैं।

मालवा के गाँव

इन गाँवों में मकानों के दरवाजे बड़े होते हैं। क्योंकि यहाँ लदे हुए ऊँटों को अन्दर ले जाने की प्रथा है। रात के समय दरवाजे बन्द कर दिये जाते हैं, क्योंकि यहाँ चोरी डकैती बहुत होती है। यहाँ के गाँव बड़े-बड़े होते हैं इनमें कुछ कच्ची ईंटों के और कुछ पक्की ईंटों के बने होते हैं। गाँव में सँकरी और चक्करदार गलियाँ होती हैं। इन गाँवों में एक दो तालाब या पोखर होते हैं जिनसे मकानों के लिए मिट्टी व पशुओं के लिए पानी मिलता है। पोखर के चारों तरफ एक सड़क होती है जिसे फिरनी कहते हैं। गाँवों के चारों तरफ बाड़ें होती हैं जहां पर ईंधन रखने के लिए बिटौरे बनाये जाते हैं।

गाँव के मकान अधिकतर कच्चे होते हैं परन्तु अब पक्के मकान भी खूब बनाये जाते हैं। पक्के मकान सम्पन्नता की निशानी हैं। बहुत से बड़े-बड़े जमींदार अच्छे शानदार पक्के मकानों में रहते हैं और बैटरी से चलने वाले रेडियो भी रखते हैं।

साधारण मकान गारे के बनते हैं अर्थात् मिट्टी के ढेलों को चिनकर गीली मिट्टी से लिम्हाई करते चले जाते हैं और छतें शहतीरों को मिलाकर ऊपर से मिट्टी डालकर पाट दी जाती हैं। साधारणतया दीवारें 14 फुट तक ऊँची होती हैं। दरवाजे में घुसते ही पहले ड्योढ़ी आती है जिसमें वे मेहमान वगैरा ठहरते हैं जो पर्दों के कारण अन्दर नहीं जा सकते। यह ड्योढ़ी प्रायः 12 फुट चौड़ी होती है और मकान की लम्बाई के बराबर ही होती है। इस ड्योढ़ी में एक छोटा सा दरवाजा होता है जो सहन (वलगां) में जाता है। सहन में पशुओं के बाँधने की जगह, रसोई और दूसरी तरफ को रहने के कमरे होते हैं। उन कमरों के आगे कहीं-कहीं बरामदा भी होता

संकट की इस बेला में ग्रामीण भारत पीछे नहीं रह सकता । पंजाब के ये ग्रामीण नौजवान ग्राम-रक्षादल में सम्मिलित होकर देश की आन और शान को बचाने के लिए छाती ताने तैयार खड़े हैं

अपने धर्म को बचाने के लिए सिक्खों को रण का बाना पहनना पड़ा। फिरोजपुर का यह निहंग सिक्ख आज भी उसी परम्परा का प्रतीक है

है। इसमें घर की सब चीजें भरी रहती हैं। ये कमरे ज्यादा रुचिकर नहीं होते क्योंकि अक्सर खराब मौसम में ही आदमी इनमें रहते हैं। वरना अधिकतर खुले में ही काम करते हैं। रसोई भी खुले में बनाते हैं। मकानों में अनाज भरने की भरोली होती है। रहने के कोठों में बुखारी भी होती है जिसमें कपड़े इत्यादि रखे जाते हैं। पशुओं का चारा छतों पर रखा जाता है। बाकी बचा हुआ चारा अटारी में भर दिया जाता है। जाड़ों की रात में पशु ड्योढ़ी या अलग बनी झोंपड़ियों में बाँध दिये जाते हैं। यहाँ मेज कुर्सी की जगह खाट या मंजी ही होती है। इन्हीं पर बैठते हैं, खाते पीते हैं और इन्हें दूसरे कामों में भी लाते हैं। कुछ निवाड़ से बुनी पीढ़ियाँ भी होती हैं। इन पर औरतें बैठकर चरखा कातती हैं। चरखा हर घर में मिलता है। दूध बिलोने व रसोई के बरतन भी घरों में बाहर ही रखे दिखाई देते हैं। रसोई के बर्तन पीतल के होते हैं जो साफ करके दीवार के सहारे कतार में लगे दिखाई पड़ते हैं।

दोआब के गाँव

जालंधर जिले के गाँव सम्पन्न दिखाई देते हैं और ये सब पक्के होते हैं। गाँव में घुसने के लिए एक प्रवेश द्वार होता है जिसमें दोनों तरफ चबूतरे होते हैं और इधर-उधर कोठड़ियाँ। इनमें मुसाफिर भी ठहराये जाते हैं और बरसात में गाँव के लोग भी इनमें बैठकर गप शप करते हैं। ईंटों के दरवाजे बहुत बनते हैं। यदि ये बड़ा प्रवेश द्वार कभी गिर जाए तो गाँववाले मिलकर गाँव की प्रतिष्ठा के लिए इसे तुरन्त बनवाते हैं। दरवाजे के बीच में एक रस्सी में बँधा ताबीज (टोटका) लटका रहता है जिससे गाँव में कोई बीमारी या जानवर न घुस सके।

सिक्खों के गाँवों में गुरुद्वारे या धर्मशालाएँ जरूर होती हैं। इनकी स्थापत्यकला में मसजिद की सी गुम्बद और हिन्दू मन्दिरों की सी सीधी ध्वजाएँ होती हैं। गाँवों में गुरुद्वारों का विशेष महत्त्व है। हर महीने की पहली तारीख को सारे गाँव के लोग यहाँ इकट्ठे होते हैं और भजन आदि गाते हैं। गुरुद्वारे में बच्चों को गुरुमुखी में शिक्षा भी दी जाती है। गुरुद्वारा एक सार्वजनिक स्थान माना जाता है जहाँ पर आमतौर से पुस्तकालय और औषधालय भी बना लिये जाते हैं।

दोआब के बहुत से लोग गाँवों से बाहर व्यवसाय करते हैं। अपनी आमदनी से वे गाँव में पक्के मकान बना लेते हैं और ट्यूबवैल भी लगवा लेते हैं। आजकल सामुदायिक विकास योजना और राष्ट्रीय विस्तार सेवा के कार्यक्रमों के अंतर्गत भी सड़कें व गलियाँ पक्की बन गयी हैं। पशु अधिकतर हवेली में अलग ही बाँधे जाते हैं। यहाँ शहतूत के पेड़ छाया के लिए लगा दिये जाते हैं। चकबन्दी होने के बाद ज्यादातर किसान अपने पशुओं के साथ दिन में खेतों पर ही रहने लगे हैं। इससे गाँव में सफाई रहती है और पशुओं का मलमूत्र सीधा खेतों से ही खाद के गड्ढों में भेज दिया जाता है।

हरियाना के गाँव

इस प्रदेश में रोहतक का जिला ऐसा है जहाँ बड़े गाँव हैं। वहाँ गाँव की औसतन आबादी 1,200 आदमी से कम नहीं है। इतनी आबादी और किसी जिले के गाँवों की नहीं पायी जाती। गाँव आमतौर पर कुछ ऊँचायी पर बनाए जाते हैं या पुराने खण्डहरों के ऊँचे मलवे पर ही बसा लिये जाते हैं। गाँवों के पास पेड़ भी काफी तादाद में होते हैं।

झज्झर तहसील के गाँवों में छप्पर और ढालू छतें होती हैं। बाकी तहसीलों में गाँव एक से ही हैं। जब आप किसी गाँव में पहुँचेंगे तो सड़क के चारों तरफ काँटे या डौल मिलेगी जिससे जानवर खेतों में न घुस सकें। पिलू के पेड़ गाँव को एक या दो तरफ से घेरे रहते हैं। दूसरी तरफ गाँव की आबादी खेतों से घिरी रहती है। गाँवों में एक या दो पोखर होते हैं। इनमें पशुओं के पीने के लिए बरसाती पानी भरा रहता है। इसके चारों तरफ नीम या पीपल के पेड़ रहते हैं, पास में कुआँ भी होता है जिसकी सुन्दर पनघट चूने की बनी होती है। कुएँ के पास में पशुओं के पानी पीने के लिए प्याऊ होती है। गाँव के बाहर चारे के लिए गटवारे और ईंधन के लिए बिटोरे होते हैं जिनके चारों तरफ काँटे लगे रहते हैं। यहीं से स्त्रियाँ उपलों को उठा कर घर ले जाती हैं। हरएक गाँव के चारों तरफ घरों के पिछवाड़े की ओर एक खाई या नाला होता है। घरों का दरवाजा सहन या सड़क की ओर खाली जगह में खुलता है। गाँव की सड़क एक दूसरे के विपरीत दिशा में जाने वाली गलियों से मिली रहती है। घरों का दरवाजा गली में खुलता है। दरवाजे पर चित्रकारी भी दिखाई पड़ती है। अन्दर सहन में बैल बाँधे जाते हैं। कई-कई कमरों का एक ही दरवाजा होता है। खाना पकाने के वक्त घरों से धुआँ दिखाई देता है। छतों पर लकड़ी का पटाव होता है। इन्हीं कमरों में कहीं पर बर्तन, चरखा, टोकरी, अनाज की कोठियाँ आदि रखी रहती हैं। अन्दर से चक्की पीसने की आवाज भी अलम सुबह सुनाई देती है। छत पर जाने के लिए सहन में सीढ़ी लगी रहती है। मकान की छतों पर चारा रखा रहता है। छतों पर रुई या अनाज भी सूखता रहता है। गर्मियों में लोग छतों पर सोते भी हैं।

बढ़ई के मकान के चारों तरफ लकड़ी के लट्ठे पड़े रहते हैं। पेड़ के नीचे भट्ठी से मालूम होता है कि ये लुहार का मकान है। तेली के मकान में कोल्हू चलता रहता है। नीले, लाल और पीले रंग के कपड़े सूखने से मालूम होता है कि ये रँगरेज का मकान है। बाहर टट्टू खड़े रहने से मालूम होगा कि यह नाई का घर है। बनिया अपनी दुकान के पास रुई साफ करता हुआ मिलेगा। बनिये की दुकान पर हाथ का थापा तथा सिन्दूर से कुछ लिखे हुए अक्षर मिलेंगे। थापा समृद्धि का प्रतीक है। घर में लड़का पैदा होने का पता भी इससे चलता है। गाँव का बनिया अनाज के बोरों, तेल के पीपों और अपनी बहियों से घिरा हुआ मिलेगा। गाँव से बाहर कभी-कभी अलग बस्ती में हरिजनों के मकान भी मिलेंगे। चमड़े रंगने की बदबू से और कमाई

हुई खाल लटकने से पता चलेगा कि यहाँ कोई चमार रहता है। धानक और जुलाहे के द्वार पर खड्डी लगी रहती है। यहाँ पर जुलाहा दम्पत्ति सूत बँटते, उसको तानते और साफ करते हुए दिखाई पड़ेंगे। कुम्हार का मकान भी गाँव के बाहर ही होता है। वहाँ सुअर और मुर्गी के बच्चे अजनबी आदमी को देखकर भागते हैं। कभी बोझा लिए आदमी या चारे की गाड़ी गाँव में आती हुई मिलेगी। जानवर तालाबों के किनारे खड़े रहते हैं और गली के किनारे मोहल्लों में बच्चे धूल में खेलते फिरते हैं। ये गुल्ली डण्डा, गेंद बल्ला, आँख मिचौनी के खेल खेलते हैं। गाँव में सवेरे ही आदमी काम पर चले जाते हैं और साँझ को वापस आते हैं। यह दृश्य देखने में बड़ा भला लगता है। परन्तु दोपहर में गाँव वीरान नज़र आता है। कहीं-कहीं घरों में शाम का खाना बनाते समय धुआँ जरूर दिखाई पड़ता है।

रोहतक के गाँवों में चौपाल का बड़ा महत्त्व है। ज्यादातर यह पक्की होती है। ये प्रायः गाँव के बीचों बीच होती हैं। इसमें गाँव के मेहमानों के लिए एक दर्जन चारपाई पड़ी रहती हैं। हुक्के वालों के लिए हर समय आग सुलगती रहती है। बराबर में राख का ढेर लगा रहता है। चौपाल की दीवारों पर श्रीकृष्ण, राम, घोड़े, रेल और आजकल राष्ट्रपिता महात्मा गांधी और श्री जवाहरलाल नेहरू की तस्वीरें बनी रहती हैं।

सम्पन्न गाँवों में विशेष कर नहरी सिंचाई के गाँवों में सुन्दर मन्दिर और तालाबों के पक्के घाट होते हैं। व्यापारी लोग शिवालय भी बना लेते हैं। कहीं-कहीं बड़ी सुन्दर निर्माण कला का दृश्य गाँवों में दिखाई देता है जैसे गोपालपुर, कठूरा, डीघल, बेरी इत्यादि में। गाँव के तालाब को जोहड़ कहते हैं। बड़े गाँव में तो सात आठ तक जोहड़ होते हैं। किसी जोहड़ में सन गलाया जाता है, कोई जानवरों के पानी पीने व नहाने के लिए होता है, तो कोई पीने के पानी के लिए ही होता है। कुछ अच्छे तालाब भी सांपला, कन्हौर, बेन्सी, डीघल, भावर, रिधाना और गुहाना आदि में बने हुए हैं। गाँव में एक और अजीब रिवाज यह होता है कि गाँव में जोहड़ के किनारे एक पत्थर खड़ा करके कहा जाता है कि यह जोहड़ की बहू है। शायद यह इसलिए है कि जब सभी के जोड़े हैं तो फिर जोहड़ ही रंडुआ क्यों रहे ?

रोहतक के गाँवों में पेड़ बहुत कम हैं। नीम खूब हैं और मकान भी काफी पक्के हैं। 1914 ई० की लड़ाई से पहले मकान कच्चे थे और सिर्फ चौपाल ही पक्की थी। अब प्रायः सब मकान पक्के बन गये हैं। पश्चिमी जमुना नहर बनने से यहाँ का किसान काफी मालदार हो गया है। झज्झर तहसील के सूखे क्षेत्र में जहाँ जीवन अधिक सुरक्षित नहीं है लोग ज्यादातर फौज में भर्ती हो गये हैं। विशेषकर इन दो विश्व युद्धों के बाद पेन्शनदार भी गाँव में बहुत मिलेंगे। ऐसे भी खानदान हैं जिसमें से फौज में तीन से अधिक रंगरूट गये हैं। जो फौज में रहा है वह चाहता है कि गाँव में उसका अपना पक्का मकान हो। रोहतक के किसानों ने अपनी बचत का पूरा फायदा उठाया है। उन्होंने पक्के मकान बनाने के बाद सार्वजनिक भवनों के निर्माण पर भी ध्यान

दिया है। बाद में गलियाँ और स्कूल भी बनवा डाले हैं। ये लोग सार्वजनिक भवन निर्माण के प्रति काफी जागरूक हैं।

हिसार के गाँव एक दूसरे से काफी भिन्न हैं। सबसे अच्छे तो हांसी और भिवानी के गाँव हैं। हिसार और फतेहाबाद का कुछ वह हिस्सा भी अच्छा है विशेषकर जहाँ नहर की सुविधा है। यहाँ के गाँव या मकान बड़े-बड़े हैं। बहुत से ईंटों के मकान व चौपाल भी हैं। कच्ची झोंपड़ियाँ भी बहुत हैं। सम्पन्न व्यापारियों की पक्की हवेलियाँ हैं। गाँव के बाहर गाँव के कामगर जैसे चमार इत्यादि के झोंपड़े दिखाई देते हैं। गाँव में जाने के सिर्फ एक या दो ही रास्ते होते हैं। गाँव मोहल्लों या पानाओं में बँटा रहता है। परन्तु इनमें एक दूसरे से अधिक सम्बन्ध नहीं होता। गाँव के बाहर शिव या कृष्ण का मन्दिर जरूर मिलेगा। पास में सुन्दर गहरा तालाब भी होता है जिसके किनारे सुन्दर घाट और कुआँ बना रहता है। तालाब के पास ही एक साधु की झोंपड़ी होती है जो एक प्रकार से तालाब का रक्षक माना जाता है। तालाब के चारों तरफ नीम, पीपल, कीकरऔर बेर आदि के पेड़ होते हैं।

गाँव के चारों तरफ गिटवाड़ा या गौहरा जिसे उत्तर प्रदेश में गैत कहते हैं, होता है। तालाब के चारों तरफ खुली जगह होती है, जो तालाब के उपराहन के रूप में रखी जाती है ताकि तालाब में पानी बढ़ने पर गाँव को हानि न हो सके। इस जगह पर गाँव वाले किसी को अधिकार नहीं करने देते। तालाब के चारों ओर सुन्दर-सुन्दर पेड़ लगे रहते हैं।

यह वर्णन पूर्व, दक्षिण व मध्य हिसार के जाटों के गाँवों का है। पश्चिम और दक्षिण पश्चिम के गाँवों में इतनी सम्पन्नता नहीं है। आबादी के चारों तरफ पेड़ कम हैं। तालाब भी इतने बड़े नहीं हैं। यहाँ पर इतनी बड़ी चौपालें भी नहीं हैं। पक्के मकान भी बहुत कम हैं। गाँवों के चारों तरफ ऊँची और घनी झाड़ियाँ हैं। बीच में एक दरवाजा है। ये झाड़ियाँ रात को चोरों या पशुओं से रक्षा करने के काम आती हैं। राजपूतों के गाँवों के आसपास एक सुन्दर छतरी भी दिखाई पड़ती है जो धनवान राजपूतों ने अपने स्वर्गीय पित्रों की स्मृति में बनवायी हैं। गाँव के बनियों ने जो नेपाल या कलकत्ते में व्यापार करते हैं, बहुत सी जगह पक्के तालाब भी बनवा दिये हैं।

इस प्रदेश में पानी की कमी है। जहाँ नहर या घग्घर नदी है उन स्थानों को छोड़कर अनेक स्थानों में पानी 100-100 फीट की गहराई पर है। जब जोहड़ या तालाब सूख जाते हैं तो सिर्फ कुओं से ही पानी लिया जाता है। गाँवों के तालाबों की बराबर मरम्मत होती रहती है। बहुत से गाँव ही इतने निचान में बने होते हैं कि जहाँ आस-पास के भागों में बरसात का पानी इकट्ठा हो जाता और तालाब सा बन जाता है। ज्यों-ज्यों गाँव बढ़ता जाता है त्यों-त्यों मिट्टी तालाब से लेकर खेतों में डाली जाती है ताकि तालाब गहरा होता चला जाए। गाँव की आमदनी का काफी अंश तालाब की मरम्मत और उसको बढ़ाने में लग जाता है। जब तक तालाब में पानी रहता है

तब तक मनुष्य और जानवर उसी से पानी पीते व नहाते हैं। अच्छे गाँवों में तो पानी पीने को एक तालाब अलग होता है और पशुओं के लिए एक अलग पोखरा होता है। कहीं-कहीं तालाब के दो भाग कर दिये जाते हैं।

जब तालाब सूख जाते हैं तो पानी के लिए सिर्फ कुआँ रह जाता है। बहुत से कुओं का पानी खारी व पीने के अयोग्य होता है, परन्तु पीने के काम के लिए कुएँ अधिकतर तालाब के किनारे ही बनाये जाते हैं। वहाँ का पानी तालाब से साफ होने के कारण मीठा होता है। सिरसा गाँव में तो कुओं के गोले में एक सूराख छोड़कर उसे तालाब से मिला देते हैं और इस तरह तालाब से कुएँ में पानी आता है और बराबर पानी मीठा बना रहता है। जब तक पानी मिलता रहता है कुओं से काम लिया जाता है। जब तालाब सूख जाता है तो जाड़ों के दिनों में पानी लाने के लिए बहुत से लोग वेतन पर कहार नौकर रख लेते हैं।

इस जिले के मकान अलग-अलग ढंग से बनाये गये हैं। सबसे अच्छे मकान तो हाँसी में और हिसार जिले के पूर्वी भाग के जाटों के गाँवों में पाये जाते हैं। इनमें गाँव में एक बड़ा दरवाजा होता है जिसके दोनों तरफ ड्योढ़ीनुमा कमरे होते हैं। यह दरवाजा आँगन या बिसाला में जाकर खुलता है। मकान के अन्दर सोने बैठने के कमरे होते हैं। जाटों के मकान इसी प्रकार के होते हैं। एक मकान में कई-कई हिस्से कच्ची दीवार लगाकर बना लिए जाते हैं जो एक ही सहन से सम्बन्ध रखते हैं। इन हिस्सों से कहीं रसोई और कहीं सोने बैठने का काम लिया जाता है। द्वार पर अनेक प्रकार की लोकरुचि की चित्रकारी व पच्चीकारी भी मिलती है। एक कमरे में रोटी पकाई जाती है। दरवाजे के बाहर अँगीठी पर दलिया पकता रहता है या दूध औटता रहता है। रात में पशु आँगन या ड्योढ़ी में बाँध दिये जाते हैं। चारा कच्ची छतों पर सुखाया जाता है।

साधारण लोगों के घरों में कुछ चारपाई, पीढ़े, चरखा और नाज की कोठी, ऊखल, मूसल इत्यादि मिलते हैं। रोजाना चक्की से आटा पीसा जाता है। बहुत से मकानों में छींका टँगा रहता है, जिसमें रात का बचा हुआ खाना कुत्ते बिल्लियों से बचाकर रख दिया जाता है।

करनाल के गाँव अधिकतर टीलों पर बसे होते हैं। हरएक गाँव पुराने चार पाँच गाँवों की आबादी के ऊपर बसा होता है। गाँव चाहे पुराना न दिखायी पड़े परन्तु बसा पुरानी जगह पर ही होता है। यहाँ मकान अधिकतर पक्के और दुमंजिले होते हैं। गाँव के बाहर गोहरा (बिटौरा) होता है जिसमें उपले रखे जाते हैं। मकानों में मिट्टी की कोठी होती है जिसमें अनाज भरा रहता है। आबादी के चारों ओर रहट या चरस से सींची हुई धरती मिलेगी और इसके बाद ढाक का जंगल होता है। ढाक का जंगल फरवरी के महीने में बिल्कुल वीरान रहता है। ढाक के जंगल में पशु और डाकू भी रहते हैं। इन गाँवों में यातायात व्यवस्था तीव्र और सुव्यवस्थित है। रात में आना जाना

बड़ा मुश्किल रहता है । यदि कोई किसान रास्ता भटक जाये तो किसी आबादी में पहुँचने में उसे घंटों लग जाते हैं ।

अब यहाँ कुछ तबदीली हो गयी है । जंगलों को काटकर बड़े-बड़े फार्म बना लिये हैं जहाँ पर खूब खेती की जाती है । इस काम में अमृतसर और जालंधर तथा शेखूपुरा से आने वाले फिरकों ने बसकर बड़ा योग दिया है । यही कारण है कि यह इलाका जंगली न दिखाई देकर खूब सरसब्ज हो गया है ।

7.

सांस्कृतिक जीवन

पंजाब के सांस्कृतिक जीवन में भी देश के अन्य प्रदेशों की भाँति लोकगीतों, लोक-नृत्यों और ग्रामीण कलाओं का महत्त्वपूर्ण स्थान है ।

लोकगीत

पंजाब के प्रेम और श्रम की भावना से पूरित लोकगीत अपना विशेष महत्त्व रखते हैं । उनका अपना अनूठा आकर्षण है । ये गीत भी पंजाबी किसानों की तरह ही सीधे सादे हैं और ग्रामीणों के दिल की धड़कनों की आवाज को बुलंद करते हैं । इन गीतों में हम ग्रामीणों की आशाएँ, आकांक्षाएँ, प्रेम, खुशी और रंज सभी कुछ पाते हैं । इनमें हम साँझ को जंगल से घर की ओर लौटती हुई गाय भैंसों के गले में बँधी घंटी की टंकार को सुनते हैं तो लगता है जैसे धरती पर ही स्वर्ग उतर आया हो । इन गीतों को सुनकर सहसा हमें गेहूँ और पीली सरसों के लहलहाते खेतों की याद आ जाती है ।

इन गीतों में हम शहीदों का त्याग, अस्त्र शस्त्रों की झंकार, युद्ध में बिदकते हुए घोड़ों की हिनहिनाहट, वीरों के जख्मों से निकलता खून, दुश्मन के सिरों का धूल में लोटना इत्यादि सभी दृश्य देखते हैं । जब वीर शान से वीरता से युद्ध में जाते हैं तो ऐसा लगता है जैसे बारात लेकर दुल्हन लेने जा रहे हों । इन गीतों में हमें एक बहादुर जाति का अट्टहास, वियोगिनी नारी का रुदन, विदाई, मिलन और बिछोह के अश्रु पूरित दृश्य भी मिलते हैं ।

आम के कुंजों में युवतियों के नीम और पीपल के पेड़ों के नीचे झूले रहते हैं और उनकी रंगरेलियों से मधुवन गूंज उठता है । युवतियाँ सावन के गीत गाती रहती हैं । तारों की छाँह में ढोलक का ठुमका स्त्रियों के विवाह गीत के मधुर स्वर के साथ बहुत ही अच्छा लगता है । बहू की चोटी गूँथी जा रही है । उसको लाल कपड़े पहनाये जा रहे हैं । दूल्हा घोड़े पर चढ़कर बारात के आगे आगे जा रहा है । बहू पालकी में ससुराल जाने वाली है । अगर उसे अच्छी सास मिल गयी तो वह बड़ी भाग्यवान है । परन्तु जब सास यह सोचती है कि उसके लाड़ले बेटे का मन एक बाहर के व्यक्ति ने छीन लिया है तो दोनों में द्वेष बढ़ जाता है । सास आज तक मेहनत करती आई है । वह सुबह उठती है, चक्की पीसती है, दो घंटे सुबह शाम भैंस का दूध दुहती है, मट्ठा

बिलोती व मक्खन निकालती है। फिर इन कामों से निबट कर रोटी बनाती है और अपने पति व बेटे के लिए रोटी ले जाती है। वह नई दुल्हिन की सुस्ती को कुछ दिन तो सहती है पर अन्त में बहू से हाथ बटाने को कहती है। इन लोकगीतों में तरुण पत्नियों के भी बहुत शिकवे शिकायतें हैं। इन गीतों में उन सभी गृह कार्यों की चर्चा है जो गृहणियों को करने पड़ने हैं और जो उनके जीवन का बड़ा भार बन गये हैं। उसके परिश्रम की थकावट केवल कुएँ पर जाने, वहाँ हँसी खुशी की बात करने या देवर से हँसी करने से ही कुछ कम होती है।

गद्दियों को अपना चरागाही जीवन बहुत पसन्द है। यह बात गद्दी लड़की के अपने पति के वरने के लिए गाये सुन्दर गीतों में स्पष्ट है :

पिता मुझे बूढ़े को मत दीजो रे,
मैं बाल पकने से पहिले ही विधवा हो जाऊँगी रे।
पिता मुझे नौकर को मत दीजो रे,
नौकर मालिक का हुक्म सुनते ही चला जायगा रे,
और मुझे अकेली छोड़ जायगा रे।
पिता मुझे दूर देश मत दीजो रे,
मुझे तो उसे दीजो जिसके पास बहुत से ढोर हों।
मुझे बीमार को भी मत दीजो रे,
नहीं तो कम आयु में ही विधवा हो जाऊँगी रे।
मुझे भेड़ चरय्या को दीजो रे,
क्योंकि वह मुझे झोली भर गोश्त खिलायेगा रे।
मुझे भेड़ चराने वाले को दीजो रे,
वह मुझे चोलो ओढ़नी देगा रे।

पंजाब भारत की पश्चिमोत्तर सीमा पर स्थित है। हर आततायी सबसे पहले इसी भूमि पर चढ़ कर आया और इसीलिए पंजाब का जीवन कभी भी शान्तिमय नहीं रहा है। यही कारण है कि स्त्रियाँ अपने भाइयों और पतियों से अधिक प्रेम करने वाली हैं। अब भी उनके पति फौज में जाते हैं और नव-विवाहिताओं को अकेली छोड़ जाते हैं। नव-विवाहिताओं का वियोग यहाँ के अनेक लोकगीतों में भरा पड़ा है। पति जब छुट्टी पर आते हैं तो उन्हें अपार खुशी होती है। इन गीतों के छन्दों में युवक और युवतियों के पुनर्मिलन का अपार हर्ष भी भरा पड़ा है।

गाँवों में जीवन आज से दस वर्ष पहले इतना नीरस नहीं था। रात की निस्तब्धता तरुणियों के चरखे के साथ गाये जाने वाले गीतों से भंग हो जाती थी। चरखे की घूं, घूं कत्तनों पर जादू डाल देती थी। वे अपने हृदय के भावों को इन गीतों में व्यक्त करती थीं :

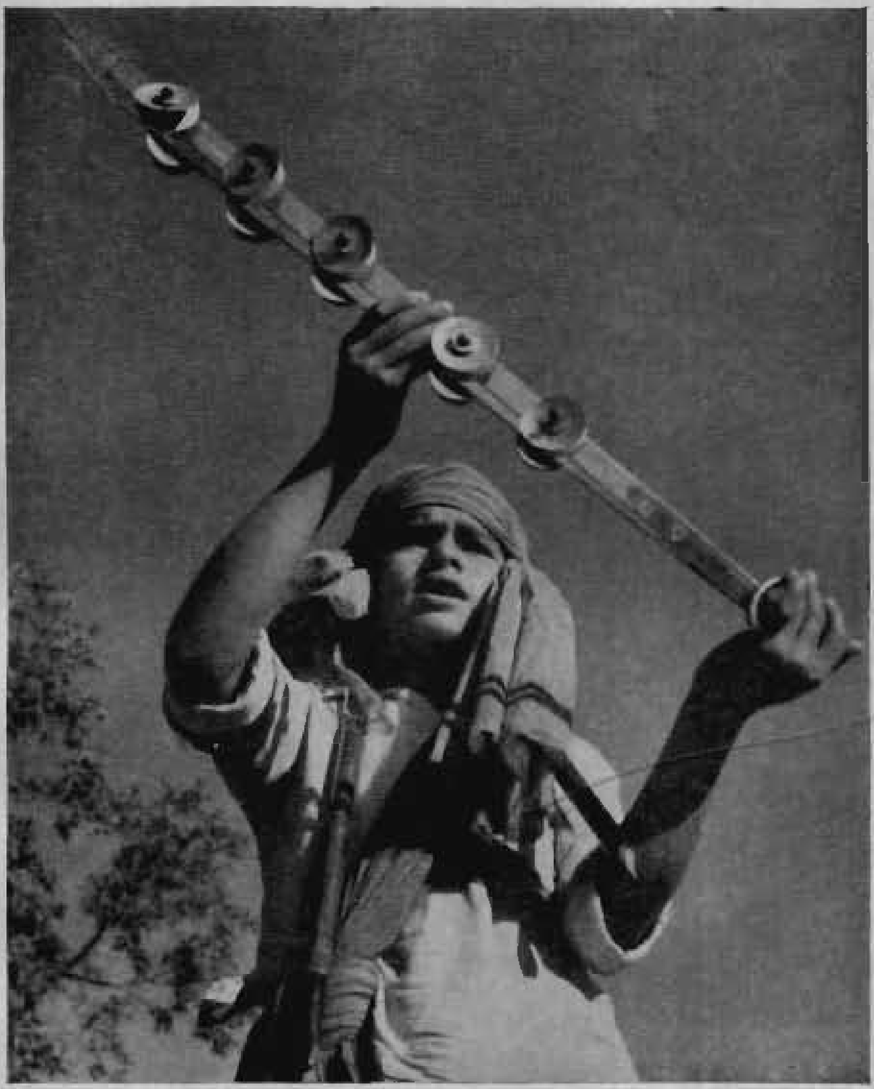

गुरदासपुर का यह लोकगायक चिमटे पर
ताल देता हुआ अपने लोक गीतों से
लोगों के शौर्य और साहस को जगा रहा है

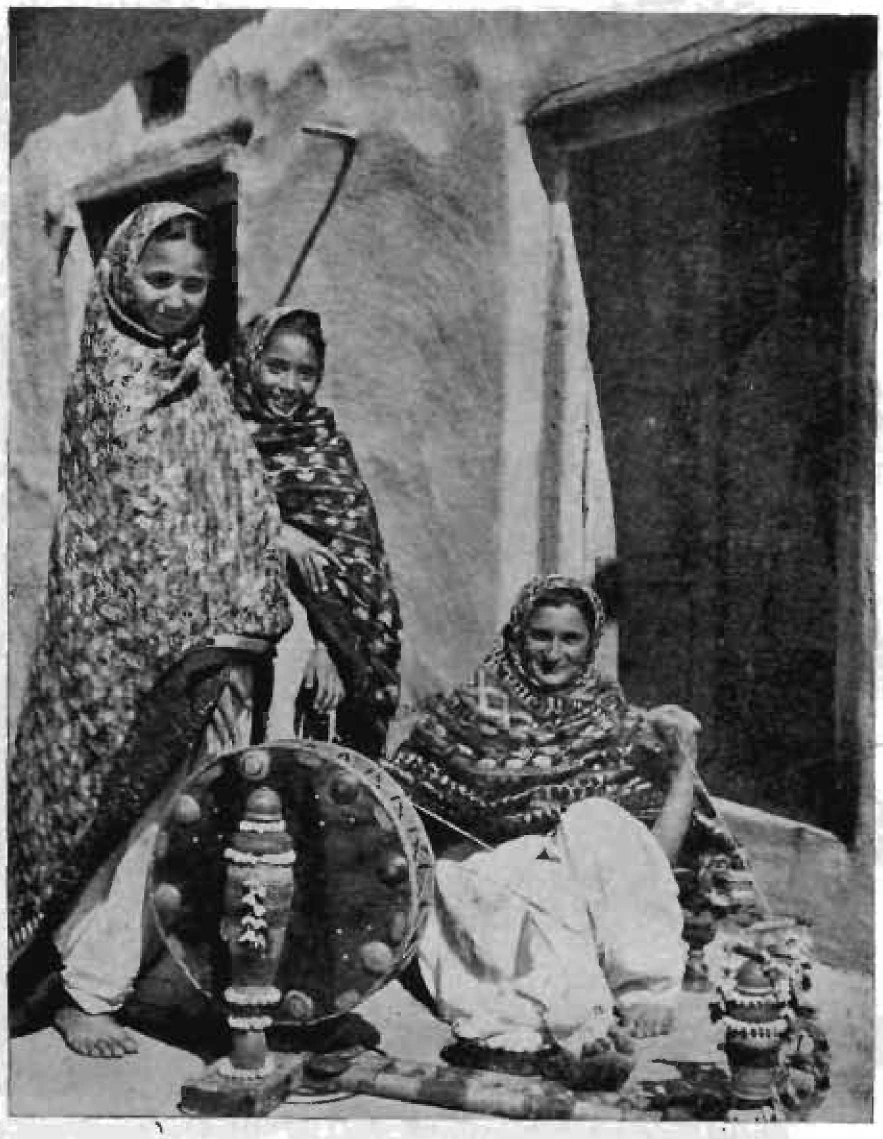

गांधी जी ने चरखे को राष्ट्रीय पुनरुत्थान का संकेत-चिह्न माना था । उसी चरखे के मधुर संगीत में यह पंजाबी महिला खोई-सी जान पड़ती है

घूं, घूं ओ चरखे मेरे घूं, घूं ।
क्या मैं लाल सूत कातूं या नहीं कातूं ?
कात री लड़की कात ।
मेरी ससुराल बहुत दूर है,
मैं जाऊँ या नहीं जाऊँ ?
जा री लड़की जा ।
मेरे दुःख की कहानी लम्बी है,
मैं कहूँ या न कहूँ ?
कह री लड़की कह ।

चर्खा गीतों में बहनों के गीत अब गाँवों में कम होते जा रहे हैं । अब सजे हुए चर्खे जिन पर शीशे और कौड़ियाँ जड़ी रहती थीं बहुत ही कम दिखाई देते हैं । तिरंजन अब गाँव में दिखाई नहीं देता । अब उसकी गाँव में केवल यादगार बाकी है । धार्मिक कट्टरता के साथ-साथ पंजाब का संगीत गाँवों से तिरोहित होता जा रहा है । हारमोनियम बजाने वाले भजनीक लोकगीतों को छोड़कर भजन और शब्द गाने लगे हैं । जो लोकगीत बचे हैं वे भी धीरे-धीरे अब खत्म होते जा रहे हैं । लोगों की आत्मा धर्म के नाम पर होने वाले लाभ के बदले बेच दी गयी है । मुसलमान मीरासियों के पाकिस्तान जाने से गाँव की सरसता मिट गयी है । लाउडस्पीकर लगे ग्रामोफोन गाँवों में पहुँच गये हैं जिनमे सस्ते गन्दे गीत लोकगीतों के बजाय सुने जाते हैं । गाँव की स्त्रियाँ भी जिन्होंने गाँवों के लोकसंगीत को संजो रखा था, वे भी अब उन गानों को और पुरानी पोशाकों को हेय समझने लगी हैं । अब सुन्दर घघरी के बजाय सलवार ओढ़नी ही ऊँचे वर्ग की स्त्रियों का पहनावा हो गया है । लोकगीत गाना अब ओछा काम समझा जाता है । फिल्मी गानों के आगे अब उनकी कद्र बिलकुल जाती रही ।

लोकनृत्य

लोकगीतों की तरह लोकनृत्य भी ग्रामीणों की आन्तरिक भावनाओं के उद्गार हैं । हरएक क्षेत्र में अपने-अपने लोकनृत्य होते हैं । भांगड़ा, गिड्ढा और झूमर पंजाब के मुख्य नृत्य हैं । गद्दी नाच गद्दियों का है । तलवार और कर्थी नाच कुल्लू की घाटी में खूब प्रचलित है ।

भांगड़ा नाच सब से अधिक जोशीला नृत्य है । सियालकोट, शेखूपुरा और गुजरानवाला जिलों में लवाना सिख, राय सिख और जाटों ने इस नाच को अभी तक कायम रखा है । धीमी-धीमी ढोल की ताल के साथ लोकनृत्य की वेश भूषा पहिने नर्तक ततकार शुरू करता है फिर जैसे-जैसे ढोल की गति तेज होती जाती है वैसे ही जोश के साथ नर्तक नाचने की गति तेज कर देता है और देखने वाले आत्म विभोर होकर

स्वयं भी उछलने लगते हैं। नर्तक ठुमके के साथ-साथ गीत भी गाता है। भांगड़ा नृत्य गेहूँ की बुआई के साथ शुरू होता और बैसाखी में जब जाड़े के मौसम का अन्त होता है सारा वन प्रदेश भांगड़ा की किलकारी और अट्टहास से गूँज उठता है।

सावन में नव-विवाहिता लड़कियाँ अपने पीहर (मैके) आ जाती हैं। ये लड़कियाँ अपनी सहेलियों के साथ नाचती गाती हैं। कभी-कभी उनके दूल्हे भी आकर नाचते हैं। ये नाच किसी नदी या सरोवर के किनारे आम के कुंजों में होता है। जो आम के कुंज कुछ दिन पूर्व फल टूटने से निर्जीव दिखाई देने लगे थे वे एक बार फिर नृत्य और गान से गूँज उठते हैं। फागुन में इन कुंजों में कोयलें कूकती हैं और सावन में युवा लड़कियाँ चहकती हैं। आम की डालियों में झूले डाल दिये जाते हैं और नाच-गान शुरू हो जाता है। इस सामूहिक नृत्य का दृश्य बड़ा रमणीक और नयनाभिराम होता है।

गिड्‌ढा स्त्रियों का नाच है। इसके द्वारा कोमल भावों का प्रदर्शन किया जाता है फिर भी इसमें पूरा जोश और ताकत लगती है। और यह फसल कटाई के समय, विवाह, पुत्र-जन्म आदि में नाचा जाता है। इसके भाव और विषय प्रकृति की देन, युद्ध में जाने के कारण पति का वियोग तथा युद्ध की पौराणिक कहानियाँ आदि होती हैं।

झूमर जोशीला नाच है। यह प्रकृति की देन के लिए मानव की कृतज्ञता प्रकट करता है। कभी तो नौजवान, बच्चे और बूढ़ा बाप साथ-साथ नाच उठते हैं। झूमर खुशी का प्रदर्शन मात्र है। हर एक समय झूमर नाचा जा सकता है। क्योंकि इसमें तो खुशी से नाचने वाले 35-40 लोग होते हैं। धार्मिक कट्टरता की लहर के कारण पंजाब में अब नृत्यगान पाप और दुराचरण माना जाने लगा है। किन्तु आजादी के बाद पुनः लोकगीत और लोकनृत्यों का विकास होने लगा है।

गद्दी गड़रियों का नृत्य : गद्दी गड़रिये कांगड़ा घाटी के उत्तरी भाग में रहते हैं। उन्होंने पुरातन परम्परागत नाच और गाने को जीवित रखा है। यद्यपि यह घाटी मुसाफिरों के लिए खुल गयी है फिर भी सफेद ऊन के लहंगे पहने और उस पर काले रस्से लपेटे हुए ये लोग खुलकर नाचते गाते हैं। साथ-साथ नगाड़ा भी बजता रहता है। ज्यादातर मनुष्य और स्त्रियाँ अलग-अलग नाचते हैं। आदमी मैदान में नाचते हैं व औरतें अपने घर के आँगनों में ही नाचती हैं। 25-30 आदमी घेरा बनाते हैं और ढोलक की टंकोर के साथ शहनाई की आवाज में बड़ी धीमी-धीमी स्वर लहरी व ततकार से नाच शुरू करते हैं। स्त्रियाँ भी घर के बुने सुन्दर कपड़े पहने हुए व चाँदी के जेवर पहने नर्तकों के चारों ओर बैठ जाती हैं जिससे उन्हें बराबर प्रोत्साहन मिलता रहे। फिर उन्हें जोश आता है और नृत्य में गति आ जाती है। नृत्य के साथ-साथ वे 'हरिनत' और 'भल्ला है' की आवाज भी एक स्वर से करते हैं जिसका अर्थ 'आओ नाचो' तथा 'खुशी से नाचें' हैं। नाचने वाले अपने दोनों हाथ फैलाये अपने चोलों को छाते की तरह फैलाये हुए घूमते रहते हैं। ये शराब या लुगड़ी पी-पी कर खूब नाचते हैं। रात-रात भर वे नाचते ही रहते हैं। चम्बा घाटी के कौजुआ और चंचलो के नाम आज भी यहाँ रोमियो जूलियट की तरह मशहूर हैं।

हरियाना की पोशाक में अभी
तक लहँगे का प्रमुख स्थान है

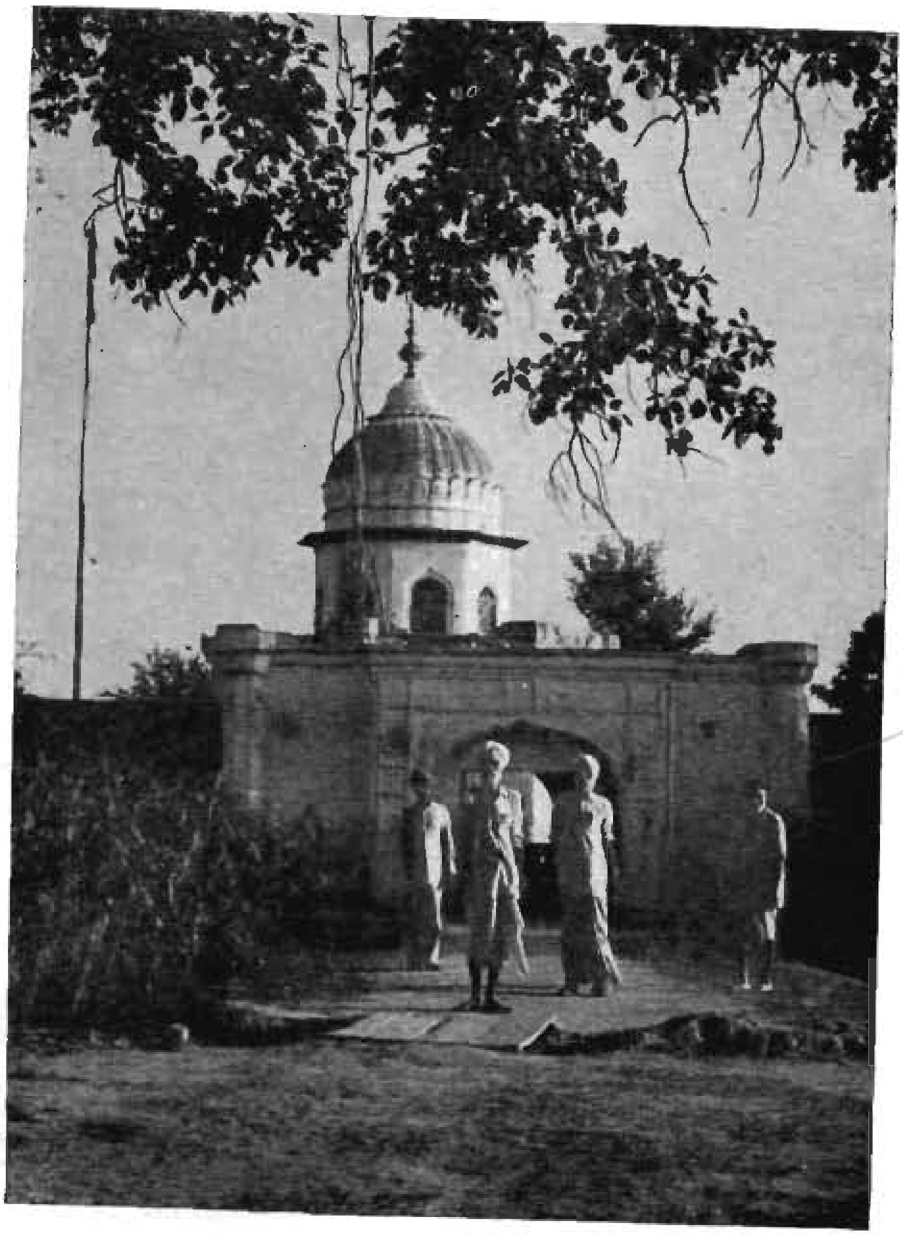

पंजाब के सांस्कृतिक जीवन में गुरु नानक की छाप स्पष्ट दिखाई पड़ती है। यही कारण है कि पंजाब के गाँव-गाँव में गुरुद्वारे नजर आते हैं

कुल्लू के लोकनृत्यों की एक अलग विशेषता है। नर्तक लम्बे कोट और काली टोपी पहनते हैं जिनमें 'मुनाल' के चमकीले पर लगे रहते हैं जो बड़े सुन्दर लगते हैं। इनका तलवार नृत्य बहुत प्रसिद्ध है। इस नाच में आनन्द व धार्मिक कृत्य दोनों शामिल रहते हैं क्योंकि इस घाटी का हरेक देवता नचैया और वादक है। तुरही और बाजा बजते ही तलवारें निकल आती हैं और नाच शुरू हो जाता है। तुरन्त नाचने वालों के जोड़े बन जाते हैं और इस तरह एक दूसरे पर तलवार से नाचते नाचते वार करते हैं और बचाते हैं। बहुत से एक हाथ में तलवार लेते हैं और बहुत से दोनों हाथों में रखते हैं। जब नाच खत्म हो जाता है तो नाचने वाले फिर घेरा बनाते हैं और रूमाल हिलाकर दर्शकों से विदाई लेते हैं।

करथी नृत्य : करथी नृत्य कुल्लू घाटी का दूसरा नाच है। इसमें मर्द औरतें फसल कटने के बाद नाचते गाते हैं। सुन्दर कपड़े पहने खेत में इकट्ठे होकर लोग चाँदनी रात में खूब नाचते गाते हैं। नाचने वाले एक दूसरे का हाथ बाँध कर घेरा बना लेते हैं फिर धीरे धीरे ततकार शुरू करते हैं। जब नाच में जोश आता है तो औरतें अपने साथी को खुशी में घुमाती हुई दूर तक ले जाती हैं और एक दूसरे पर वजन साध कर खुशी से झूल जाती हैं। नाच की गति गीतों में आये हुए भावों को व्यक्त करती हैं। नृत्य और गीतों का विषय ऐतिहासिक घटनाएँ, प्रेमगाथाएँ तथा देवताओं की वंदना इत्यादि हैं।

कसीदाकारी : बाग और फुलकारी

बाग और फुलकारी अब से दस वर्ष पहले पंजाब की औरतों की अच्छी कसीदाकारी थी। हाथ के कते हुए कपड़े सुन्दर लाल पीले रेशम से कढ़े बड़े अच्छे लगते थे। जहाँ घनी कढ़ाई होती है उसे बाग कहते हैं। जहाँ छितरी कढ़ाई होती है उसे फुलकारी कहते हैं। औरतें अपना बचा हुआ समय इस फुलकारी या बाग की कढ़ाई में लगाती हैं। अच्छे बाग के बनाने में एक दो बरस तक लग जाते हैं।

बाग और फुलकारी असल में फुरसत की चीज है। गाँव की औरतें इस कसीदे में अपने हृदय का चित्र खींच कर रख देती हैं। सूरज, चाँद, तारों भरा आकाश, सुनहरी पीली सरसों के खेत, अलसी के फूल, रंग बिरंगी चिड़ियाँ, मोर, तोते, मैना इस कला के आधार हैं। जब ये औरतें लाल खद्दर पर रंगीन फूल काढ़ती हैं तो उस कढ़ाई में उनकी सारी भावना समा जाती है।

फीरोजपुर में मोगा तहसील का बाग और फुलकारी अपनी सुन्दरता और कला के लिए मशहूर है। उनके मुकाबले में दोआब की फुलकारी कुछ मोटी है परन्तु शहर का रहने वाला मनुष्य इस ग्रामीण सुन्दरता को नहीं समझ सकता। अब यह कला मशीनी कढ़ाई के कारण नष्ट होती जा रही है। सस्ते मशीन के छपे कपड़े इस कढ़ाई की प्राप्ति के बीच में बाधक हैं और गाँव की औरतों को भी अब इतनी फुरसत नहीं मिलती जितनी उनके पूर्वजों को थी। दूसरे वे अब इस कला को भी धीरे-धीरे भूलती जा रही हैं।

भारत के स्वतन्त्र होने के बाद पंजाब ने काफी प्रगति की है। 1956 में सम्पूर्ण भारत की प्रति व्यक्ति औसत आमदनी यहाँ केवल 264 रुपये थी वहाँ पंजाब में प्रति व्यक्ति औसत आय 296 रुपये थी। पंजाब के किसान के अधिक उत्पादन का रहस्य उन्नत बीज और उर्वरकों का प्रयोग तथा आवश्यक सिंचाई सुविधाओं का उपलब्ध होना है। किन्तु ये चीजें तभी उपयोगी सिद्ध हो पाती हैं जब कि किसान मेहनत से काम करता है, वह प्रगतिशील होता है और नई अच्छी बातों को तुरन्त अपना लेता है। पंजाब के किसान में ये तीनों गुण भरपूर मात्रा में मौजूद हैं। यही कारण है कि पंजाब दिन दूनी रात चौगुनी उन्नति कर रहा है।

2. हिमाचल प्रदेश

हिमाचल प्रदेश को उसके अनूठे पर्वतीय प्रदेश, कल-कल करती सरिताओं और तीव्र गति से बहते झरनों तथा हरी-भरी रमणीक उपत्यकाओं ने अनुपम सौन्दर्य प्रदान किया है। प्राचीन काल से ही इसका अपना एक विशिष्ट व्यक्तित्व रहा है। नवीन भारत की जन-जागरण की इस बेला में यह भी आर्थिक शोषण से मुक्ति पाने के लिए अन्य राज्यों के साथ कदम से कदम मिलाकर आगे बढ़ने को तत्पर है।

—सम्पादक

8.

परिचय

हिमाचल प्रदेश सन् 1948 में पश्चिमी हिमालय की 30 पहाड़ी रियासतों का एकीकरण करके बनाया गया था। इसमें चम्बा, सिरमूर, मण्डी, सुकेत, रामपुर, बुशहर के अलावा अनेक छोटी-छोटी रियासतें हैं जिनमें रामपुर-बुशहर सबसे बड़ी है। इसका क्षेत्रफल 3,439 वर्गमील है। रतेश रियासत तो सबसे छोटी रियासत है जिसका क्षेत्रफल केवल 2 वर्गमील है। हिमाचल प्रदेश तिब्बत के रास्ते में पड़ता है। इसके उत्तर में जम्मू-कश्मीर, उत्तर-पूर्व, पश्चिम और दक्षिण-पश्चिम में पंजाब, पूर्व में तिब्बत और दक्षिण-पूर्व में उत्तर प्रदेश है। इसका क्षेत्रफल 10,904 वर्गमील तथा आबादी (1951 की जनगणना के अनुसार) 11.09 लाख है यानी प्रतिवर्ग मील में 102 आदमी रहते हैं।

हिमाचल का इतिहास

हिमाचल प्रदेश यथार्थ में ही हिमालय प्रदेश है। हिमालय की पर्वत शृंखलाओं ने, उससे निकली नदियों और झरनों ने और उसके घने जंगलों ने सचमुच में इसे अनुपम सौन्दर्य प्रदान किया है। हिमालय का जन्म गंगा के जन्म से भी पुराना है। किसी काल में भारत, अफ्रीका के विस्तृत महाद्वीप से जुड़ा हुआ था। इसके ऊपर टिथिज समुद्र था। टिथिज सागर के नीचे के सम्पूर्ण भू-भाग को वैज्ञानिकों ने गोंडवाना का नाम दिया है। गोंडवाना प्रणाली की चट्टानों की आयु 15 करोड़ वर्ष से भी अधिक है। प्रसिद्ध भू-तत्व वेत्ता वेगनक के कथानुसार गोंडवाना एक समय पृथ्वी का एक बहुत बड़ा भू-खण्ड था। बाद में यह कई टुकड़ों में बँट गया। मध्य-कल्पीय (मैसोजोइक) काल में एक बार ऐसा हुआ कि गोंडवाना भूमि में दरारें और फटन पड़ गयी। इसके कारण गोंडवाना भूमि के कई टुकड़े हो गये। इनमें से कुछ टूटकर फिसल कर चले गये और कुछ पानी में डूब गये। तभी टिथिज समुद्र की तलछट धरातल से ऊपर उठ आयी और इसने बहुत ऊँची हिमालय पर्वतमाला को जन्म दिया। भू-तत्व वेत्ताओं के अनुसार पृथ्वी के हिलने-डुलने के फलस्वरूप हिमालय पर्वत सिर उठाकर ऊपर उठने लगा और हिमालय के नीचे का गंगा सिंधु का मैदान कई हजार फुट नीचे धँस गया।

इस तरह उत्तरी *अँगार* और दक्षिणी *गोंडवाना* भूमि, इन दो महाद्वीपों के भीषण दबाव के कारण हिमालय का जन्म हुआ। यह हलचल बे-रोक-टोक बराबर चलती

रही । इससे यह तलछट अनेक पर्वतमालाओं में परिवर्तित हो गयी । दक्षिण-पश्चिम में हजारा और दक्षिण पूर्व में ब्रह्मौर के पास पंखाकार पर्वत सहसा ही मुड़ गये । धीरे-धीरे धूप, वर्षा और बर्फ के प्रभाव से इन पर्वतों के ऊपरी भागों की कटन-छटन शुरू हो गयी, जिन्होंने कालान्तर में शिखरों जैसा रूप धारण कर लिया ।

पुराणों के अनुसार पश्चिमी हिमाचल के पाँच खण्डों में से हिमाचल प्रदेश एक है । कांगड़ा और पंजाब के पर्वतीय क्षेत्रों को निकालकर जो प्राचीन जालंधर-खंड है, वही पुराणों का हिमाचल है । आज हिमाचल प्रदेश में पाँच जिले हैं:—महासू, मण्डी, बिलासपुर, चम्बा और सिरमूर । इसमें कुल नौ शहर और बारह हजार गाँव हैं ।

हिमाचल प्रदेश में रेल की दो ब्रांच लाइनें हैं जिनमें एक शिमला में और दूसरी जोगेन्द्रनगर में समाप्त हो जाती है । सड़कें भी कम हैं इसलिए यातायात बड़ा कठिन है । पहाड़ भिन्न-भिन्न ऊँचाई के हैं और घाटियों को एक दूसरे से अलग करते हैं । घाटियों पर पहुँचने के लिए ऊँचे पहाड़ों पर चढ़कर अनेक नालों को भी पार करना पड़ता है । जाड़ों में बर्फ पड़ने पर तो ये सम्बन्ध बिल्कुल ही टूट जाते हैं ।

भौगोलिक विवरण

इस राज्य को मुख्यतया तीन भागों में बाँटा जा सकता है :

(1) हिमालय का बाहरी क्षेत्र । (2) हिमालय का आंतरिक क्षेत्र, और (3) पहाड़ी चरागाह ।

बाहरी हिमालय की सीमाएँ पंजाब के मैदानों को छूती हैं । ये सारा क्षेत्र घाटियों से भरा पड़ा है और प्रत्येक गाँव पहाड़ियों और नदियों से घिरा हुआ है ।

आंतरिक हिमालय क्षेत्र में बड़ी छितरी आबादी है, ऊँचे-ऊँचे पहाड़ और सँकरी-सँकरी घाटियाँ हैं और पहाड़ी चरागाहें भी हैं, जो छः महीने तक बर्फ से ढके रहते हैं । यहाँ के बहुत से आदमी जाड़े के दिनों में नीचे की गरम जगहों में उतर जाते हैं और जब गरमी में बर्फ पिघलती है तब वापस पहाड़ों पर लौटते हैं ।

शिमला पर्वतीय क्षेत्र की पर्वत श्रेणियाँ क्रम से अम्बाला मैदान के चारों ओर होती पश्चिमी हिमालय के बड़े-बड़े पहाड़ों में बदल जाती है और सतलज के दक्षिण किनारे बुशहर पर समाप्त हो जाती है । बुशहर की उत्तरी सीमा को चीरती हुई एक बर्फीली पहाड़ी निकलती है जो बुशहर को स्पीति से अलग करती है और पूर्व की ओर एक पहाड़ी इस प्रदेश को चीन को सीमा से जुदा करती है । मध्य हिमालय की पर्वत श्रेणियों की समाप्ति से पूर्व एक दूसरी तिरछी पहाड़ी दक्षिण की ओर दक्षिण पश्चिम में सतलज और जमुना के बीच जाती है । यह शिमला के उत्तर पूर्व में जाकर स्वतः ही दो भागों में बट जाती है । इसकी एक शृंखला सतलज के किनारे-किनारे पश्चिमोत्तर की ओर जाती है और दूसरी वह है जिस पर शिमला बसा हुआ है । ये पहाड़ियाँ बाहरी हिमालय की शृंखला से सम-

कोण बनाती हुई मध्य हिमालय की ओर समानान्तर चली गयी हैं यानी उत्तर पश्चिम से दक्षिण पूर्व की ओर।

शिमला के दक्षिण पूर्वी भाग की पहाड़ियाँ जमुना की सहायक नदियाँ सतलज और टौंस के बीचों बीच पड़ती हैं। इनके बीचों बीच में चौर की चोटी है जो 11,982 फुट ऊँची है। यहाँ उन छोटी-छोटी श्रेणियों का अंत होता है जो मुख्य शिमला पर्वतमाला से दक्षिण की ओर छोटी-छोटी शाखाओं में फैल गयी है। बुशहर को छोड़कर पर्वत शृंखलाओं को 3 भागों में विभाजित किया जा सकता है :

1. चौर की चोटी, जो दक्षिण पूर्व तक फैली हुई है।

2. शिमला की पहाड़ियाँ, जो मध्य हिमालय से लेकर सबाथू के आस पास तक चली गयी हैं।

3. हिमालय की उप पर्वतीय श्रेणियाँ जो उत्तर पश्चिम से दक्षिण पश्चिम की ओर अम्बाला के मैदान की सीमाएँ बनाती हुई चली गयी हैं। इस भाग के भी 2 उपभाग किये जा सकते हैं :—(अ) उप हिमालय का मुख्य भाग, तथा (ब) बाहरी पर्वत शृंखलाएँ जो एक ओर शिवालिक पर्वत शृंखलाओं के और दूसरी ओर गंगा के दोआब क्षेत्र के अनुरूप हैं।

उप हिमालय पर्वत शृंखलाएँ और शिवालिक की श्रेणियाँ एक दूसरे के समानान्तर हैं। इनके बीच में बहुत चौड़ी और खुली किरदा दून की घाटी है, जो बहुत उपजाऊ है।

शिमला की पहाड़ियों के निकास पर प्रभाव डालने वाली यहाँ की बड़ी नदियाँ सतलज, पबर, गिरी या गिरिगंगा, गम्भर और सिरसा हैं। सतलज बुशहर में दो पहाड़ियों के बीच के दर्रे में से घुसती है। इसकी उत्तरी पहाड़ी समुद्रतल से 22,183 फुट ऊँची है। यह नदी दक्षिण पश्चिम की ओर बुशहर होती हुई एक ओर मध्य हिमालय की पहाड़ियों तथा दूसरी ओर स्पीति की पहाड़ियों से पानी लेती हुई रामपुर से कुछ मील दूर कुल्लू की सीमा तक जाती है। इस तरह से यह नदी शिमला की भूतपूर्व रियासतों की हदबन्दी कर देती है और कांगड़ा की ओर होती हुई दक्षिण की तरफ को घूम जाती है और बिलासपुर पहुँच कर दो भागों में बँट जाती है। इस नदी में बुशहर के पास दक्षिण में बास्पा और उत्तर में स्पीति मिलती है। पबर जो टांस नदी व जमुना की सहायक नदी है बुशहर में निकलती है। यह दक्षिण में गढ़वाल की ओर बहती है। गिरी या गिरीगंगा चौर की पहाड़ियों से निकलती है और इस इलाके का कुल पानी लेकर दक्षिण पश्चिम में जाकर सिरमूर क्षेत्र में घुस जाती है। इसकी सहायक नदियाँ अश्मी और अस्सन हैं जो महासू से निकलती हैं और जहाँ नदी दक्षिण पूर्व की ओर मुड़ती है ये गिरी से मिल जाती है। गम्भर डगशाई की पहाड़ियों से निकलकर सबाथू की ओर बहती है। ये ब्लैनी और दूसरी नदियों को, जो शिमला के दक्षिण में बहती हैं, पानी लेती हुई बिलासपुर से 8 मील नीचे सतलज नदी से मिल जाती है। सिरसा नालागढ़ की दून से पानी लेती है। सिरसा को छोड़कर

सब नदियाँ सदैव बहती रहती हैं और बरसात में विशाल रूप धारण कर लेती हैं। पवर को भी बर्फ से काफी पानी मिल जाता है।

चम्बा के इलाके में *हिमालय की तीन बर्फीली श्रृंखलाएँ* हैं जो *दक्षिण पूर्व* से उत्तर पश्चिम की ओर समानान्तर चली गयी हैं। पहली श्रृंखला को धौलाधर कहते हैं और कांगड़ा जिले में उसको चम्बा की पहाड़ी कहते हैं। यह व्यास नदी की तलहटी को रावी से अलग करती है। दूसरी पंगी की पहाड़ी है जो रावी और चेनाब के बीच स्थित है। तीसरी जंस्कर की पहाड़ियाँ हैं जो चेनाब और सिन्धु के बीच में स्थित है। ये पहाड़ियाँ हिमालय के बराबर बराबर पूर्व से पश्चिम में कश्मीर तक चली गयी हैं। बाहरी पहाड़ियों और धौलाधर की पहाड़ियों के बीच में *व्यास* नदी की घाटी है। इसके साथ रावी की घाटी का कुछ भाग मिलाकर इस क्षेत्र को भट्टियात विजारत कहते हैं जो आकार के अनुरूप बहुत ही उपजाऊ और आवाद इलाका है। यहाँ अर्धअयनीय वनस्पतियाँ उत्पन्न होती हैं और बलूत, बैरबेरी के साथ ओक, आम, पीपल और बाँस के पेड़ भी होते हैं। धौलाधर और पंगी की पहाड़ियों के बीच से रावी के पानी का निकास बना हुआ है। यहाँ बड़े बड़े पहाड़ भी हैं और गहरी और संकरी सकरी एक दूसरे से मिलती हुई घाटियाँ हैं जिनमें से पानी बहकर रावी नदी में जाता है। इन सब में सिउल सबसे बड़ा जल-निकास स्थल है जो चम्बा घाटी के सारे उत्तरी पूर्वी क्षेत्र के पानी को बाहर निकालता है। पंगी और जंस्कर पहाड़ियों के बीच में एक वक्र वर्गाकार स्थल है। यहाँ ही 80 मील के बीच में चन्द्रभागा घाटी है।

यहाँ पहाड़ियों के दृश्य बड़े सुन्दर और मनोरम हैं जो मन को बरबस खींच लेते हैं। परन्तु दर्रों की प्राकृतिक सुन्दरता भी कम लुभावनी नहीं है। जब हम इन पहाड़ियों पर चढ़ते जाते हैं तो पीछे छूटने वाली निचली घाटियों के दृश्य बड़े सुन्दर लगते हैं। 11,500फुट की ऊँचाई तक बराबर पेड़ पौधे नजर आते हैं। इससे ऊपर बर्फ से लदी नुकीली और ऊँची चट्टानी पर्वत श्रेणियाँ और बर्फीली नदियाँ मिलती हैं। पहाड़ी और घाटियों में बीच का फासला भी काफी लम्बा पड़ता है। दूर तक फैली घाटियों में यद्यपि पेड़ पौधे नहीं दिखाई देते मगर रंग बिरंगे फूल बहुतायत से मिलते हैं। जैसे जैसे हम ऊपर चढ़ते जाते हैं रंग बिरंगे फूलों की मुस्कराहट कहीं कहीं नजर पड़ती है। खुले मौसम में हवाई जहाज से यात्रा की जाए तो मैदानों की नदियाँ भी धूप से खूब चमचमाती हुई बड़ी खूबसूरत लगती हैं।

कोटगढ़ हिमाचल प्रदेश के
सीढ़ीनुमा खेतों का एक दृश्य

हिमाचल प्रदेश की पर्वतीय नारी को कदम कदम पर कठोर श्रम का पाठ सीखना पड़ता है। भारी गठ्ठर उठाये इन नारियों के वात्सल्यपूर्ण चेहरों से ईमानदारी स्पष्ट झलकती है

9.

जलवायु

हिमाचल प्रदेश पहाड़ी प्रदेश है जो समुद्रतल से 2 हजार फुट की ऊँचाई से लेकर 22 हजार फुट की ऊँचाई तक स्थित है। यहाँ की जलवायु अर्धअयनीय से लेकर अर्द्ध-ध्रुव-प्रदेशीय जलवायु जैसी पायी जाती है। व्यास नदी की घाटी की जलवायु कांगड़ा और शिवालिक प्रदेश की जलवायु के समान है। यहाँ गर्मियों में तेज गर्मी पड़ती है, परन्तु पंजाब के मैदानों जैसी नहीं पड़ती। बरसात भी तेज होती है और बहुत दिनों तक चलती रहती है। जाड़े का मौसम सुहावना और रात दिन के तापमान में थोड़ा फर्क होता है। बर्फ कम गिरती है। परन्तु किसी विशेष वर्ष में इस प्रदेश के 2 हजार फुट तक की ऊँचाई वाले प्रदेशों पर भी बर्फ गिरती देखी जा सकती है। भट्टियात के ऊपरी भाग की जलवायु समशीतोष्ण है। यहाँ खूब वर्षा होती है और जाड़ों में ऊँची और मुख्य चोटियों पर बर्फ की मोटी पट्टी जमी रहती है।

रावी की घाटी में मौसम ऊँचाई के अनुसार बदलता रहता है। गर्मी तेज पड़ती है। बरसात भी अच्छी होती है। जाड़ा साधारण होता है और बर्फ हल्की-हल्की पड़ती है। चम्बा में अधिकतम सामान्य तापमान 80° फै० और न्यूनतम 56° फै० रहता है। यद्यपि कभी-कभी अधिकतम तापमान 108° फै० और न्यूनतम 30° फै० भी पाया जाता है। जैसे-जैसे हम यहाँ से आगे चलते हैं मौसम ठंडा, कठोर और अर्द्ध ध्रुवीय की जलवायु से कुछ भिन्न होता जाता है।

चन्द्रभागा की घाटी में गर्मियों में मौसम बड़ा सुहावना रहता है पर जाड़ों में अर्द्ध ध्रुव प्रदेश जैसा हो जाता है। चूँकि पंगी की घाटी कम से कम 7 हजार फुट तक है इसलिए यहाँ तेज गर्मी कभी भी महसूस नहीं होती। यहाँ की गर्मियाँ बड़ी सुहावनी होती हैं तथा वर्षा कम होने के कारण आर्द्रता भी कम रहती है। किन्तु जाड़ा तेज पड़ता है। अक्तूबर से बर्फ गिरने लगती है और दिसम्बर के बाद से मार्च-अप्रैल तक सारी घाटी हिमाच्छादित रहती है। कभी-कभी यातायात और संवहन भी बंद हो जाते हैं। गाँवों का बाहरी दुनिया से बिल्कुल सम्बन्ध विच्छेद हो जाता है।

चम्बा की घाटी की वर्षा का सालाना औसत 50 इंच के आस-पास है। इसके अनेक भागों में वर्षा जून से सितम्बर तक होती है जिसका औसत 25 इंच तक रहता है। जनवरी और मई के बीच का औसत लगभग 21 इंच है। साल के बाकी महीनों में यानी अक्तूबर से दिसम्बर तक वर्षा का औसत 3–4 इंच से आगे नहीं बढ़ता। धौलाधर और पंगी की पहाड़ियों में भारी वर्षा होती है।

धौलाधर के दक्षिण में भट्टियात में भी भारी वर्षा होती है जिससे रावी की घाटी में काफी अधिक मात्रा में आर्द्रता रहती है। परन्तु ब्रह्मौर के इलाके में वर्षा काफी कम होती है। पंगी के पहाड़ पर कहीं-कहीं अधिक ऊँचाई के कारण दक्षिण ढलाव पर अधिक पानी पड़ता है और हर समय बादलों का जमाव बना रहता है किन्तु चन्द्र-भागा की घाटी में जुलाई-अगस्त में हल्की-हल्की वर्षा होती है। वर्षा का यहाँ वार्षिक औसत 25 इंच से ज्यादा नहीं रहता।

शिमला की पहाड़ी के दक्षिण पूर्व भाग में वर्षा बहुत अधिक होती है। वर्षा दक्षिण पश्चिम और पूर्वोत्तर में जाकर कम होती चली जाती है और बुशहर के कनावड़ क्षेत्र में पहुँचते-पहुँचते यह बिल्कुल खत्म हो जाती है। तिब्बत की सीमाओं पर हर समय सूखी बर्फीली हवाएँ चलती रहती हैं जो वनस्पति को बहुत नुकसान पहुँचाती हैं।

सतलज की घाटी के सहारे बांगटू तक और दूसरी ओर देश की जलस्रोतों द्वारा निर्धारित सीमा की पबर दिशा में वर्षा शिमला की पहाड़ियों की तरह (लगभग 65 इंच तक) ही होती हैं। परन्तु बांगटू से आगे चलकर शिपकी की ओर ज्यों-ज्यों बढ़ते हैं, वर्षा कम होती चली जाती है। इसी कारण ऊपरी कनावड़ की जलवायु अर्ध शुष्क है। बांगटू के पश्चिम की ओर सतलज की घाटी में वर्षा का औसत 70 इंच सालाना तक है। बांगटू से दस मील दूर पूर्व में किलबा के पास वर्षा 43 इंच होती है और शिपकी से 12 मील दूर पूर्व में केवल 16 इंच तक ही वर्षा होती है। चिनि पहुँचते-पहुँचते वर्षा का जोर खत्म हो जाता है। सतलज की घाटी या इसी ऊँचाई के क्षेत्रों में गर्मी खूब पड़ती है। पब्बर की घाटी भी काफी गरम है। साधारण तौर पर आबादी वाले भागों में गरमी सुहावनी और कनावड़ की घाटी में जाड़ा भी सुहावना होता है। यहाँ के विभिन्न स्थानों पर वर्फ गिरने का समय अलग-अलग है। उत्तर की अपेक्षा दक्षिणी ढलानों पर अधिक बर्फ गिरती है। बिलासपुर में बर्फ कम पड़ती है और 5 हजार फुट से कम ऊँचाई वाले स्थानों पर बर्फ एक रात से अधिक नहीं ठहरती। चौर की घाटी (11,892 फुट ऊँची) तो दिसम्बर से मई तक बर्फ से ढकी रहती है। उत्तर की तरफ के ऊँचे पहाड़ों के दक्षिणी ढलानों पर (15,500 फुट) बर्फ जुलाई में धीरे-धीरे पिघलने लगती है। बर्फीले पहाड़ों के दर्रे मई से जुलाई और सितम्बर से अक्तूबर तक ही खुलते हैं। अधिक ऊँचे पहाड़ों के दर्रे थोड़े दिन के लिए यानी वर्षा से लेकर पतझड़ के पहले हिमपात तक ही खुलते हैं।

10.

मिट्टियाँ

हिमाचल प्रदेश की मिट्टियों को पाँच क्षेत्रों में वर्गीकृत किया जा सकता है :—
(1) निचला पर्वतीय क्षेत्र, (2) मध्यवर्तीय पर्वतीय क्षेत्र, (3) ऊँचा पर्वतीय क्षेत्र, (4) पर्वतीय क्षेत्र, और (5) शुष्क पर्वतीय क्षेत्र।

इनका संक्षिप्त विवरण इस प्रकार है :

निचला पर्वतीय क्षेत्र : इसमें पांवटे की घाटी और सिरमूर जिले की नाहन तहसील महासू जिले की अर्की, सोलन, कसूमपट्टी व सूनी तहसीलें, बिलासपुर जिले का सदर और घुमारवीं इलाका, मण्डी जिले की मण्डी और जोगेन्दरनगर तथा चम्बा जिले की भट्टियात तहसील का बहुत सा क्षेत्र आता है। इस क्षेत्र की समुद्रतल से ऊँचाई 1,500 फुट से लेकर 3,000 फुट तक है। मिट्टी यहाँ केवल तंग घाटियों में ही पायी जाती है जहाँ से बहुत से झरने बहते हैं।

यहाँ की मिट्टी अधिकतर रेतीली दोमट है जिसका रंग अधिकतर मटियाला से लेकर बादामी तक है। इसकी पट्टी ज्यादा गहरी नहीं है तथा इसमें कंकड़, पत्थर भी काफी है। यहाँ पर सिंचाई की सुविधा के साथ-साथ जल निकास का अच्छा साधन है। इन मिट्टियों में जैविक और रासायनिक खाद डालने से अच्छी उपज हो सकती है।

मध्यवर्तीय पर्वतीय क्षेत्र : इसमें सिरमूर जिले की रेंका तहसील का नीचे का भाग, सिरमूर जिले का पहाड़, इसी की पच्छड तहसील का किसगिरी का इलाका, महासू जिले की अर्की, सोलन, कसूमपट्टी, सूनी व थियोग तहसील का भाग, मण्डी जिले की सरकाघाट, सुन्दर नगर, चचौट और करसोग तहसील का कुछ भाग शामिल है। चम्बा जिले की तिस्सा तहसील व चम्बा भी इसी में आता है। इस क्षेत्र की ऊँचाई समुद्रतल से 3 से 5 हजार फुट तक है।

इस क्षेत्र में मिट्टियाँ विभिन्न ऊँचाई पर पहाड़ी ढालों पर पायी जाती हैं। इसमें बादामी से लेकर काले तक दोमट से तलछटी दोमट तक की मिट्टियाँ मिलती हैं और इनकी बनावट मध्य महीन है। आंतरिक जल निकास के कारण ये कभी सूखती नहीं है। यहाँ जैविक और रासायनिक दोनों प्रकार के उर्वरकों से अच्छी फसल ली जाती है। यहाँ की मिट्टी उदासीन से हल्की क्षारीय तक है।

ऊँचा पर्वतीय क्षेत्र : इसमें सिरमूर जिले की रेंका तहसील और पच्छड तहसील का तांसगिरी का इलाका, महासू जिले के थेयोग, जब्बल, चोपाल और रामपुर तहसीलें,

मण्डी की करसोंग तहसील और चम्बा जिले की भरमौर, चम्बा और तिस्सा तहसील का क्षेत्र आता है। इस क्षेत्र की ऊँचाई समुद्रतल से 5,000 से लेकर 7,000 फुट तक है। यहाँ की मिट्टियों की बनावट महीन है और उनका गहरा भूरा रंग है। ये तलछटी दोमट से सूखी दोमट तक होती है जिनमें बजरी प्रतिशत बहुत कम होती है। धरती की पपड़ी में ये अच्छी गहराई तक होती है और कहीं यह गहराई 60 फुट तक होती है। सिंचाई के साधन नहीं हैं पर मिट्टियाँ काफी उपजाऊ है। इनमें पोटाश तत्व काफी होता है। नाइट्रोजन व फासफेटधारी उर्वरक डालने पर इनसे अच्छी उपज ली जा सकती है। यहाँ पर मौसमी और बीजू आलू खूब पैदा होते हैं। मिट्टी आमतौर पर अम्लीय है।

पहाड़ी क्षेत्र : इस क्षेत्र में महासू, चम्बा और सिरमूर जिलों का बहुत सा भाग है जिसकी समुद्रतल से ऊँचाई 7000 फुट से लेकर 10,000 फुट तक है। ये प्रदेश अधिकतर जंगलों से ढका है। कहीं-कहीं कुछ भागों में आलू व मौसमी होती हैं। यहाँ पर चरागाह बहुत हैं जिनमें गड़रिये गर्मी में खूब भेड़ें चराते हैं।

अन्य पहाड़ी क्षेत्रों की अपेक्षा यहाँ की मिट्टी अधिक गहरी नहीं है। यहाँ की मिट्टी तलछटी दोमट से लेकर भुरभुरी तक है। जल का बहाव तेज और अच्छा है। यहाँ की मिट्टी हल्की से मध्य अम्लीय है।

शुष्क पर्वतीय क्षेत्र : इसमें महासू जिले की चिनि और चम्बा जिले की पंगी तहसील है। वर्षा नहीं के बराबर होती है। इसीलिए इसे शुष्क पर्वतीय क्षेत्र कहते हैं। यह क्षेत्र सूखे मेवों की खेती के लिए उपयुक्त है।

11. फसलें और कृषि क्रियाएँ

हिमाचल प्रदेश के कुल क्षेत्रफल के 35 प्रतिशत भाग में जंगल है। राज्य की 25 प्रतिशत आय इन जंगलों से ही होती है और इनसे 5 लाख मनुष्यों की जीविका चलती है तथा बीस लाख पशुओं को भोजन मिलता है। हर साल औसतन 34 लाख घनफुट लकड़ी भी इन वनों से निकलती है। इन जंगलों से होकर सतलज, व्यास, रावी, चेनाव और जमुना जैसी बड़ी बड़ी नदियाँ बहती हैं।

वनस्पतियाँ

बाहरी चम्बा की हिमालय क्षेत्र की वनस्पतियाँ शिमला की पहाड़ियों की वनस्पतियों से मिलती जुलती हैं। परन्तु चम्बा के अधिक भाग में दूसरी ओर रावी की *तलहटी और कांगड़ा की घाटी के बीच पहाड़ी जलस्रोतों के क्षेत्र में कुछ उष्ण कटि*-बन्धीय क्षेत्र जैसी वनस्पतियाँ होती हैं। यहाँ यूरोपीय प्रजातियों के पेड़ पौधे कम हैं और देशज अधिक हैं जैसे कैन्डलस्टिक यूफारबिया जिसे गलती से केक्टस भी कहते हैं, बड़े तर की बेल, (बहुनियाँ बेलें) अमलतास या इंडियन लेबर्नम, (केसिया फिस्चुला)। बहुत सी कटीली अकेशिया जैसे आमला, फीलियन्थस, एम्लीका, फाइकस, बाँस, बेर और विचित्र प्रकार की बेल आदि भी हैं। तीन हजार फुट से ऊँचे स्थानों पर चीड़ (पाइनस लोंगीफोलियाँ) के जंगल जड़ी बूटियों के साथ पाये जाते हैं। कई स्थानों पर जंगली जैतून (ओलिया कस्पीडाटा) भी मिलता है और कई तरह के गुलाब की बेलें और बैंगनी रंग के फूल वाले पौधे दिखाई पड़ते हैं। 6,000 फुट की ऊँचाई पर चीड़ के वृक्षों के बजाय बलूत के साथ रोडोडेन, पाइरिस, इंडीगोफैरा (नील का वृक्ष) डैस्मोनियम आदि के वृक्ष मिलते हैं। डलहौजी के पास कालाटोप में घने जंगल हैं और समशीतोष्ण जलवायुवाली सभी वनस्पतियाँ पायी जाती हैं। यहाँ पर पश्चिमोत्तर हिमालय जैसे चीड़ के जंगल, फराश, शाहबूलत और उनके साथ साथ फूलदार चेस्टन, मेपिल, हौलिज केल्टिस, यूनीयस और अखरोट इत्यादि के पेड़-पौधे भी मिलते हैं। इसके अलावा गुलाब, स्टेपली हनीसकिल, स्पीराइज, मीडो रोज, एरिसेमस, बालसम और अंगूर की बेल (विटिज व हाइड्रेंजियाँ) इत्यादि काफी दिखाई पड़ते हैं। 6,000 से 10,000 तक की ऊँचाई वाले क्षेत्रों में पंगी की घाटी और चन्द्रभागा तक की तलहटी व खजियार के आस पास देवदार के घने जंगल हैं। चम्बा से लाहौल तक पिनस एक्सिल्सा, पेंसिल देवदार जूनी पर आदिवंशों के पेड़ ही कहीं कहीं

नजर आते हैं। रावी के ऊपरी भाग में और चेनाब की घाटी में बट और एश के बहुत पेड़ हैं और काश्मीर की सीमा के पास पंगी की घाटी में हौथार्न, पाइनस, गिर्गडियाना (चिलगोजा) और गूजबैरी के पेड़ बहुतायत से पाये जाते हैं। बिलर या बिचहेजाल (पेरोशिया जैकमोंचियेना) भी इस घाटी की एक विशेष किस्म है।

7,000 फुट से ऊपर के समस्त चम्बा क्षेत्र में पश्चिमी एशिया या मध्य यूरोपीय देशों की वनस्पति से मिलते जुलते छोटे जड़ी बूटियों के पेड़ पौधे हैं। कभी-कभी तो इनकी प्रजाति लगभग समान होती है। परन्तु चेनाब की घाटी के शुष्क भाग में मध्य साइबेरिया और तिब्बती ढंग के पेड़ हैं।

चम्बा की दक्षिणी-पश्चिमी सीमा से लेकर पंजाब के कांगड़ा और गुरदासपुर जिले तक चीड़ के घने जंगल हैं जो मिलेजुले और कहीं अकेले ही घने जंगलों के रूप में नजर आते हैं और रावी नदी के किनारे भी 5,000 फुट की ऊँचाई के क्षेत्रों में सिपुल चीड़ के जंगल मिलते हैं। डलहौजी के पास 7,000 फुट की ऊँचाई तक देवदार के पेड़ों के साथ बलूत और ब्रस रोडाडेंड्रन आरबोरियम के पेड़ भी पाये जाते हैं। निचला पहाड़ी क्षेत्र तून, तली, बेर, सिरम, सिम्बल, बोर, पीपल, ढाक, अमलताम और करील के पेड़ों से ढका हुआ है। ढाक, अमलतास और करील के फूल बड़े सुन्दर होते हैं।

रावी और सियुल नदियों की घाटियों में 6 हजार से 12 हजार फुट की ऊँचाई तक इमारती लकड़ी के पेड़ जैसे देवदार, तूम (स्प्रस) और राई या सिल्वरफर इत्यादि के वृक्ष पाये जाते हैं। इन जंगलों में देवदार के साथ मिलते जुलते (केल ब्लू पाइन) के पेड़ भी पाये जाते हैं। ब्रह्मौर पहुँचने पर इनकी एक विशेष किस्म नजर आती है। कहीं तो देवदार कुदरती और कहीं अपने वंश के वृक्षों के साथ दिखाई पड़ता है। 7,000 से 10,000 फुट की ऊँचाई पर केवल सिल्वर फर ही दिखाई देता है। इनमें देवदार के पेड़ थोड़े हैं और जो भी हैं वे पहाड़ियों के किनारे खड़े हैं ओर बीच बीच में फर के पेड़ उगे हुए हैं। इन जंगलों में कुदरती देवदार कम हैं और कहीं कहीं ऊँचे स्थानों पर कराव बलूत के भी जंगल हैं। गर्मियों में इन जंगलों में पशु चरते हैं और पहाड़ों की रक्षा भी होती है। इसके साथ साथ ये जल के तेज बहाव को भी कम करते हैं।

इस क्षेत्र के जंगलों में तीन प्रकार के शाहबूलत पाये जाते हैं—बान, मोहरू और किराव। बान, 7 हजार फुट की ऊँचाई पर; मोहरू, 7 हजार से ऊपर और करीब 12 हजार फुट की ऊँचाई पर पाये जाते हैं। 12 हजार से 13 हजार फुट की ऊँचाई पर बुज या बर्च छोटी दूब दिखाई पड़ती है।

पंगी की घाटी में चंद्रभागा नदी के किनारे-किनारे 7,000 फुट की ऊँचाई तक घने जंगल पाये जाते हैं। दूरस्थ, अगम्य और मानसून न पहुँचने के कारण यहाँ चम्बा की अपेक्षा कम वर्षा होती है इसलिए यहाँ जंगल और वनस्पतियाँ भी भिन्न-भिन्न प्रकार की मिलती हैं। इन जंगलों में फर की अपेक्षा देवदार और ब्लूपाइन के पेड़ बहुतायत

म हैं किन्तु ये उतने ऊँचे और बड़े नहीं हैं जितने कि चम्बा क्षेत्र में हैं। फर देवदार और ब्लूपाइन यहाँ कुदरती ही बहुतायत से उगते हैं। धारवास के आस पास चिलगोजा बहुत उगता है।

शिमला के जंगल अपने सौंदर्य, अमूल्य सम्पत्ति और सैलानियों की रुचि की दृष्टि से बहुत उपयोगी हैं। यहाँ देवदार के पेड़ सात हजार फुट की ऊँचाई से साढ़े आठ हजार फुट की ऊँचाई तक खूब पाये जाते हैं। इस क्षेत्र के सबसे अच्छे देवदार, बुशहर, तारहोक और जुब्बल में देखे जा सकते हैं। यहाँ का बहुत सा भाग बलसन और कुमारसेन के साथ-साथ सारा क्षेत्र जंगलों से भरा पड़ा है तथा हिमालयी स्प्रस के पेड़ों की बहुतायत है। देवदार से भी ऊँचे स्थानों पर राऊ फलता फूलता है। इस प्रकार कहीं-कहीं ऊँचाइयों पर पंडराऊ भी होता है जिससे लकड़ी अपेक्षाकृत अधिक निकलती है।

बलूत की एक अच्छी किस्म खारसू पाइन जंगलों के ऊपरी भाग में खूब मिलती है। मोहरू नामक पत्ती नीची जगहों पर उगती है और इसकी पत्तियाँ चारे के काम आती हैं। हर तीसरे साल पत्तियाँ काट ली जाती हैं। खारसू और मोहरू में फल भी लगते हैं जो कभी-कभी खाने के काम में आते हैं। बान की लकड़ी से कोयला बनता है तथा इससे मजबूत तख्ते और कोल्हू के बेलन भी बनाये जाते हैं। यहाँ अखरोट भी बहुत होता है और रोडाडेंड्रन की भी कई किस्में मिलती हैं। निचले पहाड़ों में बाँस बहुत पाया जाता है। यहाँ शीशम, साल, पीपल और सांभर के भी पेड़ दिखाई देते हैं।

हिमाचल प्रदेश की मालगुजारी के पुराने आंकड़ों को देखने से पता चलता है कि यहाँ कुल 23.13 लाख एकड़ धरती पर ही खेती होती है। यह सारे राज्य के भौगोलिक क्षेत्रफल का एक तिहाई भाग है। शेष दो तिहाई भाग में ऊँची-ऊँची पहाड़ियाँ और घने जंगल हैं। शेष क्षेत्र का अभी तक पूरी तरह सर्वेक्षण भी नहीं किया जा सका है। राज्य की कुल भूमि को अभिलिखित क्षेत्रों के आधार पर इस प्रकार वर्गीकृत किया जा सकता है :

अभिलिखित क्षेत्र	क्षेत्रफल एकड़ों में
जंगलात	3,99,601
बेकार पड़ी गैर-खेतिहर भूमि	69,387
खेती योग्य बेकार पड़ी भूमि	90,870
स्थायी चरागाह	8,57,887
परती भूमि	39,634
बाहरी परती भूमि	17,386
बोया जाने वाला कुल क्षेत्र	6,78,663
विविध	71,518
कुल क्षेत्रफल	23,12,648

इस राज्य के कुल भौगोलिक क्षेत्रफल का 9.6 प्रतिशत अर्थात 6.79 लाख एकड़ यानी 25 प्रतिशत ही कृषि योग्य है। इस प्रकार कृषि आबादी के हिसाब से एक व्यक्ति के हिस्से में आधा एकड़ धरती आती है। यहाँ खेत छोटे-छोटे हैं और खेती से उपज भी बहुत कम होती है। पहाड़ी ढलान, घाटी या अन्य उपयुक्त स्थानों पर जहाँ भी संभव हो सकता है, खेती की जाती है। जहाँ जैसा स्थान होता है वहाँ उसी प्रकार के खेत बना लिये जाते हैं—कभी खेत सीधे और समतल और कभी बेडौल भी बनाये जाते हैं। ये पट्टीदार या सीढ़ीदार होते हैं। यहाँ मुख्यतया तीन प्रकार की भूमि पायी जाती है। (1) रुआ या समतल सिंचित भूमि (2) बाखल असिंचित, सीढ़ीदार और ढालू भूमि (3) बंजर, ऊँची पहाड़ियों में साधारण रूप से सींची गयी भूमि जिस पर केवल घास या जई (कोदो) इत्यादि ही उगती है।

यहाँ की मिट्टी को भी किसानों ने 6 भागों में वर्गीकृत कर रखा है : (1) कियार-भरपूर सिंचित भूमि, (2) संजियार—बरसात में इकट्ठी होने वाले पानी से सींची गई भूमि, (3) बाखल या कराली—ये मिट्टियाँ या भूमि बस्तियों के आस-पास पायी जाती हैं। इसमें खूब खाद देकर एक साल में दो फसलें ली जाती हैं। और कभी-कभी दो साल में तीन फसलें ली जाती हैं, (4) बाखल कियार—ये भूमि चश्मों से सींची जाती है या दूसरे खेतों से बहकर आये हुए पानी से स्वतः सिंच जाती है, (5) बाखल बारानी—ये भूमि मकानों से दूर है। इसमें खाद कम पड़ता है। इसमें साल में केवल एक अच्छी फसल गेहूँ या मक्का की होती है, और (6) कुलथरनी—यह वह भूमि है जिसमें कुलथा (फ्लीकस यूनीफ्लोरस) जैसी घटिया फसल हर साल या एक साल छोड़कर होती है।

भूमि का यह विभाजन नियमित बन्दोबस्त के काम में आता है। पहले तीन भागों को कियार–अव्वल, दोयम और सोयम कहते हैं तथा पिछले तीनों भागों को बारानी–अव्वल, दोयम और सोयम कहते हैं।

जैसे-जैसे हम मैदान से ऊँचाई की ओर बढ़ते हैं हमें खेती की भिन्न-भिन्न दशाएँ मिलती हैं। मामूली ऊँचाई से 10 हजार फुट की ऊँचाई तक के भिन्न-भिन्न भागों में तरह-तरह की खेती होती है। चिनि तहसील में तो वर्षा की भिन्न स्थिति और बहुत ऊँचाई के कारण खेती की दशाएँ बिल्कुल ही भिन्न हैं। बोने और काटने का समय भी खेतों की ऊँचाई की स्थिति के अनुसार भिन्न है। बसंत की फसलें मध्य सितम्बर से मध्य दिसम्बर तक बोई जाती हैं और जुलाई के प्रारम्भ तक काट ली जाती हैं। खरीफ की फसलें मार्च से मध्य जुलाई तक बोई जाती हैं और सितम्बर से नवम्बर के अन्त तक काट ली जाती हैं। चिनि तहसील के ठंढे भाग में जहाँ बर्फ अधिक समय तक गिरती रहती है, केवल एक ही फसल होती है। यानी रबी और खरीफ की फसलें एक साथ ही बोई और काटी जाती हैं। इनकी बोआई सितम्बर से अक्तूबर तक और कटाई अगस्त से सितम्बर तक की जाती है।

प्रमुख फसलें

रबी की फसल में मुख्यतया गेहूँ, जौ, मटर, पोस्त, धनियाँ और दालें होती हैं।

गेहूँ : यह यहाँ की मुख्य खाद्य फसल है। यह निचले और मध्यवर्ती पहाड़ी क्षेत्रों में बोया जाता है। अधिक ऊँचाई वाले भागों में यह सितम्बर में बोया जाता है किन्तु निचले पहाड़ी क्षेत्रों में गेहूँ की खेती का ढंग बिल्कुल मैदानी या पंजाब जैसा ही है। यहाँ गेहूँ की बोआई खरीफ की फसल कटने के बाद ही प्रारम्भ होती है और खेत में 2–3 बार जुताई करके बीज को बखेरकर बो दिया जाता है।

यहाँ गेहूँ की फसल अधिकतर वर्षा पर निर्भर है क्योंकि यहाँ सिंचाई के साधनों की बहुत कमी है। निचले मैदानों में सितम्बर में बोई जाने वाली फसल मध्य अप्रैल से मध्य मई तक काट ली जाती है तथा ऊँचे क्षेत्रों में यह मई से जुलाई तक कटती है। यहाँ गेहूँ की उपज एक एकड़ में लगभग 8–10 मन तक होती है जो मैदानों की उपज को देखते हुए काफी कम है।

जौ : यह भी गेहूँ की तरह ही बोया जाता है लेकिन यह गेहूँ से एक महीने पहले पक जाता है। यह ज्यादातर बाखल भूमि में बोया जाता है।

पोस्त : यह सितम्बर से आधे नवम्बर तक बोया जाता है और निचले क्षेत्रों में अप्रैल में और ऊँचे क्षेत्रों में मई में पक जाता है।

चला, कलाओ (जंगली मटर) : ये नवम्बर में बोई जाती है और मई-जून में काट ली जाती है।

धनिया : यह पोस्त के साथ-साथ ही बोया और काटा जाता है।

मसूर : इसे अक्तूबर में बोते हैं और मई-जून में काट लेते हैं।

खरीफ की फसलें

खरीफ की फसलों में मक्का, धान, चना, ईख, आलू, ज्वार, मोटे अनाज, भाँग इत्यादि आते हैं।

मक्का : मक्का राज्य भर में काफी होती है। यह मानसून की पहली वर्षा के साथ बोई जाती है। रबी की फसल लेने के बाद इसके लिए खेत तैयार किए जाते हैं। कहीं बिखेर कर बीज बोया जाता है तो कहीं हल से लाइनों में। आमतौर पर बरसात में मिट्टी चढ़ाई जाती है। सितम्बर के अन्त या नवम्बर के शुरू में कटाई होती है।

धान : मक्का की बजाय सिंचित और बारानी दोनों प्रकार के क्षेत्रों में बोया जाता है। बारानी क्षेत्रों में धान जून में बखेर कर बोया जाता है तथा सिंचित क्षेत्रों में जुलाई में रोपाई की जाती है। बारानी खेतों में धान सितम्बर या अक्तूबर में और सिंचाई-क्षेत्र में धान अक्तूबर से नवम्बर तक काट लिया जाता है। इस राज्य में चावल चार तरह का होता है—(1) बासमती (सफेद), (2) भिझनी (लाल),

(3) रेड़ी (लाल), और (4) छुहारु। पहली तीन किस्में सिंचित तथा खाद दी गयी भूमि में होती है। छुहारु बाखल धरती में होता है पर इसकी उपज कम होती है।

चना : चना बिलासपुर जिले में या हिमाचल प्रदेश के कुछ निचले भागों में पैदा होता है।

गन्ना : गन्ना मैदानों के पास ही घाटियों में होता है जैसे पावटा की घाटी, सिरमूर जिले के कुछ हिस्सों और मण्डी जिले के सुन्दर नगर इत्यादि में। यह फरवरी से मार्च तक बोया जाता है और नवम्बर से फरवरी तक काट लिया जाता है।

आलू : आलू इस राज्य की मुख्य फसल है। इस राज्य की अर्थ-व्यवस्था में आलू का महत्त्वपूर्ण स्थान है और देश भर का 20 प्रतिशत आलू का बीज केवल हिमाचल प्रदेश में पैदा होता है। यहाँ का आलू विदेशों में भी जाता है। हिमाचल प्रदेश में पैदा होने वाले कुल बीजू आलू का 70 प्रतिशत बीज आलू महासू में पैदा होता है। इस राज्य को प्रति वर्ष 4,50,000 मन आलू के निर्यात से 67.5 लाख रुपये की आमदनी होती है।

यहाँ एक साल में आलू की दो फसलें होती हैं। किन्तु ज्यादातर आलू गर्मियों में ही पैदा किया जाता है। क्योंकि कुल आलू उत्पादक क्षेत्र के 98 प्रतिशत भाग में आलू की गर्मी की फसल ही होती है, इसकी बोआई विभिन्न क्षेत्रों में ऊँचाई और जलवायु के अनुसार जनवरी से अप्रैल तक होती है। निचले भागों में आलू जनवरी से फरवरी तक बोया जाता है जबकि ऊँचे भागों में बोआई मार्च से अप्रैल तक की जाती है। ज्यादातर फसल आधे सितम्बर से नवम्बर के अंत तक काट ली जाती है।

सरकारी फार्मों पर तो आलू की पैदावार 100 मन प्रति एकड़ के हिसाब से होती है। किन्तु राज्य की औसत उपज 45 मन प्रति एकड़ है जबकि भारत में आलू उत्पादन का औसत 109 मन प्रति एकड़ है। बेल्जियम में आलू की पैदावार 224 मन प्रति एकड़ है। हिमाचल प्रदेश में कम उपज होने का कारण खराब बीज, कम उपजाऊ धरती और खाद की कमी इत्यादि है।

चीना : (पैनीकम मिलिसीन्थिम)—चीना मोटे अनाज की एक किस्म है जिसे जुलाई में बोकर सितम्बर में काट लिया जाता है। ये चावल की तरह पका कर खाई जाती है।

कंगनी : ये भी मोटे अनाज की एक किस्म है। इसे मई में बोकर सितम्बर में काटते हैं। यह चावल की तरह पका कर खाई जाती है। इसकी रोटियाँ नहीं बन सकतीं।

बाथू : (अमरंथम)—यह कंगनी बोने के समय पर ही बोया जाता है परन्तु कटता कुछ बाद में है। बाथू की दो किस्में हैं लाल व सफेद। किन्तु दोनों का दाना सफेद ही होता है। इसकी रोटियाँ बनती हैं तथा इसकी हरी पत्तियाँ भी हरे चारे के रूप में काम आती हैं। यह बाखल और कराली दोनों प्रकार की मिट्टियों में बोया जाता है।

कोंदा : यह भी एक प्रकार का मोटा अनाज है। इसे अप्रैल से जून तक बोकर अक्तूबर में काटते हैं। इसकी चपातियाँ बनती है जिन्हें कदरोली कहते हैं तथा इसका दलिया (लफी) भी बनता है।

माश : (फॉसिलस रेडिएटस)—यह जुलाई के महीने में इकसार धरती में बोया जाता है व अक्तूबर में काट लिया जाता है। यह अधिक ऊँची जगह पर नहीं पैदा होता। इससे कई प्रकार के भोजन बनते हैं।

कुलथ : (ढौलीकौस यूनीफ्लोरस)—यह भी दाल की एक किस्म है। यह आमतौर पर बाखल धरती में निचले गाँवों में पैदा होती है। इसे जुलाई में बोकर अक्तूबर के अन्त में काटते हैं।

भरथ : (कजनौस बाइकौलोर)—यह भी दाल की एक किस्म है जो बाथू के साथ साथ बोई व काटी जाती है। इसे दाल की तरह खाते हैं। कभी-कभी इसकी चपाती या "भरथौली" भी बना ली जाती है।

रंगन : (डौलिकौस सिनेंसिस)—यह भी एक दाल है जो आमतौर पर पोस्त के खेत में ही बोई जाती है। इसे जून-जुलाई में बोकर सितम्बर-अक्तूबर में काटते हैं।

अदरक : हिमाचल प्रदेश रोगरोधी अदरक के बीज उगाने के लिए मशहूर राज्य है। किन्तु एक एकड़ की औसतन पैदावार काफी कम है।

भाँग : (कनाबिस साटिवा)—ये मकानों के आस पास घूरों पर स्वत: ही उग जाती है और कभी-कभी बोई भी जाती है। इसे हरी ही काट कर छत पर सुखा देते हैं और बंडलों में बाँध लेते हैं। जाड़ों में इसे खोलकर रस्से बँट लिए जाते हैं व पत्तियों को हाथ से मलकर चिलम में पीते हैं।

फल : सेब, नाशपाती, आड़ू, लोकाट, खूबानी और बेर हिमाचल प्रदेश में पैदा होने वाले मुख्य फल हैं। ये अधिकतर कोटगढ़, कोटकी, शिमला के आस-पास के क्षेत्र में, अरकी, सोलन, रामपुर और महासू जिले के बुशहर में होते हैं। नीबू वंश के फल उप-पर्वतीय क्षेत्र सिरमूर और मण्डी जिले में होते हैं।

आजकल सेब और सन्तरों की खेती के विकास पर विशेष ध्यान दिया जा रहा है। परन्तु यातायात और परिवहन की सुविधाओं की कमी के कारण फलों की पैदावार बढ़ाने में कठिनाइयाँ आ रही है। उपरोक्त कारण से ही बेर, आड़ू, चैरी, खूबानी, लोकाट और नाशपाती इत्यादि जल्दी बिगड़ने वाले फलों की पैदावार नहीं बढ़ सकती है। इन फलों की पैदावार अधिकतर शिमला, सोलन, मण्डी और चम्बा के आस-पास होती है।

12. खेतिहर जातियां

हिमाचल प्रदेश के ज्यादातर लोग किसान ही हैं। इस राज्य के 86 प्रतिशत लोग गाँवों में बसते हैं और इनमें से 93 प्रतिशत खेती पर निर्भर करते हैं। यहाँ के किसानों के पास कम जमीन है । उनके पास औसतन 3.6 एकड़ के खेत होते हैं। कुल किसानों में से 90 प्रतिशत किसानों के पास 10 एकड़ से कम के खेत हैं और कुल क्षेत्रफल का 80 प्रतिशत है। ज्यादातर किसानों के पास अपने ही खेत हैं। दूसरे की धरती जोतने वाले मुश्किल से एक प्रतिशत हैं। राज्य के सबसे घने बसे हुए जिले महासू में 94 प्रतिशत लोग अपनी भूमि को स्वयं जोतते हैं, 4 प्रतिशत दूसरों की धरती जोतने वाले काश्तकार हैं। एक प्रतिशत कृषि मजदूर और 0.5 प्रतिशत लगान वसूल करने वाले भूस्वामी हैं।

हिमाचल प्रदेश में खेती ही ज्यादातर लोगों की जीविका का साधन है। फिर भी इससे किसान आसानी से गुजारा नहीं कर पाता। 1950 में किये गये एक सर्वेक्षण से पता चलता है कि 48 प्रतिशत किसान परिवार के लोग चाहे वे भूस्वामी हों या काश्तकार सभी खेती के अलावा कोई और सहायक धंधा करते हैं ताकि उनका गुजारा चल सके। यहाँ पर लोगों को कृषि-मजदूरी न मिलने के कारण ज्यादातर भेड़ बकरी पालन और जंगलों में लकड़ी काटने, दूध और सब्जी बेचने आदि का काम करना पड़ता है।

यहाँ पर सक्रिय रूप से काम करने वालों में 57 प्रतिशत पुरुष, 41 प्रतिशत औरतें और 2 प्रतिशत बच्चे हैं। खेती का काम मर्द और औरतें दोनों ही समान रूप से करते हैं। इतना ही नहीं औरतों को मर्दों से भी ज्यादा मजदूरी मिलती है। आदमी की प्रतिदिन की मजदूरी की दर दस आने से लेकर पौने दो रुपये तक है जब कि औरतों की मजदूरी की दर सवा रुपये से लेकर एक रुपया अस्सी नए पैसे तक है।

हिमाचल प्रदेश की मुख्य किसान जातियाँ—राजपूत, ब्राह्मण, कनैत, कोली और राठी हैं जिनका संक्षिप्त वर्णन आगे दिये जा रहा है :

राजपूत : राजपूतों के मुख्य वंश गुलेरिया, मनहस, जम्वाल, महला, लोहाखरिया, पटियार, तोन्दोला, रावत और निरियाल हैं। ये भूतपूर्व राजाओं के वंशज हैं।

राजपूतों के दो तबके हैं। एक ऊँचे और दूसरे नीचे। ऊँचे राजपूत हल नहीं जोतते। उनका खेती का काम या तो नौकर करते हैं या वे किसानों से बटाई पर

हिमाचल प्रदेश की नारी की वेशभूषा वहां की
संस्कृति का प्रतीक है; कोटगढ़ की इस युवती
के सिर का रूमाल इसकी विशेषता है

हिमाचल प्रदेश के युवक और युवतियाँ
जिनकी भुजाएँ रात-दिन पहाड़ों से लड़ती हैं

खेती कराते हैं। नीचे तबके के राजपूत खेतों में काम करते हैं और हलबाहू कहलाते हैं। परन्तु वर्तमान युग के आर्थिक संघर्ष के कारण बहुत सारे राजपूत जमींदार अब खुद भी खेती करने लगे हैं।

राजपूत लोग सच्चे मायनों में किसान नहीं हैं और वे खेती में अधिक दिलचस्पी नहीं लेते हैं। इनमें से बहुत से लोग बड़े फिज़ूलखर्च हैं और ऋण से दबे हुए हैं। वे अपने रिवाजों के बड़े कट्टर और पाबंद है। अन्य व्यवसायों की तुलना में वे नौकरी को ज्यादा अच्छा समझते हैं।

ब्राह्मण : इस राज्य में रहने वाले ब्राह्मणों को तीन भागों में बाँटा जा सकता है : (1) वे ब्राह्मण हैं जो राजपूत राजाओं के साथ मैदानों से पहाड़ों पर आये। ये शुद्ध गौड़ ब्राह्मण हैं और यहाँ के मुख्य पुरोहित वर्ग में हैं। वे खेती नहीं करते और हल को हाथ भी नहीं लगाते। वे ज्यादातर व्यापार और नौकरी करते हैं, (2) *सारस्वत और कान्यकुब्ज हैं। ये यहाँ के असली ब्राह्मणों की संतान* हैं। अब ये गौड़ ब्राह्मणों से हिलमिल गये हैं। ये खेतिहर ब्राह्मणों की कन्याओं से भी शादी ब्याह कर लेते हैं। ये गौड़ ब्राह्मणों की अपेक्षा बड़े सीधे-सादे और शान्तिप्रिय हैं। ये जाति-नियमों के भी पक्के और कट्टर नहीं हैं। ये अन्य हिन्दू जातियों के साथ भी हुक्का पानी रखते हैं और खत्री, बनिये, शूद्र और कायस्थ के यहाँ की रोटी भी खा लेते हैं। यहाँ तक कि ये लोग गोश्त से भी परहेज नहीं करते जबकि गौड़ ब्राह्मण गोश्त से सख्त परहेज करते हैं, और (3) ब्राह्मण खेतिहर हैं जिनको दोनों श्रेणियों के ब्राह्मण हेय दृष्टि से देखते हैं। ये भी अन्य जातियों के मुकाबले खेती में ज्यादा कुशल नहीं हैं। खेती के अलावा पुजारी या पुरोहिताई करके ये अपनी आमदनी करते हैं।

कनैत : कनैत इस राज्य की कृषक जाति है। ये यहाँ के कबीलों में अपना मुख्य स्थान रखते हैं। इनके विकास के बारे में कई विचार धाराएँ हैं। कोई कहता है कि ये उन आर्यों की सन्तान हैं जो हिन्दूकुश की दूसरी ओर से हिमालय के ऊपर के भागों में आये। कुछ कहते हैं कि वे उन राजपूत ठाकुरों की सन्तान हैं जो हिमालय में पहले से आकर बस गये थे।

यह भी कहा जाता है कि ये मैदान से आये हुए राजपूतों और पहाड़ी स्त्रियों की संकर-सन्तान हैं। पर आमतौर पर यह माना जाता है कि ये पहले राजपूत थे और उन्होंने अपने मृतक भाइयों की स्त्रियों से शादी करके पुरानी परम्पराओं को तोड़ दिया और तब से ये कुनीत कहलाये। इस पर उन्हें अन्य राजपूतों ने अपनी जाति से अलग कर दिया। तब से इन्होंने 'कनैत' नाम से अलग कबीला बना लिया।

कनैतों के दो भेद हैं : खसिया और राहु। परन्तु यह भेद अब कम होता जा रहा है। कनैतों की लगभग 80 उपजातियाँ बताई जाती हैं। इनमें से मुख्य नुनहाल, सलवानी, चमियाल, बालौल, वाराहलु, मलोही, कंदरिम, स्वाल आदि मुख्य हैं। इनके ये

नाम कुछ तो कबीलों के सरदारों पर हैं और कुछ उन स्थानों के नाम पर पड़े हैं जहाँ से ये आये हैं।

कनैत होशियार और समझदार किसान हैं। हल जोतने के अतिरिक्त खेती का सभी काम इनकी औरतें करती हैं। औरतें बड़ी मेहनती और हँसमुख होती हैं। कनैत बड़े ईमानदार, शान्तिप्रिय और नियमों के पालन करने वाले लोग हैं।

कोली : *यह यहाँ एक छोटी किस्म की जाति समझी जाती है।* अनेक कहते हैं कि इनका विकास बिहार या मध्य भारत के कोलों से हुआ है। इनमें से अनेक दूसरों की भूमि को जोतते हैं। किन्तु यह मानना पड़ेगा कि ये राजपूत और कनैतों से अधिक मेहनती हैं। यह भी कहा जाता है कि 'दा' शब्द जो कोलियों में पानी के लिए प्रयोग होता है वही शब्द शिमला की पहाड़ी के बहुत से भागों में भी पानी के लिए प्रयोग किया जाता है। ये जबलपुर से इलाहाबाद तक फैले हैं। इनकी भाषा और रीति रिवाज और शब्द एक से हैं। कोलियों की उपजाति में मुख्य डुमना, कुम्हार, गूजर, लुहार, बोहरा, ठाकुर और नाई हैं। बहुत से बोहरा वर्ग के लोग व्यापारी, क्लर्क व साहूकारी का काम भी करते हैं। इस जाति ने अपनी बौद्धिक क्षमता और तीव्र बुद्धि के कारण राज्य में अपना अच्छा स्थान बना लिया है। इसी कारण ये लोग अन्य उपजातियों की अपेक्षा समृद्ध और सम्मानपूर्ण जीवन बिताते हैं। उनके यहाँ विधवा विवाह तो नहीं होता, परन्तु बट्टा-सट्टा या विनिमय का रिवाज जरूर चलता है।

राठी : बिलासपुर में पाये जाने वाले राठी राजपूत और कनैत स्त्रियों की सन्तान हैं। ये अपनी लड़कियों को नीचे दर्जे के राजपूतों में ब्याह देते हैं। इनकी उपजाति मैहरानी, बरोती, बेन्दरी, धूली, भरोल, लोटरी, राज़नाल, घड़ियाल, सिन, बशहारी, एकथनियाँ, खड़ियाल और टिनियाँ इत्यादि हैं।

भोजन : मक्का यहाँ के किसानों का मुख्य भोजन है। इसकी चपाती बनती है और इसे दाल, सब्जी और दूध के साथ भी खाया जाता है। यहाँ के लोग गेहूँ और जौ का आटा भी खाते हैं। चिनाई नामक अनाज को चावलों की तरह पका कर खाते हैं। पंगी क्षेत्र में लोग जौ, गेहूँ (कूटू) और चिनाई खाते हैं। स्वेल को भूनकर सत्तू भी बनाया जाता है। जौ का सत्तू भी बहुत अच्छा बनता है। जौ, राई और फुलन के आटे की रोटी पकाते हैं। यहाँ गेहूँ की रोटी को अधिक नहीं खाते। रोटियों के अलावा घी या तेल से पूड़ी या पराठे भी बनाये जाते हैं। गोश्त केवल जाड़ों के दिनों में खाया जाता है क्योंकि साधारण तौर पर ये बहुत महँगा मिलता है। साग, दाल और आलू आमतौर पर यहाँ के सभी लोग खाते हैं।

जमींदार लोग दिन में तीन बार भोजन करते हैं। ये लोग सवेरे नुहारी, दोपहर को रसोई या दोपई (सिल) व शाम को ब्याली (रात की रोटी) करते हैं। सुबह के कलेवे में रोटी, दोपहर के खाने में दाल, भात और रोटी तथा शाम के भोजन में साग, चावल, रोटी आदि खाते हैं। सम्पन्न लोग चावल, गेहूँ, मैदा, बासमती चावल

व गोश्त इत्यादि खाते हैं जबकि गरीब लोग मक्का, जौ, कोदों, चावल अथवा गेहूँ भी खाते हैं। चाय सभी वर्ग के लोग पीते हैं और इसका कोई विशेष समय भी नहीं होता।

वेशभूषा : आदमी और औरतों की पोशाक प्रदेश के भिन्न-भिन्न भागों में भिन्न-भिन्न प्रकार की हैं। रोड़ू तहसील और पबर घाटी के लोग कोट, चपकन (फ्राक) पायजामा, अंगरखा, गाछी और टोपी इत्यादि पहनते हैं। औरतें चपकन, पगती (गाउन), डोरा (तहमद), पायजामा, धातू या सिर पर बाँधने का चौखूंटा कपड़ा इत्यादि इस्तेमाल करती हैं। यहाँ के स्त्री पुरुष सेल्टी (बकरी के बालों का बँटा हुआ रस्सा) कमर पर बाँधते हैं। रामपुर तहसील में लोग चोपटा या चपकन, पायजामा, गाछी, टोपी या साफा, दुपट्टा, चादर, कोट, जाकट, कुर्ता इत्यादि पहनते हैं और औरतें पगती, चोपटा, गाछी, धातू, विस्बाई इत्यादि पहनती हैं। चिनि तहसील में लोग छूबा, गोल काली टोपी, गाछी, पायजामा, कोट, कुर्ता, बास्कट, और चादर (कम्बल) पहनते हैं। यहाँ की औरतें डोरू, चोली, गाछी, टोपू (टोपी), पट्टू (कम्बल) इत्यादि इस्तेमाल करती हैं।

ये सब कपड़े भूरे या खाकी रंग के पट्टू के बनते हैं। कनवाड़ में मर्द और औरतें सफेद पोशाक पहनते हैं जो गहरी भूरी टोपी के साथ बहुत अच्छा फबती हैं। तिब्बत के सीमावर्ती इलाकों के लोग अपने वस्त्र गहरे लाल या भूरे रंग के कपड़े के बनवाते हैं। आदमियों की टोपी चीनी ढंग से पलटी हुई रहती है। इन लोगों के जूतों का ऊपरी भाग कपड़े का और तला चमड़े का बना होता है। तिब्बत के निकटवर्ती क्षेत्रों के लोग कपड़े के जूते पहनते हैं।

चम्बा के लोग घुटनों तक का चोगा या अंगरखी, कमरबन्द, चुस्त पायजामा पहनते हैं और इनके सिर पर पगड़ी होती है तथा औरतें ज्यादातर लहँगा, जाकट और चोगा पहनती हैं। लहँगा कई घूम वाला होता है जिसे पेशवाज भी कहते हैं। यहाँ पेशवाज 100 गज की लम्बाई तक की तैयार होती है। 30-40 गज तक की पेशवाज तो आमतौर पर पहनी जाती है। पेशवाजें ज्यादातर खास-खास मौकों पर या घर से बाहर कहीं उत्सवों में जाते वक्त पहनी जाती हैं। रोजाना पेशवाज नहीं पहनते बल्कि पहिरावन इस्तेमाल करते हैं तथा शरीर के ऊपरी हिस्से पर चादर या दुपट्टा ओढ़ते हैं। यह ऊनी या सूती किसी भी कपड़े का हो सकता है। पायजामे को यहाँ सूथन कहते हैं।

आभूषण : चम्बा के लोग गले में कण्ठा, हाथ में कंगन, कलाई पर वौंहटा, उँगलियों में छल्ला या अँगूठी, कान में मुर्की या बाला और गले में माला या हार पहनते हैं। औरतें अपनी-अपनी सामर्थ्य के अनुसार उत्सवों पर काफी जेवर पहनती हैं जैसे बाली, झूमकी, कानों में फरलु, सिर पर चौंक, मस्तक पर बिडली, नाक में बालू, बुलाक, चुटकी, लटकन, गले में माला या चम्पाकली, सीने पर सम्बी, हाथों में कंगन गोखरू, पहुँची, चूड़ा, इत्यादि और बाहों पर बाजू बन्द, अँगूठे में आरसी, अँगुलियों में छल्ला, पैरों में पछेली, फुल्लू और कड़ी इत्यादि।

शिमला की पहाड़ियों में औरतें एक पीतल का पीचक पहनती हैं। इसके अलावा बहुत सी औरतें चाँदी या जस्त के जेवरात भी पहनती हैं। आदमी भी पुराने ढँग से आग जलाने के लिए चकमक पत्थर पीतल में जड़वा कर गले में लटकाए रखते हैं। इसके अलावा ये चाकू, भुजाली, और चिलम भी अपनी पेटी में साथ रखते हैं। इनकी चिलम (पाइप) लोहे की होती है और अमीरों के पाइप में अन्दर चाँदी जड़ी रहती हैं। यहाँ के मर्द व औरतें दोनों फूलों के बड़े शौकीन हैं। ये फूलों को अपनी टोपी में लगाए रहते हैं और देखने में बड़े अच्छे लगते हैं।

13.

ग्राम संगठन

हिमाचल प्रदेश का अधिकांश भाग पहाड़ी होने के कारण यहाँ की ज्यादातर भूमि खेती के अयोग्य है। कहीं घने जंगल हैं तो कहीं सीधे ढाल जिन पर खेती करना बिलकुल ही असम्भव है। बहुत सी जगह मिट्टी उपजाऊ नहीं है। जहाँ कहीं थोड़ी बहुत भूमि उपजाऊ है वहीं पर गाँव बसे हुए हैं और लोग खेती करके अपने परिवारों का निर्वाह करते हैं। कहीं कहीं तो एक खेत में अकेला ही मकान खड़ा दिखाई देता है और वहाँ दूसरे मकान के लिए जगह तक भी नहीं है। गाँव अधिकतर कम मकानों के दिखाई पड़ते हैं। ढाल और अनुपजाऊ क्षेत्रों की अपेक्षा तलहटी के बसे हुए गाँव कुछ बड़े हैं।

ज्यादातर गाँव खेतों के बीच में बसे हुए हैं। समतल भूमि पर बने हुए मकान लगभग एकसी ऊँचाई के होते हैं, परन्तु ढालों पर के मकान ऊँचे नीचे बने होते हैं। ऊँचे पहाड़ों पर गाँव बसाते समय यह ध्यान रखा जाता है कि कहीं कोई चट्टान वगैरह टूट कर न गिर जाए।

मकान अधिकतर वर्गाकार या आयताकार बने होते हैं। उनके दरवाजे अधिकतर पूर्व या पश्चिम की ओर होते हैं ताकि उगते या छिपते सूर्य का नजारा देखा जा सके।

शिमला की पहाड़ियों के निचले भाग में मामूली जमींदार का घर एक मंजिला, लिपापुता और छतदार होता है। परन्तु बुशहर में एक तरह के मकान नहीं पाये जाते। सतलज की घाटी और रामपुर के आसपास मकानों पर स्लेटों की छतें होती हैं जैसे कि शिमला के मकानों में। मकान ज्यादा से ज्यादा तीन मंजिल तक ऊँचे होते हैं। नीचे के भाग में पशु बाँधे जाते हैं बीच की मंजिल (फड़) में स्टोर व सोने का कमरा होता है। इन मकानों की छतें ढालू और टेढ़ी होती हैं। कनवाड़ में अधिकतर दुमंजिले मकान होते हैं और छतें चपटी होती हैं।

यहाँ ज्यादातर लोग बकरी की खाल की चटाई बिछाकर जमीन पर सोते हैं। बहुत सी जगह मिट्टी के बर्तन न मिलने के कारण लकड़ी के बर्तन ही इस्तेमाल किये जाते हैं।

चम्बा के मकान कुछ और ही तरह के होते हैं। चूहड़ा क्षेत्र मे एक या दो मंजिलें चपटी छत वाले मकान होते हैं जिन्हें सारन कहते हैं।

सद्र के इलाके में भी भिन्न प्रकार के मकान होते हैं। उत्तर के इलाके में चपटी छत के और दक्षिण में ढालू या मोड़दार छत के मकान पाये जाते हैं। भरमौर में मकान दो या तीन मंजिल के और बंगलों की तरह के होते हैं। इनके आगे बरामदा होता है। पहली मंजिल में पशु बँधते हैं और ऊपर की मंजिल में घर वाले रहते हैं। गर्मियों में पशु चरागाहों में चले जाते हैं और नीचे की मंजिल खाली पड़ी रहती है, जहाँ एक मंजिल के मकान होते हैं वहाँ घर वाले और पशु बीच में लकड़ी का पार्टीशन लगाकर एक साथ ही रहते हैं। पंगी में ज्यादातर मकान दुमंजिले होते हैं जिनकी छतें चपटी होती हैं। गर्मियों में यहाँ के लोग ऊपर की मंजिल में सोते हैं क्योंकि इन दिनों पशु चरने के लिए चरागाहों में भेज दिये जाते हैं। किन्तु जाड़ों में जानवर रहने के कमरों में ही बाँध दिये जाते हैं और बीच में लकड़ी का पार्टीशन लगा दिया जाता है।

भट्टियात में जमींदार लोग एकमंजिले कोठे में या दुमंजिले ढलाऊ मकानों (भोड़दार) में रहते हैं। इन मकानों की छत स्लेट, लकड़ी या रबर से पटी रहती है। सम्पन्न लोग जानवरों के लिए अलग बाड़ा बनवा लेते हैं लेकिन गरीब लोग एक ही घर में पार्टीशन लगाकर पशुओं को बाँधते हैं। बहुत से आदमी पशुओं को पहली मंजिल में रखते हैं और स्वयं दूसरी में रहते हैं। अधिकतर मकानों का दरवाजा सड़क की तरफ खुलता है। भोड़दार मकानों में एक आँगन और एक बरामदा होता है और सड़क की ओर भी कुछ जगह छूटी रहती है लेकिन कोठे की छतें एक दूसरे से बिलकुल सटी रहती हैं। बहुत से लोग छतें गली के लिए जगह छोड़कर ही बनाते हैं। निचान या सीलदार जगह में मकान नहीं बनाये जाते बल्कि मकानों के लिए अच्छी जगह तलाश की जाती है। मकान पंडित से मुहूर्त सुझवा कर ही बनाया जाता है। मकान की लम्बाई चौड़ाई भी पंडित ही तय करता है। लेकिन यहाँ के मकान काफी साफ सुथरे होते हैं। इनकी दीवार पत्थरों की तथा छत सलेटी पत्थर की बनी होती है। कहीं कहीं मामूली झोंपड़े ही बने होते हैं।

चम्बा के दूसरे भागों में मकान काफी मजबूत बनाये जाते हैं यद्यपि वे बहुत खूबसूरत नहीं होते हैं। दीवारें एक लकड़ी के साँचे में चूना व रोड़ी भर कर खड़ी की जाती हैं और बड़ी सफाई से उन पर प्लास्टर चढ़ा दिया जाता है। चपटी छतें ज्यादातर लकड़ी की पट्टियों की होती हैं जिन पर चूने, गारा या चीड़ की पत्तियाँ पाट दी जाती हैं। बहुत सी जगह छतें खपरैलों की भी पायी जाती हैं। परन्तु जहाँ स्लेटें मिलती है वहाँ स्लेटें ही छतों की जगह काम में आती हैं। मकानों में दरवाजा प्रायः एक ही होता है। खिड़की नहीं होती, इसलिए मकान में अन्दर अंधेरा रहता है। पशुओं को घर के एक कोने में बाँध दिया जाता है और दूसरी ओर वे खुद रहते हैं। दरअसल ये लोग पशुओं से उकताते नहीं हैं बल्कि स्वयं दिनभर घर से बाहर काम पर लगे रहते हैं या बाहर के बरामदे में रह लेते हैं। उन्हें केवल रात में अन्दर रहना पड़ता है। बहुत से मकानों में बरामदा होता है जिससे काफी आराम मिलता है। छत या सारन पर सीढ़ी से पहुँचते हैं। गर्मियों में तो ज्यादातर रसोई का धुँआ

परम्परागत आभूषणों से विभूषित
शिमला की ये पर्वतीय नारियाँ
स्वस्थ और प्रसन्न मुद्रा में

अपनी परम्परागत पोशाक में चम्बा
का यह दम्पत्ति अपनी ही कल्प-
नाओं में खोया सा जान पड़ता है

हिमाचल प्रदेश की नारियाँ अपने खाली
समय का सदुपयोग ऊन कातकर करती हैं

एक सुराख से निकलता रहता है। सुराख बरसात में पानी व वर्फ से बचाव के लिए पत्थर से ढक दिया जाता है। मकान की दीवालों में शहद की मक्खी के छत्ते लगे रहते हैं। छत्ते एक लकड़ी के लट्ठे में होते हैं जो अन्दर से पोला होता है। यह लट्ठा दो दीवारों के बीच में फिट कर दिया जाता है। लट्ठे के बाहर की तरफ निकलते हुए भाग के एक कोने में सुराख होता है जिसमें से होकर मक्खियाँ आती हैं तथा अन्दर की ओर का सुराख मिट्टी से बन्द कर दिया जाता है और शहद निकालना होता है तभी उसे खोलते हैं।

गहरे ढलान होने के कारण भरमौर तहसील में सीढ़ीदार खेत पाये जाते हैं। हर गाँव में मकान बिलकुल पास बने होते हैं। जब एक गाँव में दो या ज्यादा जातियों के लोग रहते हैं तो वे अपना अपना गाँव अलग बना लेते हैं। गाँव में एक मन्दिर होता और आस पास कई चश्मे भी होते हैं। जहाँ चश्मे का पानी नहीं होता वहाँ गाँव वाले तालाब खोद लेते हैं।

14.

सांस्कृतिक जीवन

हिमाचल प्रदेश के लोग भी धर्म, परम्परा और सांस्कृतिक धारणाओं के सूत्र में बँधे हुए हैं। यद्यपि यहाँ हिन्दू धर्म के अनुयायी हैं फिर भी वे अनेक देवी देवताओं की पूजा करते हैं। हर राज्य में देवी देवताओं के लगभग 1,300 मन्दिर हैं। हर गाँव में अलग देवता है। इस देवता से ये वर्षा, अच्छी फसल और धन-धान्य की कामना करते हैं। यद्यपि तिब्बत के सीमावर्ती क्षेत्र चिनि और पंगी इत्यादि के निवासी बुद्ध धर्म को मानते हैं किन्तु वे विशुद्ध रूप से बौद्ध नहीं हैं और उनकी बहुत सी परम्पराएँ हिन्दुओं जैसी हैं। इसलिए हम यह कह सकते हैं कि यहाँ हिन्दू धर्म का ही बोलबाला है और ये लोग हिन्दू धर्म की रीति-रिवाज और विश्वासों के अनुयायी हैं।

इस प्रदेश की लोक मान्यताएँ, दंतकथाएँ और लोक साहित्य अपना विशेष स्थान रखती हैं। अगम्य प्रदेश होने के कारण ही यहाँ का लोक जीवन और परम्पराएँ युग युगों से अक्षुण्ण बनी हुई हैं। इन सब का प्रभाव आज तक भी यहाँ के लोगों पर पाया जाता है जो यहाँ के सामाजिक जीवन को सुचारु और संगठित बनाए हुए हैं। ऐसा मधुर सामाजिक जीवन हमें आज की भौतिक दुनिया में कहीं भी नहीं मिल सकता।

हिमाचल प्रदेश में देवी देवताओं के बारे में अनेक प्रकार की कहानियाँ प्रचलित हैं। चम्बा से 74 मील दूर मिण्डाल गाँव में एक ही बैल से खेत जोता जाता है। इस परम्परा का सम्बन्ध मिण्डाल वाली देवी के विषय में प्रचलित एक लोक कथा से है। कहते हैं कि बहुत दिन पहले मिण्डाल देवी के मन्दिर के स्थान पर एक विधवा का घर था जिसमें वह अपने सातों लड़कों सहित रहा करती थी। एक दिन जब उस के लड़के हल चला रहे थे और विधवा रोटी बना रही थी तो अचानक चूल्हे की मिट्टी से एक काले रंग का पत्थर निकला। उसने उसे खोदकर निकालना चाहा किन्तु वह न निकला। अन्त में उसे मालूम हुआ कि यह पत्थर नहीं देवता प्रकटा है। यह जानकर विधवा ने अपने लड़कों को यह बात बताई। बच्चों ने कहा कि हम इस देवी को तब समझें जब यह हमें एक बैल से हल जोतने दे। यह कहना ही था कि वह विधवा और उसके सातों लड़के स्वयं पत्थर बन गये और तभी से यहाँ एक बैल से हल जोतने की परम्परा चल पड़ी और लोग इस देवी की पूजा करने लगे। भादों के महीने में साल में एक बार इस देवी के मन्दिर पर मेला लगता है जिसे यात्रा कहते हैं। सैकड़ों भेड़ बकरियों की बलि भी देवी पर चढ़ाई जाती है।

हिमाचल प्रदेश में शिव, देवी और नाग देवता की अधिक पूजा होती है और सारे राज्य में इनकी मूर्तियाँ पायी जाती हैं। यहाँ तक कि पंगी और लाहौल में भी इनकी मूर्तियाँ मिली हैं। नाग और देवी की पूजा पशुधन, मनुष्य और सम्पत्ति की रक्षा के लिए की जाती है। ठाकुर और शिव की पूजा सुबह-शाम होती है। देवी की पूजा मंगलवार को और नाग की पूजा शनिवार को होती है। यहाँ विष्णु की पूजा कम होती है किन्तु फिर भी कुछ मन्दिर हैं। छोटी कांम वाले लोग भी बड़ी कौम वालों की तरह ही पूजा करते हैं। शिमला के चमार अधिकतर रामदासी सिक्ख हो गये हैं किन्तु मैदानों में आये हुए हरिजन (मेहता) बालाशाह और बाल्मीकि के अनुयायी हैं। यहाँ थोड़े से सिक्ख हैं जो मैदानी सिक्खों से अधिक भिन्न नहीं हैं। बौद्ध भी नाग और देवी की पूजा करते हैं। यहाँ मुसलमान पीरों को भी सभी लोग मानते हैं और जुमेरात को पीरों की पूजा होती है या जब कोई मुराद माँगनी होती है तब पीरों की पूजा की जाती है।

राम, कृष्ण के अलावा गणेश जी, हनुमान जी, और भैरव की भी पूजा होती है। गणेश की पूजा किसी काम को शुरू करने के पूर्व माघ की चौथ को की जाती है। गणेश को संकटनाशक देवता ही मानते हैं। औरतें गणेश जी को ज्यादा मानती हैं। हनुमान की पूजा भगवान राम के साथ होती है। हनुमान जी या महावीर जी की मूर्ति लाल मुँह वाली और बन्दर जैसी पूँछ वाली होती है। उनकी पूजा सभी जाति के लोग करते हैं। विशेषकर ये पहलवानों के भी देवता माने जाते हैं। हनुमान का मन्दिर अक्सर नये बनने वाले कुएँ के पास स्थापित किया जाता है जिससे कोई दुर्घटना न हो सके और कुएँ का पानी मीठा निकले।

शिवजी के साथ पार्वती का पूजन भी होता है। इनके नाम हैं—दुर्गा, काली, गौरी, आसुरी, कालका, भवानी, अष्टभुजी। हिन्दु शास्त्रों के अनुसार 9 करोड़ दुर्गाएँ हैं और प्रत्येक के अलग-अलग नाम हैं। जैसे महादेवी, महारानी, देवी, चंडी, दुर्गा, इत्यादि। चैत्र और असौज के कृष्ण पक्ष के नौ दिन तक देवी की पूजा होती है जिसे नवरात्रि या नो दुर्गा कहते हैं। नवरात्रि में लोग दुर्गाष्टमी के दिन व्रत रखते हैं और पूजन करते हैं।

इन दिनों ज्योति जलाकर नौ दिन तक ब्राह्मण पाठ करते हैं। कुँवारी कन्याओं को चावल और मिठाई खिलाते हैं। दस वर्ष की आयु तक की कन्याएँ मानी जाती हैं और उन्हीं की भेंट पूजा की जाती है।

हिमाचल प्रदेश की नागनियों के मन्दिर नागों के मन्दिरों से कम हैं। इन मंदिरों की ये मूर्तियाँ मनुष्य की आकृति पर लिपटे हुए सांप जैसी होती हैं और मूर्ति के सिर पर सांप का फन बना रहता है। मन्दिरों की दीवारों पर भी पत्थर या लोहे के सांप बने हुए हैं। मूर्ति के साथ-साथ त्रिशूल, धूप, दीपदान और लोहे की जंजीर भी मंदिर में रहती हैं जिनसे साधक या चेला अपनी ताड़ना करता है।

कहते हैं कि नाग पानी का देवता है। बहुत सी पहाड़ियों में लोगों का विश्वास है कि चश्मों और कुओं पर नागों का प्रभाव है और ठंढे चश्मे का नाम भी नाग है।

लोगों का विश्वास यह भी है कि नाग मन्दिर के निकट चश्मा जरूर मिलेगा। नाग देवता को वर्षा करने के लिए और सूखे के समय वृष्टि के लिए बड़ी तत्परता से पूजते हैं।

मुंडलीक जाति के राजपूतों का वीर देवता गुग्गा चौहान है। यह वृन्दावन के निकट गढ़ डाडेरा में हिन्दुओं के अन्तिम सम्राट पृथ्वीराज के समय में रहता था। गुग्गा ने मुसलमानों से अनेक लड़ाइयाँ लड़ीं और अन्तिम युद्ध में लड़ते-लड़ते इसका सिर धड़ से अलग हो गया किन्तु फिर भी वह बिना सिर के लगातार लड़ता रहा और अन्त में लड़ते-लड़ते धरती में समा गया। अब यहाँ केवल उसके भाले की नोक ही दिखाई पड़ती है। यही कारण है कि राजपूतों की इस जाति का नाम मुंडलीक पड़ गया है। मुंडलीक का तात्पर्य है—मुंड यानी सिर और लीक यानी चिह्न; अर्थात गुग्गा के सिर का चिह्न। पहाड़ी भाट मुंडलीक की कथाओं को खूब गाते हैं और इसकी चर्चा सुनकर श्रोतागण करुणा से रो पड़ते हैं। मुंडलीक की मृत्यु भादों बदी नवमी के दिन हुई थी। इसलिए यहाँ हर साल पूरे आठ दिन तक उसका श्राद्ध किया जाता है। यहाँ उसकी मूर्ति घोड़े पर सवार एक व्यक्ति के रूप में बनी हुई है जिसके साथ उस की बहन गूंगरी और वजीर कैल भी होती हैं। इनकी भी साथ में पूजा होती है। यह पूजा भी अन्य देवी देवताओं की भाँति की जाती है।

खेती सम्बन्धी विश्वास

खेती से सम्बन्धित भी बहुत से धार्मिक अन्धविश्वास और टोने टोटके हैं। रबी या खरीफ में हल ब्राह्मणों से पूछ कर जोता जाता है। बहुत सी जगह पहली फसल देवता को चढ़ायी जाती है। कहीं-कहीं फसल अच्छी होने पर बकरी की बलि भी दी जाती है। बहुत से लोग गेहूँ का आटा भी खेत के चारों कोनों में पूर देते हैं। यदि खेत में चिड़िया घोंसला बना ले तो चिड़ियों के घोंसला न छोड़ने तक फसल को नहीं काटते। यदि खेत में दोहरी बालियाँ उग आएँ तो उनके साथ बकरी की बलि देते हैं। बैसाख की संक्रान्ति को धूप निकलना और सावन या हार की संक्रान्ति को वर्षा होना बड़ा शुभ माना जाता है। पौष में बर्फ गिरना अशुभ माना जाता है। संक्रान्ति, अमावस, जन्माष्टमी, शिवरात्रि इत्यादि के दिन हल नहीं चलाया जाता है। यदि चैत और बैसाख की चौथ को वर्षा न हो तो इसे अकाल की निशानी समझा जाता है। यदि जेठ की दोज और अष्टमी तथा हार या सावन की नवमी को धूप न निकले या सावन भादों की अष्टमी को घनघोर वर्षा न हो तो इसे भी अपशकुन समझते हैं। इसके बाद खुला आकाश दिखाई देना भी अकाल का द्योतक माना जाता है और हजारों मन अनाज की फसल के नष्ट होने का अनुमान किया जाता है।

मंडी जिले की रिवालसर झील में सात तैरते द्वीपों के बारे में भी एक आकर्षक कहानी है जो बौद्ध ग्रंथों में पायी जाती है। कहते हैं कि बहुत दिन पहले झील के किनारे एक बौद्ध भिक्षु साधना किया करता था। उससे एक राजकुमारी रोजाना मिलने आया करती थी। किन्तु बौद्ध धर्म के विरोधी कुछ ब्राह्मणों ने एक दिन मौका

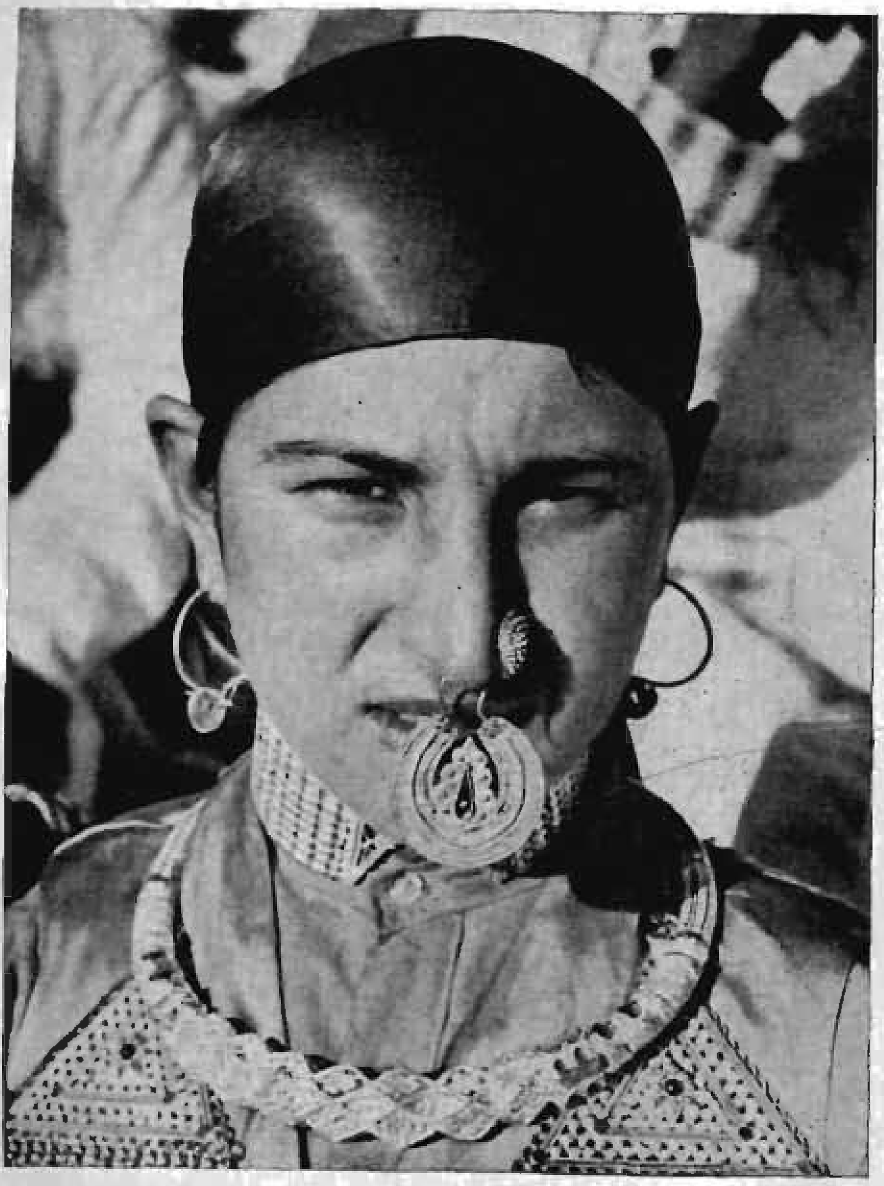

पर्वतराज की पुत्रियाँ आज भी सदियों से चले
आये आभूषणों से अपना शृंगार करती हैं

ताल में बंधे इन लोकनर्तकों के थिरकते पैर दर्शकों
के हृदयों में उल्लास की लहर पैदा कर देते हैं

ये नर-नारी लोक नृत्य के लिए तैयार खड़े हैं। इन
पहाड़ी प्रदेशों में मनोरंजन का एकमात्र यही साधन है

पा कर उसके पिता (वहाँ के राजा) से जा कर यह शिकायत कर दी कि बौद्ध भिक्षु राजकुमारी को प्रेम जाल में फाँस कर षडयंत्र कर रहा है। यह सुनकर राजा ने दोनों को कत्ल करवा दिया। बस उसी समय से झील में ये द्वीप प्रकट हो गए। बताते हैं कि ये आज उन दोनों की आत्माओं के प्रतीक के रूप में झील में तैर रहे हैं।

सिरमूर के इतिहास में भी इसी प्रकार की अनेक दंतकथाएँ मिलती हैं। कहते हैं कि एक बार राजा मदनसिंह के पास एक जादूगरनी आयी। उससे राजा मदनसिंह ने शर्त की कि यदि तुम गिरि नदी को एक रस्से से नटनी की तरह पार कर जाओगी तो मैं आधा राज्य दे दूंगा। जादूगरनी ने यह शर्त मंजूर कर ली और वह एक ओर से नदी को पार कर गयी लेकिन जब वह पार करके लौटने लगी तो राजा ने बीच में आज्ञा दे कर रस्सी को कटवा दिया। फलस्वरूप जादूगरनी नदी में डूबकर मर गयी। कहते हैं कि तभी से इस नदी में जादूगरनी के शाप के कारण बाढ़ आनी शुरू हो गयी और सारी नगरी के अलावा राजा का भी समस्त परिवार नष्ट हो गया। सिरमूरी ताल पर स्थित एक कटे हुए पत्थर से भी इस कहानी का कुछ सम्बन्ध बताया जाता है।

मंडी में भूतनाथ यानी सृष्टि के देवता भगवान शिव का प्रसिद्ध मन्दिर है। बताते हैं बहुत वर्ष पहले यहाँ गायें चरा करती थीं। एक गाय ने कई दिन तक दूध नहीं दिया। गोपालक को जब यह पता चला कि वह रोजाना एक पत्थर को दूध दे आती है तो उसने यह खबर फौरन राजा अबरसेन तक पहुँचाई। इधर राजा को स्वप्न दिखाई दिया और भगवान शिव ने उसे स्वप्न में पत्थर के नीचे खुदाई करवाने का आदेश दिया। खुदाई के बाद यहाँ भूतनाथ की प्रतिमा निकली और इसी स्थान पर मंडी नगर की नींव रखी गयी। यहाँ पर इस प्रकार की अनेक किंबदंतियाँ प्रचलित हैं।

मेले-तमाशे

हिमाचलवासी जीवन के कड़े संघर्ष को भुलाने के लिए संगीत, नृत्य और खेल तमाशों का खूब आयोजन करते हैं ताकि वे कठोर जीवन को हँसी-खुशी से बिता सकें। मेले-तमाशों में अच्छी पोशाकों का दर्शन, खरीददारी, नाच-गाने आदि का आयोजन भी किया जाता है और इसी अवसर पर सब लोग आपस में मिल-जुलकर हँस खेल लेते हैं और तरह-तरह की शौक की चीजें खरीदते हैं।

बसन्त ऋतु से लेकर गर्मी तक बहुत से मेलों का आयोजन किया जाता है। इनमें बाँसुरी के स्वर के साथ हिमाचली बालाएँ थिरक उठती हैं और हिम जीवन में संगीत की तानें गूँज उठती हैं। बहुत से मेले तो पुरानी किवदन्ती और परम्पराओं के आधार पर लगाए जाते हैं। इसके अलावा मेलों का धार्मिक महत्त्व भी बहुत अधिक है। धार्मिक मेलों में मुख्य त्रिलोकीनाथ का मेला है। 'चर' या 'कून' के मेले भी बसन्त ऋतु के आगमन की खुशी में लगाए जाते हैं। इस अवसर पर एक कलाकार कुलंजा राक्षस बनता है और दो कलाकार 'गामी' नामक पुरुष और मक्षमी

नामक स्त्री बनते हैं और चेहरे लगाकर इनका जलूस निकाला जाता है। गामी और मक्षमी दोनों इस राक्षस का पीछा करते हुए बाजार में निकलते हैं। इस लीला के जलूस को गाँव वाले बड़े चाव से देखते हैं। इस प्रकार गाँव वाले शीत जाने और बसंत आने की खुशी धूमधाम से मनाते हैं। साथ-साथ खेती की तैयारी भी कर लेते हैं और प्राकृतिक सौन्दर्य का पूरा सुख भोगते हैं।

पोरी भी यहाँ का एक मुख्य धार्मिक त्यौहार है। इस अवसर पर तिब्बत, लाहौल, लद्दाख और भारत के दूसरे स्थानों से यात्री जुलाई और अगस्त के महीनों में आकर एकत्रित होते हैं। पोरी के अवसर पर बुद्ध की मूर्ति के आगे दीपक जलाये जाते हैं और बौद्ध धर्म के ग्रन्थों का पाठ किया जाता है। बुद्ध की प्रतिमा के समक्ष भी एक बड़ी मोमबत्ती (जोत) जलाई जाती है जो समस्त शीतऋतु में जलती रहती है। इसी मौके पर लोग अपने पूर्वजों के स्मरण स्वरूप अपनी किसी प्रिय वस्तु को भेंट की तरह चढ़ाते हैं। बुद्ध के मन्दिर में अखंड ज्योति जलती रहती है। इस त्यौहार पर लामाओं के झुंड के झुंड गेरुए वस्त्र पहने हुए घूमते दिखाई पड़ते हैं।

मण्डी में लगने वाले मेलों में शिवरात्रि का मेला सबसे आकर्षक होता है। उत्तरी महासू में भी कुछ देवताओं के मन्दिरों में मेले लगाए जाते हैं। महासू के मेलों में दो मेले मुख्य हैं जिनमें नाच गाने के साथ तीरन्दाजी के करतबों का भी प्रदर्शन किया जाता है। ये करतब मनोरंजन के लिए दिखाए जाते हैं।

लोकसंगीत

हिमाचल प्रदेश के लोकगीत अपने माधुर्य और वर्णन के लिए विख्यात हैं। वास्तव में इनका राग तो पहाड़ी ही होता है किन्तु 'झँजोटी' पहाड़ी क्षेत्रों की आलाप के रूप में शुरू की जाने वाली धीमी मार्मिक संगीत ध्वनि है जो भारतीय शास्त्रीय संगीत से काफी मिलती जुलती है। यह बहुत लोकप्रिय है। इन गीतों के भाव धार्मिक होते हैं। कुछ गीतों में शिव, राम, स्थानीय देवताओं तथा राधा कृष्ण के प्रेम के गीत गाए जाते हैं। इन गीतों का विशेष भाव प्रेमियों का विछोह है। बहुत से लोकगीतों में शिमला के प्राकृतिक सौन्दर्य का वर्णन है जो शिमला की पहाड़ियों के आस-पास के युगल प्रेमियों के मानसिक सौन्दर्य को चित्रित करता है। शिमला आरम्भ से ही प्रेमियों के लिए चित्ताकर्षक केन्द्र रहा है। यहाँ की भेड़-बकरियाँ, चरागाह, चाँदनी रातें, स्वच्छ घास, ठंडा जल, झरनों का संगीत भी पहाड़ों की अनोखी देन है। अनेक गीतों में प्रकृति के प्रति इसका कृतज्ञता ज्ञापन किया गया है। गीतों में अधिकतर प्रकृति के दृश्यों का बाहुल्य है। इस प्रदेश के बहुत से लोकगीतों में चीड़ के पेड़ को प्रेमी का प्रतीक भी माना गया है।

लोकनृत्य

लोकसंगीत के साथ-साथ नृत्य भी हिमाचल प्रदेश की परम्परागत थाती है। लोकनृत्य स्थानीय समाज के उल्लास का मुक्त प्रदर्शन है। इसमें पहले से कोई

बनावट या तैयारी करने की जरूरत नहीं पड़ती। इन लोकनृत्यों के लिए विस्तृत मैदान और हरे भरे चरागाहों की पृष्ठभूमि ही मंच का काम देती है और नर्तक समूह के तान टप्पों के साथ-साथ दर्शकों का मन स्वतः ही नाच उठता है।

ये लोकनृत्य आमतौर पर फसल की बोआई या कटाई से पहले या पीछे मनाए जाने वाले त्यौहारों के अवसरों पर किए जाते हैं। लोकनृत्यों के माध्यम से देवी देवताओं की अर्चना भी की जाती है। लोकनृत्यों में एकाकी (सोलो) और समूह दोनों प्रकार के नृत्य प्रचलित हैं। तांडव नृत्यों में प्रेक्षणी मुद्रा विशेष उल्लेखनीय है। एकाकी मुद्रा नृत्य और नटरम्भा नृत्य सबसे अच्छा माना जाता है। यह नृत्य ताली, गीत और ढोल की ताल के साथ नाचा जाता है। एकाकी नाच की दो अन्य किस्में छारी और बांथरा हैं। नटी नाच मंच का प्रसिद्ध नृत्य है। यह विशाल सामूहिक नृत्य है जिसमें सैकड़ों लोग घेरा बनाकर और हाथ से हाथ बाँध कर नाचते रहते हैं। नाचने वालों में सबसे बूढ़ा मनुष्य अगुआ होता है किन्तु आजकल धनी मानी व्यक्ति को ही अगुआ बनाते हैं। नटी नाच गति भेद के अनुसार सात प्रकार का माना जाता है।

चीन द्वारा हमारी उत्तरी सीमा पर हमला करने के बाद हिमाचल प्रदेश का विशेष राष्ट्रीय महत्त्व हो गया है और इसको विकसित करने की ओर विशेष ध्यान दिया जा रहा है। इसी संदर्भ में अप्रैल 1963 में पर्वतीय क्षेत्रों की कृषि का विकास करने के लिये भारत के कृषि मन्त्री डा० रामसुभगसिंह द्वारा एक गोष्ठी आयोजित की गयी थी जिसमें हिमाचल प्रदेश की कृषि, बागवानी, और पशुपालन को विकसित करने पर विचार विमर्श किया गया था। यदि प्रदेश में यातायात के साधन सभी क्षेत्रों में उपलब्ध हो जायें, सारे प्रदेश में सड़कों का जाल बिछा दिया जाय और यहाँ के निवासियों को आवश्यक आर्थिक सहायता उपलब्ध हो जाय तो फलों की खेती, और पशुपालन के अतिरिक्त यहाँ की प्राकृतिक सम्पत्ति और वन सम्पदा का सदुपयोग करके इस प्रदेश को पूरी तरह खुशहाल बनाया जा सकता है।

3. जम्मू और कश्मीर

कश्मीर की नदियों, घाटियों, झीलों और वृक्षों की शालीनता में ऐसे सुलभ सौन्दर्य की झलक मिलती है जैसे कोई अलौकिक रूपवती नारी मानवीय वासनाओं से अछूते नैसर्गिक रूप में खड़ी हो। इस मनोहारी सौन्दर्य का दूसरा पहलू पर्वतों और खाइयों, हिमाच्छादित शिखरों व बर्फीले पहाड़ों, क्रूर और भयानक धाराओं के रूप में पुरुष जैसा कठोर है।...इस तरह कश्मीर के सैकड़ों रूप और अनगिनत पहलू हैं जो सदा बदलते रहते हैं। इनसे कभी मुस्कराहट की झांकी मिलती है तो कभी उदासी झलकती सी नजर आती है।

—जवाहरलाल नेहरू

15.

परिचय

जम्मू और कश्मीर राज्य 86,000 वर्ग मील के क्षेत्रफल में उत्तर की ओर 32° 17′ से लेकर 36°58′ और पूर्व में 73°26′ से 80°30′ अक्षांश तक फैला हुआ है। यह सिन्धु नदी के पूर्व और रावी के पश्चिम में स्थित है। पंजाब की सीमावर्ती थोड़ी सी समतल भूमि को छोड़कर कश्मीर आगे जाकर मंजिल दर मंजिल एक किले की तरह ऊँचा उठता चला गया है। जम्मू के आस-पास की निचली पहाड़ियों की तरह को छोड़कर, जहाँ छिब्र और डोंगरे रहते हैं, कश्मीर की घाटी पर पहुँचने के लिए पीर पंजाल की चोटी तक चढ़ना पड़ता है। कश्मीर राज्य उत्तर में एस्टर और बाल्टिस्तान तथा पूर्व में लद्दाख तक फैला हुआ है। उत्तर-पश्चिम में बहुत दूर चलने के बाद गिलगित का दर्रा है जो पूर्व की ओर जाने वाली ऊँची-ऊँची हिम दीवारों से घिरा हुआ है। ये पर्वतीय दीवारें हिन्दुकुश के किलिक दर्रे को पार करती हुई पामीर के पठार और चीन की सीमा तक चली गई हैं। पश्चिम की ओर ऊँचे-ऊँचे शक्तिशाली पहाड़ और बर्फ की नदियाँ हैं जो अफगानिस्तान की सीमाओं को छूती हैं।

जम्मू और कश्मीर की आबादी 4 करोड़ 40 लाख है जो 85,861 वर्ग मील के विशाल क्षेत्रफल में बसी हुई है। प्रत्येक वर्ग मील में औसतन 51 आदमी रहते हैं। जम्मू में आबादी घनी और उत्तरी पूर्वी सीमावर्ती इलाकों में आबादी कम है। 77 प्रतिशत मुसलमान और 3 प्रतिशत हिन्दू हैं जो ज्यादातर जम्मू में ही रहते हैं। बौद्ध लोग ज्यादातर लद्दाख के पूर्वी भाग में रहते हैं। सिक्ख और अन्य जातियाँ सारे राज्य में फैली हुई हैं।

यूरोपीय यात्रियों ने कश्मीर की प्रशंसा में बहुत कुछ लिखा है। सबसे पहले बर्नीयर ने कश्मीर को हिन्दुस्तान का स्वर्ग बताया है। फिर भी कश्मीर की प्राकृतिक छटा का सम्पूर्ण वर्णन कोई नहीं कर सका। अपनी धरती के बारे में स्वयं कश्मीरी कहते हैं कि कश्मीर मोतियों में गूँथे हुए पन्ने के समान है। कश्मीर सचमुच सुन्दर झील, झरने, सदाबहार वनस्पतियों और हिमाच्छादित पर्वतों का देश है।

भौगोलिक विवरण

कश्मीर को प्राकृतिक दृष्टि से दो भागों में वर्गीकृत किया जा सकता है—(1) दक्षिण-पश्चिमी भाग जिसमें झेलम, किशन गंगा और चेनाब बहती हैं, और (2) उत्तरी पूर्वी भाग जिसमें सिन्धु व उसकी सहायक नदियाँ बहती हैं।

दक्षिणी पश्चिमी भाग के भी तीन उपभाग किये जा सकते हैं:—

(1) बाह्य पर्वत श्रृङ्खला, (2) मध्यवर्तीय पहाड़, और (3) कश्मीर की घाटी।

इसी प्रकार उत्तरी पूर्वी क्षेत्र के प्रशासनिक दृष्टि से तीन भाग हैं: (1) लद्दाख या छोटा तिब्बत, (2) बाल्टिस्तान जिसे कश्मीरी में चेरा भोतुन कहते हैं, और (3) दर्दिस्तान। लाहौल की सीमा को छूती हुई नंगा पर्वत से दक्षिण पूर्व की ओर जाने वाली 240 मील लम्बी पहाड़ी इन दोनों क्षेत्रों की सीमा निर्धारित करती है।

5 से 15 मील तक चौड़ी समतल पट्टी, जो अनेक स्थानों पर कटी फटी और खड्डों वाली है, पंजाब और कश्मीर की सीमा निर्धारित करती है। यह रावी से लेकर झेलम तक फैली हुई है और अन्दर की ओर जाकर निचली पहाड़ियों और खण्डित मैदान में जाकर समाप्त हो जाती है। ये पहाड़ियाँ हिमालय श्रृंखला की सामान्य श्रेणी के समानान्तर हैं। यह 2,000 से लेकर 4,000 फुट तक की ऊँचाई की हैं और सभी रेतीली चट्टान हैं। ये शिवालिक की भूगर्मी कुल की ही पहाड़ियाँ हैं। इनमें अन्दर तक अनेक प्रकार की झाड़ियाँ और चीड़ के जंगल (पाइनस लौंगीफोलिया) आदि हैं। इनके बीच में सुन्दर या घनी बसी हुई घाटियाँ या वन हैं और ज्यों-ज्यों यहाँ से आगे बढ़ते हैं ऊँचे-ऊँचे पहाड़ आते जाते हैं।

मध्यवर्तीय पहाड़ियों का क्षेत्र कश्मीर घाटी की दक्षिणी सीमा बनाता है। इन पहाड़ियों को पंजाल की पहाड़ियाँ कहते हैं। ये पूर्व में चेनाब से भी आगे तक चली गई हैं। ये भाग 180 मील लम्बा और 25 से 35 मील तक चौड़ा है। यह क्षेत्र झेलम और चेनाब के बीच का पहाड़ी भाग है जो उत्तर में पंजाब की ऊँची पहाड़ियों तक फैला हुआ है और कश्मीर की उत्तरी सीमा बनाता है। पंजाल झेलम पर बसे मुजफ्फराबाद से चेनाब पर बसे किश्तवार तक पहाड़ी इलाका है, इस विशाल क्षेत्र की लम्बाई 80 मील है और यहाँ की चोटियाँ 14 हजार से 15 हजार फुट तक ऊँची हैं। हम ज्यों-ज्यों आगे चलते हैं कटी-फटी पहाड़ियों और तंग घाटियों वाला प्रदेश आता है।

यहाँ पर अच्छे फल-फूलों के उत्पादन का कारण यही है कि यहाँ की ऊँचाई अच्छी वनस्पति के उपयुक्त है। यहाँ के अधिकतर पहाड़ी ढालों पर बलूत, चीड़ और देवदार, सिल्वर फर इत्यादि के जंगल हैं। शेष भाग ऐसा है कि जहाँ तेज धूप के कारण अधिक वनस्पति नहीं है, फिर भी ये भाग दक्षिणी यूरोप में उगने वाले तरह-तरह के सुन्दर फलों से सरसब्ज हैं। चेनाब नदी के पूर्व को ओर भी कुछ पहाड़ियाँ हैं जिनसे भद्रवाह जिला बना है। इसकी ऊँचाई 9,000 से 14,000 फुट तक है। इन्हीं पहाड़ियों के बीच के चम्बा क्षेत्र में रावी और चेनाब जल स्रोत हैं।

तीसरे भाग में उत्तर पश्चिम का क्षेत्र है जो सम्पूर्ण हिमालय में अपना विशेष महत्त्व रहता है। इन पहाड़ों के बीचों-बीच एक लम्बी चौड़ी खुली हुई घाटी है। इसके पूर्व में मध्यवर्ती पहाड़ियाँ हैं जो सिंधु और झेलम के जल-निकास को अलग अलग करती हैं और दक्षिण में पंजाल की पहाड़ियाँ हैं। पूर्व की सीमा एक ऊँची पर्वत श्रृंखला से बनी है। ये पर्वत श्रेणियाँ दक्षिण के आस पास 75°-30′ अक्षांश पर जाकर शाखाओं

में बंट जाती है। इनमें 12 से 14 हजार फुट तक की ऊँचाई के विशाल पर्वत हैं। इन पहाड़ियों में ही झेलम और चेनाव के बीच का जल स्रोत है जो कश्मीर घाटी को वर्धवान की घाटी से अलग करता है। अंत में यह किश्तवार से 16 मील पश्चिम की ओर जाकर पंजाल की पहाड़ियों में लुप्त हो जाता है। उत्तर पश्चिम की ओर घाटी को सीमा बांधने वाली गगनचुम्बी पर्वत शृंखलाओं का वर्णन करना तो बहुत ही कठिन है। यहां से कुछ दूर पश्चिम में जोजीला के दर्रे की पहाड़ियां है। यहां से एक छोटी पर्वत श्रेणी और निकलती है जो पश्चिम की ओर 100 मील दूर तक चली जाती है और इसकी ऊँचाई 12 से 13 हजार फुट तक तथा चौड़ाई 15 से 20 मील तक है। यह दक्षिण में झेलम का और उत्तर में इसकी सहायक नदी किशनगंगा का उद्गम स्रोत बनाती है। इसमें बनी हुई घाटियों के पास की समतल भूमि की लम्बाई 115 मील और चौड़ाई 45 से 70 मील तक है। इनमें होकर झेलम व उसकी सहायक नदियां निकलती है। यहां की भूमि एक सी भूमि नहीं है क्योंकि मध्यवर्ती पहाड़ियों ने इसे ऊबड़-खाबड़ बना दिया है। ये मध्यवर्ती पहाड़ियां आगे फैलकर मैदान तक चली गई हैं जो सिंधु और लिद्दड़ की प्रसिद्ध घाटियां बनाती हैं। पंजाल श्रेणियों की शाखायें दक्षिण की ओर मैदान में 10 से 16 मील के क्षेत्र में फैल गई हैं।

इस प्रदेश के उत्तरी-पूर्वी भाग में एक ओर दक्षिण में मध्यवर्ती पहाड़ियां है और दूसरी ओर उत्तर में कराकोरम के पहाड़ है। इस भाग में सिन्धु और उसकी सहायक नदियां श्योक, ज़ंस्कर, सूरु और गिलगित बहती हैं। इस भाग के घाटी और मैदान बहुत ऊँचे ऊँचे हैं। गिलगित और सिन्धु नदी का संगम 4,300 फुट की ऊँचाई पर है। यहां से 80 मील पूर्व में श्योक और सिंधु के उद्गम की ऊँचाई 7,000 फुट है। यहां से 130 मील दूर लेह के पार इस नदी की ऊँचाई 10, 600 फुट हो जाती है। कश्मीर और तिब्बत की सीमा पर कोकजुंग जिले में पहुँच कर तो यह नदी 13, 800 फुट की ऊँचाई पर बहती है।

ऊँची ऊँची पहाड़ियों के बीच के भाग की ऊँचाई 16,000 फुट से लेकर 20,000 फुट तक है। दूसरी ओर कराकोरम की पर्वत शृंखला का समूह है जहां 28,265 फुट ऊँची चोटी गौडविन आस्टिन है। पूर्व और पश्चिम के बीच घाटियों की समुद्र तल से ऊँचाई के अन्तर के कारण यहाँ की वनस्पति तथा प्राकृतिक छटा में भी बड़ा अन्तर आ गया है। पूर्व में लद्दाख के रपशू जिले में सबसे नीचा मैदान समुद्रतल से 13,500 फुट की ऊँचाई पर है और पहाड़ियों की ऊँचाई तो 20,000 या 21,000 फीट तक चली गई है। परिणामस्वरूप यहाँ खुली और लम्बी घाटियाँ बन गई है और इनके चारों ओर छोटी-छोटी और निचली पहाड़ियां है।

पश्चिम की ओर ये घाटियां और अधिक गहरी होती चली गई हैं और इनके चारों ओर खड़े पहाड़ों की ऊंचाई भी काफी है। यहाँ से आगे इस प्रदेश की भौतिक दशा कुछ बदलने लगती है और ज्यों-ज्यों हम आगे चलते हैं हिमालय की गहरी खंदक और गहरी घाटियां बनाने वाली ऊँची और घनेरी पर्वत शृंखलाएँ आती जाती हैं।

पश्चिम में मध्यवर्ती पर्वत शृंखला सिंधु नदी के पास से आरम्भ होती है। यहाँ सबसे बड़ी चोटी नंगा पर्वत है। यहाँ से यह शृंखला दक्षिण पूर्व की ओर जाती है और सिंधु और किशनगंगा जल स्रोत बनाती है। वह यहाँ से 50-60 मील तक लगातार 14 से 15 हजार फुट तक की ऊँचाई से गिरकर बहती है। इसके बीच में बहुत से दर्रे पड़ते हैं जिनमें सबसे प्रसिद्ध बुरजिल का दर्रा है जो कश्मीर से गिलगित की ओर जाने वाली सड़क पर है। 11,300 फुट की ऊँचाई पर जोजीला दर्रा है जहाँ से श्रीनगर से लेह और दरास को सड़क जाती है। जोजीला से पहाड़ ऊँचे उठते चले गये हैं और उनकी ऊँचाई 18 से 20 हजार फुट तक चली गई है। यहां की सर्वोच्च चोटी नन कन की है जिसकी ऊँचाई 23,000 फुट है। ऊँचाई के कारण ये पहाड़ सदैव बर्फ से ढके रहते हैं और हर घाटी में बर्फ की नदियां बहती हैं। 150 मील तक ऐसा ही प्रदेश है। इसके बीच में स्पीति की ओर ले जाने वाला दर्रा बड़ालच्छा भी पड़ता है।

कराकोरम की पहाड़ियां बड़ी विचित्र हैं। एक प्रकार से ये हिन्दूकुश का ही एक भाग है। ये मध्य एशिया के बीच जल स्रोत बनाते हैं और यहां से इनका पानी हिन्द महासागर में जाता है। यहाँ से छोटी-छोटी पहाड़ियां कश्मीर तक फैली हुई हैं जो सिंधु व उसकी सहायक नदियों को अलग-अलग करती हैं। इन पहाड़ियों से 220 मील लंबा और स्रोत के दक्षिण की ओर 60 मील तक चौड़ा पहाड़ी प्रदेश बन गया है। इस प्रदेश की सबसे ऊँची ये चोटियां औसतन 21 से 23 हजार फुट तक ऊँचाई पर है। गिलगित के उत्तर में यहां की प्रसिद्ध चोटी राकापोशी है जिसकी ऊँचाई 25,500 फुट है कई चोटियों और बर्फीली नदी बाल्टोरो से घिरी गौडविन आस्टिन नामक विश्व की दूसरी सबसे ऊँची चोटी स्थित है। यहां पर घाटी से बर्फ की नदियां निकलती हैं। इनमें कई बड़ी नदियां हैं जैसे बाल्टोरो, वियाफो और हिस्पर आदि। अंतिम दो नदियों ने तो 50 मील तक लम्बा बर्फ का मैदान बना दिया है। ये पहाड़ हुंजा नदी के पार फट गए हैं। यह नदी गिलगित नदी की सहायक है। हुंजा नदी के स्रोत पर सबसे कम ऊँचाई 15,500 फुट की है। दूसरा मुख्य दर्रा 150 मील पूर्व में है। यह लेह से यारकन्द की ओर चला गया है। यहां से कारकोरम दर्रे में भी जा सकते है जिसकी ऊँचाई 18,300 फुट है।

यहां लिंगजी थांग के मैदान के बारे में बताना भी आवश्यक है। यह कश्मीर के उत्तरी पूर्वी सीमा पर है। भौगोलिक दृष्टि से मैदान तिब्बत के पठार से मिला हुआ है। इस मैदान का धरातल समुद्र तल से 16 से 17 हजार फुट तक की ऊँचाई पर है। यहाँ की वर्षा का पानी खारी झीलों में जाता है। यहाँ वनस्पति बिल्कुल नहीं है। इस क्षेत्र में केवल चट्टानें हैं। इसी के उत्तर में क्यूनलन पहाड़ और नीचे की ओर खोतान का मैदान है।

लद्दाख, बाल्टिस्तान और दर्दिस्तान

लद्दाख, बाल्टिस्तान और दर्दिस्तान की सीमाएँ 63,560 *वर्गमील* के क्षेत्र में फैली हुई है जो जम्मू और कश्मीर के कुल क्षेत्रफल का दुगना है। यहाँ की कुल आबादी सिर्फ 3 लाख है।

लद्दाख में बड़ा पहाड़ कराकोरम है। यह इस जिले की उत्तरी सीमा बनाता है। इसकी ऊँचाई 17 से 18 हजार फुट तक है। कराकोरम के दक्षिण में लद्दाख की पहाड़ियाँ हैं जिसकी सर्वोच्च चोटी मोंट ब्लांक की चोटी है जिसकी ऊँचाई 3,500 फुट से कुछ अधिक है।

इस पर्वत शृङ्खला के दक्षिण में जंस्कर की पहाड़ियाँ हैं जिन्हें सिन्धु ने अन्य पहाड़ियों से अलग कर दिया है। इन तीन पहाड़ों में सिन्धु और श्योक नामक दो घाटियाँ हैं जो लद्दाख का पठार बनाती है। इनमें छः तहसीलें रुकशुक, जंस्कर, नूबरा, लेह, दरास और कारगिल है।

लद्दाख कंकरीली, ग्रेनाइट धूल भरी चट्टानों और शुष्क ऊँची बर्फीली पहाड़ियों की धरती है। ये प्रदेश बंजर और बेकार पड़ा हुआ है। यहाँ 8 हजार फुट की ऊँचाई से कम की कोई जगह नहीं है। यहाँ ऊँचाई प्रायः 17 हजार से 21 हजार फुट तक के बीच में है। कोई-कोई चोटी तो 25 हजार फुट से भी अधिक ऊँची है। यहाँ वर्षा नहीं होती है और तापमान भी बड़ा अदलता-बदलता रहता है। वनस्पति चश्मों या नालों के आस-पास मिलती है। यहाँ की मुख्य उपज गेहूँ, जौ, जई (कोदो) मटर, सेम शलजम, और रिजका इत्यादि हैं। ग्रिम जौ की एक प्रजाति है जो यहाँ काफी पैदा होती है। यहाँ तक कि यह 14,000 फुट की ऊँचाई पर भी पैदा होती है गर्म क्षेत्रों में सेब और खूबानी भी खूब पैदा होती है।

बाल्टिस्तान और स्कार्दू सिन्धु नदी के दोनों ओर 150-150 मील को दूरी तक फैले हुए हैं। इसके उत्तर में कराकोरम है, पूर्व में लद्दाख, दक्षिण में हिमालय तथा पश्चिम में दर्दिस्तान है। इसके उपभाग—खरमांग, खपलू, शिगार, स्कार्दू और रोंडू है। यहाँ बहुत सी पहाड़ियाँ और घाटी हैं जिनमें बर्फ की नदियां बहती हैं यहाँ की प्रसिद्ध बर्फीली नदी बाल्टोरो है जो संसार की सबसे बड़ी बर्फ की नदी है।

बाल्टिस्तान की जलवायु कश्मीर जैसी ही है। यहाँ के फल बड़े मीठे हैं खासतौर से संतरा, तरबूज और खूबानी। यहाँ खेती योग्य धरती बहुत कम है। इसलिए हर साल यहाँ के लोग अधिकतर काम की तलाश में अन्यत्र चले जाते हैं।

दर्दिस्तान के उत्तर में कराकोरम पहाड़, हिन्दुकुश और पामीर का पठार है। इसके पूर्व में बाल्टिस्तान, पश्चिम में यागीस्तान और दक्षिण में कश्मीर की घाटी है। इसके उपभाग एस्टर, बूँजी, छिलास, गिलगित, हुंजा, नागर, पुनियाल, यासीन और चितराल हैं। यहाँ सिन्धु नदी 150 मील के क्षेत्र में उत्तरी-दक्षिणी पहाड़ों का पानी लेती हुई बहती है। यहाँ वर्षा बहुत हल्की होती है। इसके उत्तरी क्षेत्र में भी कश्मीर में पैदा होने वाले सभी फल पाये जाते हैं। हुन्जा व नागर में भी मीठे व स्वादिष्ट फल होते हैं। एस्टर से गिलगित तक का प्रदेश पंजाब की तरह गर्म है। गाँवों के आस-पास छोटे-छोटे खेत हैं किन्तु घास और इमारती लकड़ी यहाँ बहुत कम मिलती है।

16.

जलवायु

जम्मू कश्मीर में भिन्न-भिन्न ऊँचाइयों वाले क्षेत्र होने के कारण यहाँ की जलवायु एक सी नहीं है। एक ओर जम्मू की ऊँचाई 1,200 फुट है तो दूसरी ओर कश्मीर में 25,500 फुट तक की ऊँचाई की गगन-चुम्बी पहाड़ियाँ हैं। प्रत्येक स्थान की जलवायु पर वहाँ की स्थिति (घाटी या चोटी), हवाओं का रुख, तापमान, जलवाष्प का रूप परिवर्तन धरातल से विकिरण की गति और जमे बर्फ की गहराई और अवधि आदि अनेक बातों का प्रभाव पड़ता है। इन सब बातों का प्रभाव कश्मीर के विभिन्न स्थानों की जलवायु पर भी पड़ा है, जिसके कारण वहाँ भिन्न-भिन्न स्थानों पर अलग-अलग तरह की जलवायु पाई जाती है।

पहाड़ों से घिरी हुई घाटियों का तापमान बाहरी हिमालय के ऊँचे पहाड़ों के तापमान से काफी कम रहता है। ऊँची चोटियों पर जहाँ बर्फ ज्यादा पड़ती हैं, जाड़ा बहुत तेज पड़ता है। दरास और सोनमर्ग में तापमान हिमांक से अधिक नहीं बढ़ता।

दिन में यहाँ का औसत ताप जनवरी में सबसे कम और जून-जुलाई में सब से अधिक रहता है। श्रीनगर का जनवरी में औसत तापमान 33° फै० तक और सबसे अधिक गर्म महीने जुलाई में 74° फै० तक रहता है। न्यूनतम और अधिकतम ताप क्रमशः स्कार्दू दर्रे में 25° से 75° फै० तक, दरास में 3° से 65° फै० और लेह में 18° से 62° फै० तक रहता है। जाड़े के आखिर में मार्च-अप्रैल में तापमान शीघ्रता से बढ़ता है, और अक्टूबर में जब आसमान वर्षा के बाद साफ होता है ताप बहुत तेजी से कम होता जाता है। ये सब मौसम परिवर्तन के कारण होता है। न्यूनतम दैनिक तापमान गिलगित में 20° फै०, श्रीनगर में 22° फै०, दरास में 31 फै० और लेह में 25° फै० रहता है।

यहाँ जल वाष्प का वर्षा या वर्षा के रूप परिवर्तन का समय या तो दिसम्बर से अप्रैल तक और या जून से सितम्बर तक रहता है। अक्तूबर-नवम्बर में वर्षा कम होती है और नवम्बर में बिल्कुल नहीं होती। जाड़ों में फारस व बिलोचिस्तान से आने वाले बर्फीले तूफानों के कारण ही जलवाष्प वर्षा या बर्फ के रूप में बदलती जाती है। इससे तापमान बहुत गिर जाता है। इस कारण जम्मू कश्मीर में तेज हवाएँ चलती हैं और बर्फ गिरती है। सारा मौसम तूफानी बना रहता है। पीर पंजाल की चोटी पर तो सदैव ही बर्फ गिरती रहती है और जनवरी-फरवरी में सबसे अधिक ज्यादा बर्फ गिरती है।

जनवरी-फरवरी में घाटियों और उत्तर और पूर्व की चोटियों पर जलवाष्प का रूप परिवर्तन सबसे अधिक होता है तथा यहाँ स्थायी रूप से बर्फ जमी रहती है। किन्तु जैसे ही हम पूर्व में कराकोरम की पर्वत श्रृंखलाओं की ओर बढ़ते हैं सघनता घटती जाती है। जनवरी में श्रीनगर, दरास और अनन्तनाग में सबसे ज्यादा बर्फ गिरती है कराकोरम क्षेत्र में और तिब्बत के पठार पर हिमालय की बाहरी चोटियों मे भी शीत अधिक रहती है और यहाँ मार्च से मई तक बर्फ गिरती रहती है। सबसे अधिक बर्फ अप्रैल के महीने में गिरती है। जाड़ों के एक सामान्य मौसम में आमतौर पर औसतन 8 फुट बर्फ पड़ जाती है।

अप्रैल-मई में घाटी तथा आस-पास पहाड़ियों पर गर्ज के साथ छींटें पड़ते हैं। यह वर्षा किसानों के लिए बड़ी लाभदायक होती है। जून से नवम्बर तक पीर पंजाल की पर्वत श्रृंखलाओं में भारी वर्षा होती है और जुलाई, अगस्त व सितम्बर में जम्मू और पूंछ में पंजाब के उप-पर्वतीय क्षेत्रों के समकक्ष वर्षा होती है। वास्तव में घाटियों में 10 इंच से अधिक वर्षा नहीं होती जबकि पूंछ में 36 और डोमल में 27 इन्च तक पानी बरसता है। कश्मीर घाटी के पूर्वी सीमान्त पर जमी बर्फ के प्रथम तल से पूरब में बर्फ हल्की पड़ती है जबकि गिलगित, स्कर्दू, कारगिल और लेह में 2 इंच के लगभग बर्फ पड़ जाती है। जम्मू और किश्तवाड़ में दक्षिण-पश्चिमी मानसून काफी वर्षा करते हैं और लद्दाख, गिलगित और ऊँची चोटियों पर शीतकालीन बर्फ अधिक पड़ती है।

17.

मिट्टियां

कश्मीर उतना ही पुराना है जितनी पुरानी आर्य सभ्यता क्योंकि इस प्रदेश का यह नाम संस्कृत भाषा से प्राप्त हुआ है और कहते हैं कि महर्षि कश्यप ने इस प्रदेश को बसाया था। जहां आज कश्मीर स्थित है वहां आदिकाल में एक बहुत बड़ी झील थी। इसको ही कश्यप ऋषि ने सुखा कर कश्मीर प्रदेश में परिवर्तित किया। इस बात की पुष्टि डा० स्टीन अपनी प्रसिद्ध पुस्तक 'दी एशियेंट ज्योग्राफी आफ कश्मीर' (कश्मीर का प्राचीन भूगोल) में करते हैं और कल्हण द्वारा लिखित प्रसिद्ध पुस्तक 'कश्मीर के इतिहास' में भी इस बात की चर्चा आई है कि कश्मीर कैसे बना ?

डा० स्टीन की पुस्तक में कश्मीर के सम्बन्ध में दी गई नीचे लिखी बातें इस सम्बन्ध पाठकों के लिए रोचक होंगी।

"इस प्रदेश की रूपरेखा उपरोक्त कथन से मिलती प्रतीत होती है, कश्मीर की घाटी वास्तव में एक झील ही रही होगी। महाकवि कल्हण ने भी अपने ग्रन्थ नीलमाता की भूमिका में इसके बारे में विशद चर्चा की है और इस आख्यान की पुष्टि की है। प्राचीन लोक चर्चाओं के आधार पर पता चलता है कि इस झील का नाम "सतीसर" था। सती का अर्थ है दुर्गा। कल्प के आरम्भ से ही यह स्थान दुर्गा का स्थान रहा। सातवें मनु के राज्यकाल में जलोद्भव नामक राक्षस इस झील में रहता था। उसने आस पास के प्रदेशों में विध्वंस और अत्याचार मचा रखा था। नागों के पिता कश्यप मुनि ने, जो उत्तर भारत को तीर्थ यात्रा पर आये थे अपने पुत्र कश्मीर के नाग राजा नील से उसके अत्याचारों की कहानी सुनी और यह प्रतिज्ञा की कि वे देवताओं की सहायता से उसका संहार करके ही दम लेंगे। यह विचार कर कश्यप मुनि ब्रह्मा तथा अन्य देवताओं से सहायता लेने गये। ब्रह्मा जी ने सारे देवता सहित आकर सतीसर के चारों ओर कोंसर नाग झील के ऊपर "नवबंधन" तीर्थ की पहाड़ियों पर घेरा डाल दिया मगर वह राक्षस जल से बाहर नहीं निकला। इस पर विष्णु भगवान ने अपने भाई बलभद्र से झील को खाली करने के लिए कहा। बलभद्र ने अपने हलास्त्र से पहाड़ को काट दिया और झील सूख गई। झील सूखने पर जलोद्भव राक्षस का भगवान विष्णु ने अपने सुदर्शन चक्र से संहार कर दिया।

"इसके बाद कश्यप मुनि ने इस झील की जगह कश्मीर बसाया। यहाँ देवता और नाग दोनों बस गए और देवियाँ नदी का रूप रखकर इस धरती पर बहने लगीं।"

इस झील के कश्यप द्वारा सुखाये जाने की कहानी चीनी यात्री ह्वेनसांग द्वारा लिखी एक बौद्ध गाथा में भी मिलती है। नीलमाता की भाँति कथाओं के आधार पर भी यह कहानी आज तक सुनी जाती है। मुसलमान इतिहासकारों ने भी कश्मीर का उद्गम इसी प्रकार बताया है। हैदर मलिक द्वारा लिखे गए इतिहास से ही डा० बरनियर ने इस गाथा को लिया है और उन्होंने कश्मीर को धरती का स्वर्ग कहा है। इसके बाद के अनेक यूरोपीय ग्रन्थों में भी इसका उल्लेख मिलता है।

भूगर्भशास्त्री भी इस बात को मानते हैं कि इस प्रदेश का विकास झील से हुआ है किन्तु उनका मत है कि झील से घाटी के विकसित होने का समय ऊपर दिये गये समय से बाद का है। इस बात के काफी सबूत हैं कि इस क्षेत्र में प्राचीन काल में ज्वालामुखी पहाड़ थे और उनसे निकले हुए लावे की काफी मात्रा इधर-उधर बिखरी हुई मिली है। लेकिन इस बारे में कुछ भी निश्चित रूप से नहीं कहा जा सकता कि इग्रोसीनयुग से लेकर अब तक यहाँ पर कभी कोई ज्वालामुखी फूटा हो। किन्तु आज भी इस प्रदेश के गर्भ में ताप प्रक्रिया जारी है। इसका प्रमाण यह है कि आज भी यहाँ पर अनेक गर्म चश्मे मिलते हैं।

लेडेक्कर के अनुसार सारे जम्मू कश्मीर का भूगर्भी वर्गीकरण निम्न सारिणी में दिया गया है :—

भूगर्भी मंडल		काल
जलोढ़ पद्धति		
निम्न स्तरीय जलोढ, उच्चस्तरीय जलोढ़		प्रागैतिहासिक
ग्लेसियल लेकस्ट्राइन और करेवा श्रेणी		(अभिनूतन)
तृतीयक टरटियरी मंडल		
शिवालिक श्रेणियाँ	वाह्य, आन्तरिक	(नूतन)
सिरमूर श्रेणियाँ	मर्री समूह, सबाथू समूह सिंधु टरशरी	(अल्प नूतन)
जंस्कर मंडल		
चिक्किम श्रेणी		क्रैटासियस
सुपराकुलिंग श्रेणियाँ		जूरा और ट्रायस
कुलिंग श्रेणियाँ		कार्बोनीफैरस
पंजाल मंडल		
इनके उपभाग नहीं हैं		सिलूरियन कैम्ब्रियन
कायांतरण मंडल (मैटामार्फिक सिस्टम)		पुराजीव
कायांतरित (मैटामोरफोन्ड)		
पंजाल और मध्यवर्ती जिनीज		

उपरोक्त भूगर्मी मण्डलों की व्यवस्था श्री लेडेक्कर ने की है और उनकी मान्यता है कि आदिकाल में अवश्य ही कश्मीर में कोई बहुत विशाल झील रही होगी और यहाँ पाई जाने वाली वर्तमान डल झील केवल उसका अवशेष मात्र है।

कश्मीर का भूगर्भी प्रदेश विभिन्न युगों की चट्टानों से बना हुआ है।

वाह्य हिमालय के उत्तरी भाग के बहुत से क्षेत्र में बिल्लौर मैटामार्फिक, जिनीज तथा *सिक्स्ट्ज चट्टानें फैली हुई हैं। जीव अवशेषधारी पोलियोजोइक चट्टानें कश्मीर की* घाटी के उत्तरी भाग में अण्डाकार रूप में लिद्दड़ से लेकर कश्मीर के दक्षिणी-पूर्वी सिरे तक फैली हुई हैं। यहाँ पर वे पंजाब की स्पीति घाटी में मिल जाती हैं। यही नहीं राज्य के अनेक भागों में कैम्ब्रियन और ओर्डोविसियन चट्टानें भी मिलती हैं। तुलना में ये चट्टानें पतली बनावट की रेतीली और अभ्रकधारी पत्थरों की पट्टियों की बनी हुई हैं। कश्मीर में पूर्व आंगरिक युग की जो चट्टानें मिलती हैं वे भूरे रंग की हैं और उनकी बनावट चूनाधारी है। इनके ऊपर की चट्टानें रेतीली हैं विशेष किस्म क्वार्टजाइट (स्फटिक) की बनी हुई हैं और उनकी बनावट में जीव-जन्तुओं के अवशेषों ने कोई भाग नहीं लिया है।

पंजाब की ज्वालामुखी-पर्वत श्रेणियाँ कश्मीर में मुख्य रूप से दो छोटे भागों में बाँट सकते हैं। (1) निचले भाग में ऐसी चट्टानें है जिनकी बनावट जमे पत्थरों की है और (2) गोल छिप्पेदार है। उनके ऊपर की चट्टानी पर्तें जो पंजाबी ट्रैप के नाम से जानी जाती हैं छिप्पेदार पत्थरों से बनी हैं। जिनीज चट्टानों के बाद इन्ही चट्टानों से कश्मीर का सबसे अधिक क्षेत्रफल बना हुआ है। कश्मीर के अनेक भागों में पंजाब ट्रैप रेतीले और कार्बनधारी चट्टानों के ऊपर बनी हैं।

त्रिखण्डी युग की चट्टानों में कश्मीर में ऐसी चट्टानें मिलती है जिनमें आमतौर पर चूना और डोलोमाइड (मेगनेशियम का एक खनिज) होता है। इसके अतिरिक्त यहाँ वाह्य शिवालिक पर्वत श्रेणी की चट्टानें पायी जाती हैं। या तो वे बहुत मोटे-मोटे टिम्मों से बनी है या कत्थई और लाल मिट्टी से बनी है।

सन् 1938 ई० में हून ने मिट्टी की खोजबीन की तथा जम्मू श्रेणियों के बटोट क्षेत्र और कश्मीर घाटी के पहाड़ी वनों में देवदार, बलूत, फर, चीड़ आदि वृक्षों के नीचे पाई जाने वाली मिट्टी का भी परीक्षण किया। घाटी में बलूत के पेड़ों के नीचे की मिट्टी पोडसोल पाई गई है और बटोट की पहाड़ियों के देवदार के पेड़ों के नीचे की मिट्टी भूरे मटियाले समूह की पाई गई है। इन परीक्षणों के परिणाम स्वरूप हून ने यह निष्कर्ष निकाला कि कश्मीर घाटी की भस्मी मिट्टी कुल्लू की घाटी की भस्मीकुल की कौनीफेरस मिट्टी से मिलती जुलती है।

घाटी की अधिकतर मिट्टी जलोढ़ है जिसके दो भाग है:—(1) पहाड़ी नदियों के डेल्टों पर पाई जाने वाली मिट्टी और (2) झेलम नदी के ऊपर ढेले की करेवास तक बहुत दिनों से इकट्ठी होने वाली मिट्टी। पहले प्रकार की मिट्टी बड़ी उपजाऊ है क्योंकि हर साल झरनों के द्वारा लाई गई ताजा मिट्टी उसे उपजाऊ बनाती है। वन संरक्षण की ढिलाई के बावजूद अभी तक पहाड़ी नदियों की काले भूरे रंग की

अधिक उपजाऊ तलछटी मिट्टी इन जंगलों में मिलती है। परन्तु सिन्धु नदी हर साल अपने साथ रेत लाकर इस मिट्टी में मिला देती है। यह क्रिया शायद अधिक मात्रा में पेड़ गिरने के कारण होती है।

कश्मीरी लोग मिट्टी को चार वर्गों में बाँटते हैं :

(1) गुरुटू, (2) बहिल, (3) सैकिल, और (4) डजनलाड।

गुरुटू मिट्टी : यह चिकनी होती है जो पानी सोखने की अधिक क्षमता रखती है। कम वर्षा के समय चावलों की खेती के लिए ये बहुत अच्छी रहती है। परन्तु भारी वर्षा के समय इस मिट्टी से अधिक पैदावार नहीं ली जा सकती।

बहिल मिट्टी : यह अच्छी दोमट है और प्राकृतिक बनावट में बहुत उर्वरा होती है। यहाँ तक कि ज्यादा खाद देने से फसल नष्ट होने का डर रहता है।

सैकिल मिट्टी : यह हल्की दोमट होती है जिसमें मामूली रेत भी मिली रहती है। खाद देने व सिंचाई करने से इसमें अधिक चावल पैदा किया जा सकता है।

डजनलाड मिट्टी : यह झील जैसी निचली जगहों या उसके आसपास भी मिल जाती है। इस मिट्टी में धान की खेती करते समय निगरानी रखी जाती है कि यदि धान का पौधा तेजी से बढ़ने लगे तो तुरन्त अनावश्यक पानी का विकास कर दिया जाए। यदि सिंचाई का ख्याल रखा जाए तो धान की पैदावार बहुत अच्छी होती है। इस मिट्टी की यह भी विशेषता है कि इसमें पानी पहुँचते ही इसका रंग लाल हो जाता है। झेलम के किनारे और वुलर झील के आसपास एक और अच्छे किस्म की मिट्टी (नम्बल) पाई जाती है। यदि कई साल तक अच्छी वर्षा हो तो इस मिट्टी में मक्का और सरसों या लाहा की फसल खूब होती है। इस मिट्टी में चावल पैदा नहीं होता और न इसमें खाद ही दिया जाता है। लेकिन यहाँ अक्सर ऐसा रिवाज है कि फसल के खरपतवार, ठूंठों आदि को जला दिया जाता है और फिर नई फसल के लिए जुताई शुरू की जाती है।

करेवास मिट्टी गुरुट कुल की ही मिट्टी है और ये अपने रंगों से पहचानी जाती हैं। ये मिट्टियाँ कई रंग की होती हैं तथा इनमें सबसे उपजाऊ काली मिट्टी होती है जिसे सरजमी कहते हैं। दूसरे नम्बर की लाल मिट्टी है। किन्तु पीली मिट्टी सबसे खराब मानी जाती है। इसकी और भी बहुत सी किस्में हैं जिनके यहाँ की भाषा में अलग-अलग नाम हैं।

18. फसलें और कृषि क्रियाएँ

कश्मीर की फल और फूलों से लदी हुई धरती है। संसार में शायद ही कोई ऐसा देश होगा जहाँ पर इतनी तरह के फल पैदा हों या फलोत्पादन के लिए इतने उपयुक्त साधन मौजूद हों। सेव, नाशपाती, अंगूर, शहतूत, अखरोट, आड़ू, चैरी, खुबानी, रसभरी, स्ट्राबैरी, बेर इत्यादि फल कश्मीर घाटी के अनेक भागों में बहुतायत से पैदा होते हैं।

गरमी आते ही गाँव वाले शहतूत के पेड़ों के नीचे कम्बल बिछाकर उन्हें घेरे रहते हैं। शहतूत के पेड़ के नीचे आदमी ही नहीं टट्टू, कुत्ते तथा अन्य पशु भी सफेद और काले शहतूतों को खाते रहते हैं। शहतूत की कुछ कलमी किस्में भी होती हैं। ये मीठी और रसीली होती हैं। इसको जमा रखने तथा शरबत बनाने के लिए अच्छा समझा जाता है। बहुत से किसान खाने के बाद बचे हुए शहतूतों को होशियारी से जाड़े के मौसम में खाने के लिए जमा कर लेते हैं। इसमें मिठास बहुत दिनों तक रहती है। इसके बाद फिर खुबानी पकती है। इसे भी पहले खाया जाता है और फिर जाड़ों के लिए रख लिया जाता है। परन्तु कश्मीरी लोग फल के बजाय खुबानी की गुठली का तेल निकालते हैं। खुबानी से सुनार चांदी साफ करने का काम भी लेते हैं और रंगरेज इससे रंग को पक्का करते हैं। यहाँ पर काले रंग की चैरी (ब्लैक मौरेला) भी खूब होती है। ये स्वाद में खट्टी होती है परन्तु लोग इसे बहुत पसन्द करते हैं। यहाँ बहुत सी जगह यूरोप की अरब, फारस, अफगानिस्तान के मार्ग से लाई गई चैरी की एक किस्म 'ह्वाइट हार्ट' भी उगाई जाती है। यहाँ जंगली बेर भी खूब होता है परन्तु पैदा किया गया बेर और भी अच्छे स्वाद का होता है। आड़ू यहाँ पर कम क्षेत्र में पैदा होता है परन्तु होता बहुत अच्छा है। रसभरी जंगली व लगाई हुई दोनों तरह की होती है। जंगली स्ट्राबेरी भी बहुत बढ़िया किस्म की होती है।

कश्मीर के फल

सेव : यहाँ सबसे अच्छी किस्म का सेव एनब्रू या अम्बरी कहलाता है। ये बड़े आकार का गोल, लाल व सफेद रंग का और बहुत मीठा होता है। यह ज्यादातर अक्तूबर में पकता है और बहुत दिनों तक रखा जा सकता है। यह भारी मात्रा में बाहर भी भेजा जाता है और लोग इसको स्वाद, मिठास व सुन्दरता के कारण खूब खरीदते हैं। मोही अमरी भी अम्बरी सेव की तरह ही बढ़िया होता है परन्तु जरा खट्टा और गहरे लाल रंग का होता है। इसका विदेशों में खूब निर्यात होता

श्रम साधना में लीन एक कश्मीरी किसान

कश्मीरी किसान धान की गहाई करते हुए आने वाले
खुशहाल दिनों की कल्पना-मात्र से ही कितने प्रसन्न हैं !

है। खुद्दुसारी सेव, यहाँ काबुल से लाया गया है। यह लम्बा तथा रसीला होता है परन्तु मामूली खट्टा होता है। यह जल्दी पक जाता है पर ज्यादा दिनों तक रखा नहीं जा सकता है। खुशबू और स्वाद के लिहाज से सबसे अच्छा सेव ट्रेल है जो सोपुर के आस-पास खूब मिलता है,। इसकी तीन किस्में होती हैं : (1) नवादी ट्रेल, जो कुछ पीले रंग का होता है, (2) जम्बासी ट्रेल, जो लाल रंग का होता है, और (3) सिल ट्रेल, यह दोनों से बड़ा होता है तथा गहरे लाल रंग का होता है। यह सेव पक कर खट्टा मीठा हो जाता है और खाने में बड़ा स्वादिष्ट लगता है। ठीक समय पर तोड़े जाने पर इनका मुरब्बा भी डाला जा सकता है। ट्रेल की एक अच्छी किस्म खातो नोट्रेल होती है। इस किस्म का सेव आकार में जरा बड़ा होता है परन्तु सभी छोटी किस्मों के समान ही स्वादिष्ट होता है। सेवों की कई किस्में होती हैं लेकिन कश्मीरी लोग सबसे ज्यादा अम्बरी की एक किस्म दूध अम्बरी को ही पसंद करते हैं। जंगली सेवों में टेट शकर और मालमूं बड़े स्फूर्तिदायक और स्वादिष्ट होते हैं। लोग सितम्बर के शुरू में जंगली सेव और ट्रेल सेवों को तोड़ कर आधे-आधे टुकड़े करके सुखा लेते हैं।

नाशपाती : अच्छे फलों में यह दूसरे नम्बर का फल है। परन्तु यह फल अधिक निर्यात नहीं किया जाता। कश्मीर की घाटी में तरह-तरह की नाशपाती लगाई जाती है। सबसे बढ़िया नाशपाती नाक सतरवती है। ये देखने में बड़ी खूबसूरत लगती है और इसका गूदा मीठा होता है। दूसरी किस्म नाक गुलाबी है। इसका छिलका खूबसूरत लाल रंग का होता है। ये खाने में बड़ा स्वादिष्ट लगता है। यद्यपि कश्मीरी सेव का छिलका उतार कर खाते हैं किन्तु वे इस नाशपाती को बिना छीले ही खा जाते हैं। जाड़ों में नाशपाती खाना खतरनाक समझा जाता है, क्योंकि जाड़ों में खाने से सिर व आँखों में दर्द होने लगता है। शुरू में पकने वाली नाशपाती को गोशवग कहते है और बाद में पकने वाली को तांग कहते है। जंगली नाशपाती तो सारी घाटी में बहुतायत से पाई जाती है।

खट्टी मीठी बिही (क्यूनिस्ज) : यह एक विशेष प्रकार का कश्मीरी फल है और यहाँ बड़ी मशहूर है। बिही डल झील के आस-पास के बागों में खूब फलती है। ये ज्यादातर बीज के लिए बोयी जाती है। अनार भी यहाँ खूब पैदा होता है पर कोई खास किस्म का नहीं होता।

अखरोट : अखरोट का यहाँ खास पेड़ है और इसे यहाँ की भाषा में वोंट्टूम कहते हैं क्योंकि आमतौर पर इसका छिलका आसानी से टूटता नहीं अतएव इसका फल तो अधिक उपयुक्त नहीं होता परन्तु इसकी छाल पंजाब को भेजी जाती है। रोपे गये अखरोट के पेड़ों के फल गाँवों वालों के लिये उपयोगी होते हैं। अखरोट घाटी में खूब पैदा होता है और विशेषकर 5,500 से 7,500 फुट की ऊँचाई तक पाया जाता है। यह पेड़ बीज डाल कर उगाया जाता है और कहीं-कहीं कलमें भी लगाई जाती हैं।

इसकी तीन किस्में हैं :—(1) कागजी, (2) बुरजल, और (3) बान्तू। ये यहाँ तेल निकालने के काम आते हैं, खाने के लिए नहीं। बान्तू से सबसे ज्यादा तेल

निकलता है । इसका फल भी बड़ा होता है । बुरज़ल कागजी और बान्तू दोनों के बीच की किस्म है । यह इङ्गलैंड के साधारण अखरोट के समान ही होता है। घाटियों से पहाड़ पर चढ़ते समय उम्दा किस्म के अखरोट के पेड़ पाये जाते हैं ।

बादाम : बादाम के बाग घाटियों में सब तरफ पाये जाते हैं । बहुत सी पहाड़ियों के ढालों पर भी इनके पेड़ लगाये जाते हैं । यह बड़ा पोषक व पैसा देने वाला फल है । आम तौर पर बादामों के बागों में बाड़ भी नहीं लगायी जाती । यहाँ दो प्रकार का बादाम होता है । एक मीठा और दूसरा कड़ुवा । मीठा बादाम कड़ुवे से दुगुने मूल्य पर बिकता है ।

कश्मीर में भिन्न-भिन्न स्थानों पर भिन्न-भिन्न प्रकार की खेती होती है । वास्तव में जहाँ जलवायु और भौतिक स्थिति हर बीस मील पर बदल जाती हो वहाँ भिन्न भिन्न प्रकार की खेती का होना कोई आश्चर्यजनक बात नहीं है । यद्यपि विस्तृत रूप में यहाँ की खेतीबाड़ी के बारे में ज्यादा बताना संभव नहीं है फिर भी उन फसलों के बारे में जो यहाँ ज्यादा उगाई जाती हैं उनका कुछ वर्णन नीचे किया जा रहा है।

खेती : जम्मू के निचले क्षेत्रों में वे सभी फसलें होती हैं जो पंजाब में होती हैं । किन्तु ऊँचे क्षेत्रों में केसर, जौ और कोदों की खेती होती है । गर्म प्रदेश में आम और शीशम के बहुत पेड़ हैं और पहाड़ों में सेब, नाशपाती, देवदार और चिनार आदि खूब होते हैं । गरमी आर्द्र भागों में जहाँ रावी और ऊझ नदी से सिंचाई होती है आस-पास पहाड़ों से लोग आकर खेती करते हैं । इसका उत्तरी भाग सूखा है । यहाँ के कंडी क्षेत्र में थोड़ा बहुत गेहूँ, जौ, ज्वार, बाजरा इत्यादि पैदा होता है । कंडी पहाड़ी के पार एक उपजाऊ घाटी है जिसमें बहुत सी नदियाँ बहती हैं । यहाँ गहरी मिट्टी वाले भागों में बहुत सी फसलें होती हैं । अलबत्ता उथली मिट्टी वाले पहाड़ी ढालों पर उपज कम होती है ।

पहले पहाड़ों पर ऊपर चढ़ते ही चौड़ी घाटियों और ऊँचे पहाड़ों का वह हिस्सा आता है, जिसमें भसहौली, रामनगर, ऊधमपुर नौशैरा, और रियासी तहसील इत्यादि हैं । यहाँ का तापमान सामान्य है और पानी की भी इफरात है । हिमालय के कारण यहाँ वर्षा भारी और नियमित होती है । यहाँ फसलें भी मैदानी भागों की तरह होती हैं । यहाँ पर बाजरे की जगह मक्का अधिक होती है । यहाँ चरागाह काफी हैं और इन पर गूजर, गड़रिये और ग्वालों का अधिकार है ।

ऊँचे पहाड़ी भागों में भद्रवाह, किस्तवार, रामबन, रियासी और रामपुर राजौरी का कुछ हिस्सा है । यहाँ खूब बर्फ पड़ती है, और जाड़ा तेज रहता है । यहाँ के किसान भी मैदानी किसानों से भिन्न हैं । जलवायु बिलकुल कश्मीर घाटी जैसी है । यहाँ सिंचाई सुलभ है, और वर्षा भी खूब होती है । किश्तवार में केसर और डोढ़ा और किस्तवार तथा भद्रवाह में पोश्त खूब पैदा होती है । यहां चरागाह काफी हैं जहाँ बहुत से गूजर रहते हैं । कभी-कभी हिमपात और तेज ठंढी हवाओं से फसल को नुकसान हो जाता है । इसी से फसल पकने में भी देरी हो जाती है ।

सिचाई : कश्मीर की घाटी में सभी खेती सिंचाई पर निर्भर है। परन्तु सिचाई यहाँ बहुत आसान है और जल पर्याप्त मात्रा में मिलता है। ऊँची चोटियों से बर्फ पिघल पिघल कर चश्मों में बह जाती है। ये चश्मे झेलम में आकर गिरते हैं। झेलम नदी के दोनों छोरों पर बड़े-बड़े पठार हैं। यहाँ पानी एक गाँव से दूसरे गाँव में बहता हुआ चला जाता है। इन पहाड़ी चश्मों से मनचाहे स्थानों में पानी को काट कर छोटी-छोटी नालियों में ले लिया जाता है। ये नालियाँ खेतों को सींचती हुई फिर झेलम में गिर जाती हैं। नीची धरती में जहाँ चश्मे धीरे-धीरे बहते हैं वहाँ पानी को बाँध बनाकर रोक लिया जाता है। जिन गाँवों को इन बाँधों से लाभ होता है वे ही इन बाँधों की मरम्मत कराने या बनवाने का खर्च वहन करते हैं। ये बाँध लकड़ी के पटरों या पत्थरों के बनाये जाते हैं और जहाँ पानी धीरे-धीरे बहता है वहीं पर बनाये जाते हैं। बैंत की छड़ियाँ लकड़ी के बीच में रख कर भी बाँध बनाये जाते हैं। इन बाँधों में से चट्टानों के किनारे-किनारे छोटी-छोटी नालियाँ बनाकर पानी को खेतों तक ले जाया जाता है ताकि सिंचाई सरल हो जाए। पानी के बँटवारे का सीधा सादा तरीका है। पानी पर आपस में झगड़े नहीं होते और खासकर एक गाँव के आदमियों में तो झगड़े होते ही नहीं। पहाड़ी चश्मों के अलावा सिंचाई का पानी और भी पहाड़ी स्रोतों से लिया जाता है। इनमें सिंचाई तो बहुत अच्छी होती है परन्तु दो हानियाँ हैं। एक तो स्रोतों का पानी ठंढा होता है दूसरे उनमें उपजाऊ मिट्टी बहकर नहीं आती। इनमें एक प्रकार की चिकनी सी मिट्टी होती है जो चावल के लिए बहुत खराब होती है।

खाद : कश्मीरियों का सौभाग्य है कि उनको अपने खेतों के लिये खाद खूब मिल जाता है। उन्हें जानवरों का गोबर ईंधन के काम में नहीं लाना पड़ता क्योंकि उन्हें पर्याप्त मात्रा में जलाने के लिए लकड़ी ईंधन मिल जाता है। वहाँ का यह नियम है कि भेड़, बकरी, गाय, बैल, घोड़ा जो भी जानवर जाड़ों में घर में बाँधे जाएँ उनका गोबर खेत में खाद देने के काम में लिया जाए। गर्मियों में यह सब गोबर सुखा कर और चिनार की पत्तियों में या बैंत की छोटी-छोटी पत्तियों में मिला कर ईंधन के काम में लिया जाता है। जब भेड़-बकरियों के रेबड़ पहाड़ पर ऊपर चरने लगते हैं तो उन्हें ज्यादातर खेतों में छोड़ दिया जाता है ताकि उनका गोबर खेतों में गर्मी की फसल के लिए खाद बन जाए।

चश्मों के दोनों किनारों पर घास उगे हुए ढेले भी अच्छे खाद का काम देते हैं। इनमें तलछटी मिट्टी होने के कारण ये चावल के खेतों की उपज बढ़ाते हैं। इनसे खेत को तीन साल तक के लिए उपजाऊ बनाया जा सकता है जबकि उसे गोबर की खाद हर साल देनी पड़ती है। मुर्गी की बींट की खाद भी प्याज के खेतों में डालने के लिए बढ़िया होती है। भेड़ का मल मूत्र दूसरे नम्बर की अच्छी खाद होती है जो चावल की बियाड़ के लिए सर्वोत्तम होती है। इससे कम अच्छा खाद गाय-भैंस के गोबर का होता है। घोड़े की लीद सबसे खराब खाद होती है। कश्मीर में मल की खाद भी बड़ी उपयोगी मानी जाती है। श्रीनगर और आस पास के बड़े गाँवों में मल की खाद में धूल मिलाकर व धूप में सड़ा कर यह काम में लाई जाती है।

औजार : यहाँ के किसानों के सीधे-साधे औजार हैं। इनका हल बहुत हल्का होता है और हल चलाने वाले पशु भी छोटे होते हैं। हल बनाने के लिये शहतूत, ऐश (अखरोट जैसा जंगली पेड़) या सेब की लकड़ी अच्छी मानी जाती है। फाल लोहे की लगाई जाती है। खेतों में ढेले फोड़ने की मूंगरी लकड़ी की होती है। यह काम टोली बनाकर किया जाता है। कभी-कभी ढेले फोड़ने के लिये पाटा भी चलाते हैं जिसको बैल खींचता है और हाँकने वाला पाटे पर खड़ा हो जाता है। निराई-गुड़ाई की क्रिया खुशावा कहलाती है। मक्का और रूई के खेतों में हाथ से ही निराई-गुड़ाई की जाती है। धान कूटने और मक्का साफ करने के लिए ओखली और मूसल काम में लाते हैं। ओखली एक लकड़ी को पोली करके बनाई जाती है और कूटने वाला मूसल मजबूत लकड़ी का बना होता है।

कृषि क्रियायें : खेती के काम शुभ मुहूर्त देखकर नौरोज यानी बसंत के पहले दिन या मेंज़ान यानी पतझड़ के आरम्भ में ही शुरू किये जाते हैं। मार्च के महीने में चावल के खेतों की मिट्टी सख्त हो जाती है और यदि उन दिनों बर्फ न गिरे तो हल से जोतना बड़ा मुश्किल हो जाता है। यदि इस समय वर्षा न हुई तो खेत में पहले हल्की सिंचाई करके जुताई की जाती है। कहीं-कहीं जुताई उसी समय की जाती है जबकि जमीन मुलायम होती हैं। किन्तु इस तरह की जमीन में पैदावार कम होती है। सारे गाँव की टट्टी और गोबर औरतों द्वारा खेतों में डाल दी जाती है। इसे या तो हल के साथ जोत देते हैं या खेत में ढेरी लगा देते हैं ताकि वह सिंचाई के पानी के साथ बहकर मिट्टी में मिल जाए। अप्रैल के महीने में झरनों के पास की मिट्टी काट कर गीले खेतों में बिखेर देते हैं। इन पर तीन-चार बार सिंचाई करके मूंगरी से ढेले तोड़ दिए जाते हैं और फिर एक बार सिंचाई करके बोआई शुरू की जाती है। घास के बने हुए बोरों में चावल के बीजों को साफ करके व छांट करके रखा जाता है और उन्हें बोने से पहले पानी में डुबो दिया जाता है ताकि उनमें अंकुर फूट आएँ। कभी-कभी बीज को मिट्टी के बर्तन में डालकर पानी भर देते हैं। इसके बाद बीजों को खेत में बोते हैं। ऊँचाई वाले गाँवों में बोआई पहले होती है क्योंकि ऊँचाई पर जाड़ा जल्दी आता है इसलिए बर्फ से पहले फसल काट ली जाती है। मक्का या दालों की बोआई में इतनी देखरेख नहीं की जाती जितनी कि चावलों के लिए। मक्का तथा अन्य मोटे अनाजों के लिए खेत को ही देखना काफी होता है। कभी-कभी मक्का की बोआई के बाद भी सिंचाई दो तीन बार की जाती है। परन्तु उसमें खाद नहीं डाला जाता। कपास में खाद के रूप में बीज के साथ राख भुरकी जाती है।

जून-जुलाई में जौ और गेहूँ की लावनी और दांय होती है। कहीं दांय पशुओं से चलवाते हैं या लांक कहीं लकड़ी से पीटी जाती है। जब हवा नहीं चलती है तो बरसाने के लिये कम्बल फटक कर उड़ावनी की जाती है। खरीफ की फसल एक सट्टा होती है उसमें जो भी मिल जाय किसान उसी से संतोष कर लेते हैं। इसी समय चावल के खेत की निराई की जाती है जिसे खुशावा कहते हैं। इसमें चावल के पौधों को ठीक तरह से लगाते हैं और मिट्टी चढ़ाते हैं। खरपतवार की पहचान जानकार

लोग ही कर सकते हैं। इसको निकालने का काम हाथ से ही अच्छा होता है या कभी-कभी पशुओं के पैर से भी कर लिया जाता है। पशु द्वारा किये कार्य को गुपन निंद कहते हैं। धान के दो फुट के पौधे होने पर फसल को बचाकर एक बार फिर जोत दिया जाता है। जब धान में दाने आने लगते हैं तब खेतों से पानी बाहर निकाल दिया जाता है। परन्तु कटाई से पहले एक बार पानी फिर भर दिया जाता है जिससे दाना और बढ़ जाये। कभी-कभी जब धान खेत में खड़ा होता है तो कुछ अलसी या लाहा के दाने बखेर दिये जाते हैं। उसकी फसल धान की फसल के साथ ही तैयार हो जाती है। इस तरह बिना जुताई के साथ में एक और फसल तैयार हो जाती है। अगर आधे सितम्बर के आस-पास वर्षा हो जाती है तो लाभदायक समझी जाती है। इससे चावल की फसल अच्छी हो जाती है और अगली फसल के लिए जुताई भी आसान हो जाती है। समय पर यदि वर्षा हो तो किसानों को बड़ी खुशी होती है। इस वर्षा को कम्बरका कहते हैं। यदि सितम्बर से पहले वर्षा हो जाती है तो अधिक से अधिक भूमि में अलसी बोई जाती है। इसके साथ-साथ ही गेहूँ और जौ की भी बोआई हो जाती है और किसान तथा पशुओं को कटाई व निराई-गुड़ाई के समय तक आराम मिल जाता है। इस घाटी में बैल गाड़ियाँ नहीं चलती हैं। केवल वुलर झील के पास थोड़े से समतल मैदान में कुछ ट्रालियाँ चलती हैं क्योंकि कश्मीरी जुताई के बैलों को गाड़ी में नहीं जोतते और वहाँ के मजदूर फसल के गट्ठरों को सिर पर उठा कर ले जाते हैं। जैसे ही डंठल और वालियाँ सूख जाती हैं तभी उनको दांय शुरू कर देते हैं। किसान चावल के पूले को दोनों हाथों से लकड़ी के पट्टे पर पटक-पटक कर उसकी बालों को अलग कर लेते हैं। डंठल अलग रखे जाते हैं। इनसे चारा बनता है और छप्पर भी छाये जाते हैं।

अक्टूबर से दिसम्बर तक जब मौसम खुश्क और अच्छा होता है किसान जौ और गेहूँ बोने के लिये खेत की जुताई शुरू कर देता है। दिसम्बर के बाद जुताई बन्द हो जाती है। इस समय किसान धान कूटने, भेड़-बकरियों की देख-रेख, घर का काम तथा कम्बल बुनाई इत्यादि में जुट जाता है।

गेहूँ और जौ के लिए कम जुताई की जरूरत होती है। गेहूँ के लिए अधिक से अधिक तीन बार और जौ के लिए दो बार जुताई की जाती है। निराई करने, खाद देने में कोई मेहनत नहीं लगती और गेहूँ और जौ के हरे भरे खेत किसी को भी आश्चर्य में डाल सकते हैं। खेत में इतनी घास खड़ी हो जाती है कि यह जानना कठिन होता है कि यह घास है या फसल। इसी तरह यदि दो साल भी गेहूँ या जौ की खेती की जाए तो जमीन की उर्वरा शक्ति नष्ट हो जाती है। इसलिए किसान रबी के बाद खरीफ और खरीफ के बाद रबी की फसल लेता है। इससे जमीन उर्वरा रहती है किन्तु यहाँ दो कठिनाइयाँ सदैव किसान के सामने रहती हैं। पहली कम और अनिश्चित वर्षा और दूसरे सिंचाई का बर्फीला पानी जो पौधों के विकास में सहायक नहीं होता।

यहाँ रबी की मुख्य फसल में चावल, मक्का, कपास, केसर, तम्बाकू, बाजरा, मोटे अनाज, दालें, जई और तिल हैं और खरीफ की फसल में जौ, पोस्त, अलसी, सन, मटर, सेम विशेष रूप से होते हैं।

प्रमुख फसलें

चावल : यह कश्मीरियों का प्रिय भोजन है इसलिए इसकी खेती पर बहुत ध्यान दिया जाता है। चूंकि यहाँ की धरती पोली है अतः यहाँ हर समय खेत में पानी चलता हुआ रखना पड़ता है। बोआई से कटाई तक पानी को खेत में ज्यादा देर तक नहीं ठहरने देते क्योंकि जमीन सख्त होने से पौधा दब जाता है और फसल को नुकसान होता है। खरपतवार भी इतना बढ़ता है कि उसे हटाना एक समस्या बन जाती है।

चावल की खेती के दो तरीके हैं। पहले तरीके में चावल बखेर कर बोया जाता है और दूसरे तरीके में रोपाई करके। रोपाई वाले खेत में निराई गुड़ाई दो बार तथा पहले तरीके में चार बार की जाती है। जहाँ जमीन अच्छी और सिंचाई अच्छी हो वहाँ बीज बखेर कर बोया जाता है किन्तु बहुत सी जगह रोपाई करना जरूरी होता है। मिट्टी दो तरीकों से तैयार होती है। पहले तरीके को "ताव" और दूसरे को "किनालू" कहते हैं। यहाँ धान के लिए कहावत है कि जमीन या तो बिलकुल नम या बिल्कुल सूखी होनी चाहिए। ताव में जुताई सूखी धरती में होती है। जब ढेलों की नमी सूख जाय तब एक सिंचाई करके बीज बो दिया जाता है। दूसरे तरीके "किनालू" में जुताई नम धरती में होती है। परन्तु अधिकतर किसान "ताव" का तरीका ही अपनाते हैं क्योंकि उसमें फसल अच्छी होती है और मेहनत भी कम लगती है।

वैसे तो कश्मीर में चावल की बहुत सी किस्में हैं परन्तु मोटे तौर पर उनके दो भेद किये जा सकते हैं—(1) सफेद, और (2) लाल। सफेद चावलों को बहुत अच्छा माना जाता है। इनमें सबसे बढ़िया बासमती और कन्यन होते हैं। ये जल्दी फूटते हैं और जल्दी पकते हैं परन्तु इनके पौधे बहुत नाजुक होते हैं और ठंडी हवाओं को सहन नहीं कर सकते। इसलिए इनकी उपज भी कम होती है। यही कारण है कि किसान लाल चावल को सफेद के मुकाबले ज्यादा अच्छा मानते हैं। लाल चावल का पौधा मजबूत और अधिक दाने वाला होता है तथा अधिक ऊँचाई पर भी बोया जा सकता है। इसे जंगली जानवर भी ज्यादा नुकसान नहीं पहुँचाते।

अच्छे चावल की फसल के लिए निम्न बातें आवश्यक हैं—पहाड़ों पर जाड़ों में भारी बर्फ गिरना जिससे गर्मियों में नदियाँ पानी से खूब भर सकें, मार्च या अप्रैल के शुरू में वर्षा होना, मई जून के महीने में तेज सूरज निकलना, मई, जून, जौलाई व अगस्त में ठंढी रातें होना तथा सितम्बर में कभी-कभी ठंढी और हल्की बारिश होना।

मक्का : धान के बाद यहाँ की दूसरी मुख्य फसल मक्का है। झेलम के किनारे काली मिट्टी पर और गूजरों की ऊँची चरागाहों में मक्का खूब बोई जाती है। मक्का के खेतों में खाद देने की जरूरत नहीं पड़ती है। धान की फसल काटने के बाद

उसके डंठलों को वहीं छोड़ देते हैं जो जाड़ों में गलकर खाद बन जाते हैं और फिर उन्हें खेत में जोत दिया जाता है। बोने से पहले दो-तीन बार की जुताई ही काफी होती है। बोने के महीने भर बाद जब पौधे एक फुट के हो जाते हैं तब निराई-गुड़ाई हाथ से की जाती है। यह काम औरतें ही करती हैं। मक्का की अच्छी फसल के लिए 15 वें दिन बारिश होना जरूरी है। किन्तु नम या दलदली भूमि में सिंचाई की जरूरत नहीं पड़ती, उन्हें पानी नहीं देना पड़ता है।

मोटे अनाज : जिस साल बर्फ थोड़ी पड़ती है उस साल चावल की भूमि में कंगनी या शोल (सिटारिया इटालिका) बो दी जाती है। इसे अच्छा अनाज समझा जाता है। खेत की 3-4 बार जुताई करके बीज बो दिया जाता है और सितम्बर में फसल पकने तक खेत की कोई रखाई नहीं की जाती। सिर्फ बीच में एक बार निराई की जाती है।

एक और मोटा अनाज चीन या पींग (पेनिकम मिलियासिम) है। ये चावल से मिलता जुलता है। ये बारानी धरती में बोया जाता है। चीना के खेतों को तीन बार जोता जाता है और बोआई के बाद खेत में खुदाई के लिए बैल छोड़ दिए जाते हैं। कभी-कभी निराई भी की जाती है परन्तु कंगनी की तरह इस फसल की अधिक देख-भाल नहीं की जाती और इसे सितम्बर में काट लिया जाता है।

अमरंथ : गनहर या अमरंथ की लाल रंग के मुलायम सुनहरी, डंठलों वाली फूलदार फसल बड़ी खूबसूरत होती है। यह कपास के खेतों की क्यारियों में मक्का के किनारों पर बो दी जाती है। दो तीन जुताई के बाद इसकी बोआई मई में की जाती है। बोआई के बाद सिंचाई या खाद की कोई जरूरत नहीं होती। सामान्य वर्षा से भी फसल फूलती है जिसे सितम्बर में काट लिया जाता है। फसल कटते ही पहले इसके दानों को भूना जाता है फिर पीस लिया जाता है। इसके बाद इसे दूध या पानी में मिलाकर खाते हैं। यह गरमाई देने वाला पोषक भोजन है। हिन्दू लोग इसे उपवास के दिन खाते हैं। इसके डंठलों को जलाकर उसकी राख में से धोबी कपड़े धोने के लिए खार निकाल लेते हैं।

त्रुम्बा या जई : (फेगोपाइरन ऐक्यूलेंटम) यह बड़ा उपयोगी पौधा है। जब किसान देखता है कि धान की खेती के लायक वर्षा नहीं हुई है तो वह सूखे खेतों में देर से इसे बो देता है। यह दो प्रकार का होता है एक मीठा जो चावल की जगह काम में आता है और दूसरा कड़वा जो नाज की जगह काम आता है। इसका छिलकेदार दाना काला होता है। इसकी रोटी या दलिया बनाकर खाते हैं।

दालें : यहाँ दालों का ज्यादा रिवाज नहीं है। सिर्फ मूंग की दाल (फेसिओलिस मंगो) ही बोई जाती थी। खेत की तीन बार सिंचाई की जरूरत नहीं होती। इसके अतिरिक्त यहाँ की दूसरी दालें माह (फेसिओलस रेडियटस) तथा मोथी (एकानीटीफो-लियस) हैं।

तिलहन : यहाँ तिलहन तीन किस्म का होता है जिसमें लाहा मुख्य है। पहला तिलगोगलू जो सितम्बर अक्टूबर में बारानी धरती में बोया जाता है। यह नई तोड़ी

हुई मुलायम धरती में बोया जाता है। इसकी निराई नहीं होती है सिर्फ जंगली मन की खरपतवार को हटाते हैं। फरवरी से मई तक इसे मामूली वर्षा की जरूरत पड़ती है तथा मई से जून के बीच फसल काट ली जाती है। दूसरे प्रकार की तिलहन तरुज या शरशाफ कहलाती है। यह बसन्त के आस-पास बोया जाता है और तिलगोगलू के साथ पकता है। तीसरा तिलहन संडीजी कहलाता है जो चावल की खड़ी फसल के साथ बो दिया जाता है। इसकी उपज तो कम होती है परन्तु मेहनत बिल्कुल नहीं करनी पड़ती। इसलिए अक्सर इसे ही बो देते हैं।

अलसी : यह प्रायः सारी घाटी में बोई जाती है। परन्तु इसके सबसे अच्छे खेत पहाड़ी ढलानों पर होते हैं। इसकी दो बार जुताई होती है। तीसरी जुताई बीज बोने के समय अप्रैल में होती है। इसकी फसल जुलाई के आखिर में काटी जाती है। इसके लिए मई के आसपास वर्षा होना आवश्यक है वरना पौधा सूख जाता है। इसमें मामूली खाद दिया जाता है और निराई नहीं की जाती।

तिल : (सीसामम इंडीकम) यह यहाँ की लोकप्रिय फसल है जो चार बार जुताई करके अप्रैल में बोई जाती है। इसका पौधा भी बड़ा नाजुक होता है और ठंढी हवाओं का जोर सहन नहीं कर सकता। इसकी फसल चावल के तुरन्त बाद ही काट ली जाती है। पौधों के नीचे कम्बल बिछा कर तिल इकट्ठा किया जाता है क्योंकि ये फली के बाहर फैल जाते हैं। इसकी साधारणतया एक एकड़ में डेढ़ मन उपज प्राप्त होती है।

कपास : यह खास-खास ऊँचाई के क्षेत्रों में बोई जाती है। यह केवल करेवा भूमि और चावल की निचली भूमि में बोई जाती है। तीन बार जुताई करने के बाद ढेलों को मुंगरी से कूट दिया जाता है। इसके बीजों को पानी में भिगो कर राख में मिलाते हैं और फिर बोते हैं। इसमें खाद नहीं दिया जाता और इसकी बोआई अप्रैल के अन्त में या मई के शुरू में होती है।

गेहूँ और जौ : ये इस घाटी की खास फसलें हैं। क्षेत्रफल की दृष्टि से जौ का अधिक महत्व है। इसकी फसल के लिए खेतों की विशेष देखभाल नहीं करनी पड़ती लेकिन इसका दाना बढ़िया नहीं होता। इसकी बोआई अक्तूबर से दिसम्बर तक एक दो जुताई के बाद होती है। इसकी फसल की निराई नहीं होती और इसमें खाद ही दिया जाता है। जौ के खेत में एक चीरमन (रेनुनकुलस) नामक खरपतवार होता है जो जौ के पौधे से मिलता जुलता है।

जो गाँव 7 फुट की ऊँचाई से अधिक ऊँचे हैं वहाँ ग्रिम या तिब्बती जौ उगाया जाता है। यह इस क्षेत्र में अच्छा भोजन समझा जाता है।

गेहूँ को जौ से अधिक अच्छा मानते हैं और उसकी पूरी देखभाल करते हैं। इसकी बोआई तक तीन जुताई की जाती हैं और बीज सितम्बर अक्तूबर में बोया जाता है। इसकी फसल जून में पकती है। लाल गेहूँ यहाँ की मुख्य किस्म है।

केसर : पामपुर के पठार में अक्तूबर-नवम्बर के महीनों में फूलों से लदी हुई केसर का दृश्य बड़ा आकर्षक होता है। इसकी खुशबू भी सबको अच्छी लगती है।

शिकार के लिए तैयार कश्मीरी मछियारा

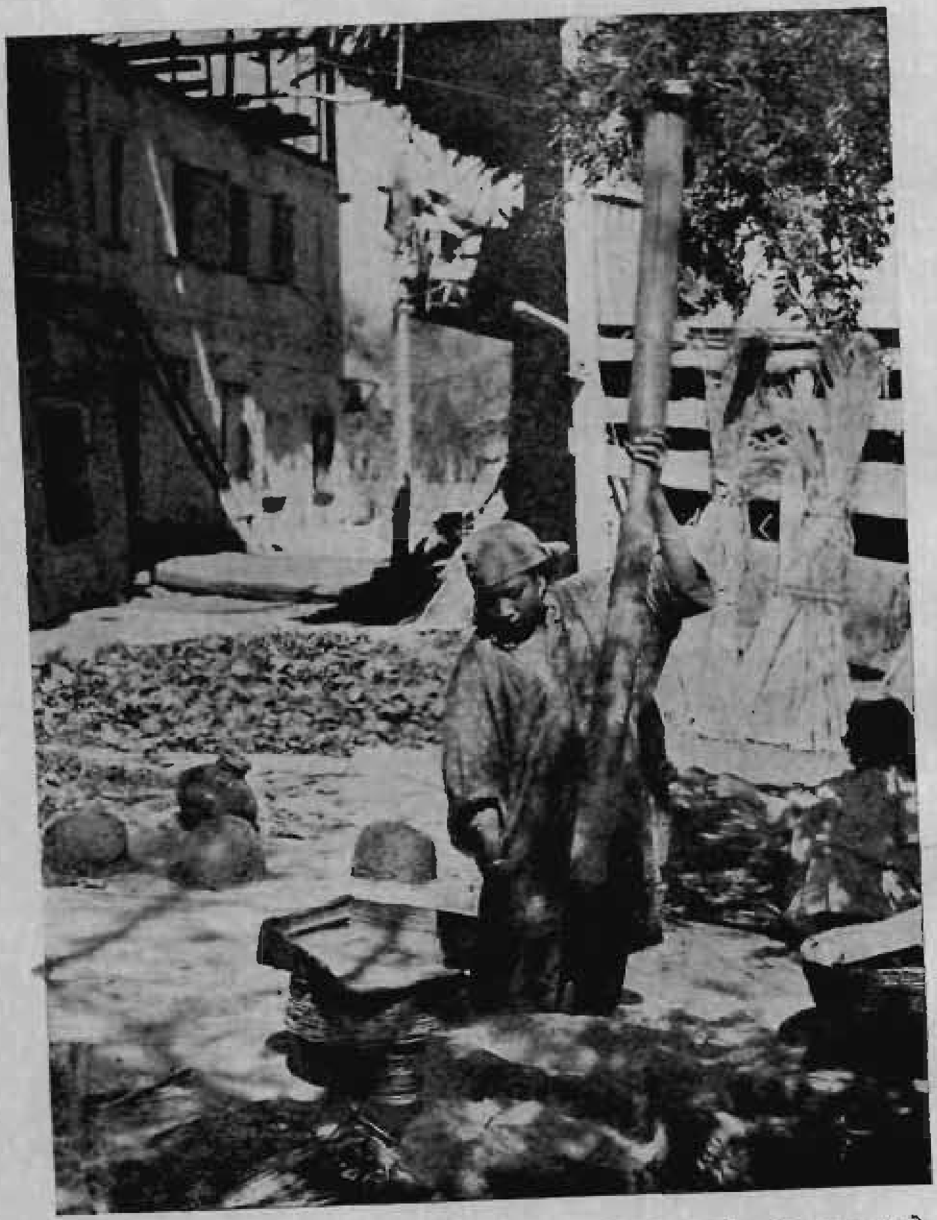

कश्मीर में धान से चावल अलग करने
का पुराना तरीका आज भी प्रचलित है

मिठाई में, दवा में, खुशबू के बढ़ाने के लिए सामाजिक तथा धार्मिक उत्सवों पर इसका विशेष उपयोग होता है। चन्दन के साथ इसे भी प्रयोग में लाते हैं। कश्मीर में अनादि काल से केसर का महत्व रहा है। संसार में कश्मीर सबसे अधिक केसर उगाने वाला प्रदेश है। इस कारण कश्मीरी लोग इसे बड़े गर्व से 'कश्मीरजा' भी कहते हैं।

केसर की खेती करना भी एक कठिन कला है। इसके बोने के लिए एक खास और ढलाऊ धरती की आवश्यकता होती है। जुलाई-अगस्त में इसकी गांठें बोई जाती हैं और पौधे लगाने के बाद किसान मिट्टी को तोड़ता है। खेत के चारों ओर नाली खोद कर पानी का निकास कर दिया जाता है। इसमें अक्तूबर के महीने में फूल निकल आता है। इनको इकट्ठा करके धूप में सुखाते हैं। फूल के अन्दर लाल केसरिया या जाफरानी रंग का मकरंद होता है जिससे जाफरान बनती है। यह अव्वल दर्जे की केसर होती है। मकरंद के नीचे के सफेद भाग में भी केसर होती है। परन्तु यह घटिया किस्म की होती है। जो केसर फूल के नीचे से इकट्ठी की जाती है उसको मुगरा जाफरान कहते हैं। मुंगरा को काट लेने के बाद इन फूलों को लकड़ी से पीट कर सबको पानी में डाल देते हैं। इस प्रक्रिया से फूल पानी से ऊपर आ जाता है और डंठल नीचे पानी की तली में बैठ जाते हैं। पानी के ऊपर तैरने वाले फूलों को फिर से सुखा लेते हैं और फिर इन्हें पीटते हैं। ऐसा कई बार किया जाता है। जितनी बार ऐसा किया जाता है उतनी घटिया किस्म की केसर होती है। इस केसर को लच्छा कहते है।

डल झील के तैरते हुए खेत

कश्मीर में केसर की खेती के बाद डल झील के तैरते खेत सबसे अधिक आकर्षक हैं। ये मैक्सिको के 'चाइनाम्पास' से मिलते जुलते हैं। इनकी सारी खेती और उपज बड़ी आकर्षक होती है। 'राढ़' या तैरते खेतों के बाग सरकण्डों के बनते हैं। इनकी चौड़ाई छः फीट तक होती है। ये नदी के सरकण्डों से बनते हैं। इनके चारों कोनों पर खड़े करके लट्ठे बाँध दिए जाते हैं। जब यह 'राढ़' आदमी का बोझ सँभालने के लायक हो जाता है तो इस पर घास फूंस और डाल देते हैं। यह 'पोकर' कहलाते हैं। एक राढ़ में तरबूज या टमाटर की या तरबूज और खीरे को चार क्यारियाँ होती हैं। तैरते खेतों में पौधे की खुराक सम्बन्धी सभी आवश्यकताएँ पूरी हो जाती हैं : जैसे खाद, या धूप और जल नमी आदि। यहाँ खेती बहुत अच्छी होती है। तैरते खेतों के मुकाबले की डेम्ब धरती होती है, जो झील के किनारे या झील के बीच में पाई जाती है जब कि झील का पानी सूखने लगता है। किसान पहले ऐसी जगह तलाश करके उसके चारों ओर सरकण्डे बो देता है फिर इसके अन्दर घास फूंस और कीचड़ डाल देता है जिससे जमीन पानी के ऊपर आ जाती है। इस जमीन के चारों तरफ झील का पानी बहता रहता है जिसमे खेतों में नमी रहती है। यह मिट्टी बहुत ही उपजाऊ होती है इसलिये इस प्रकार की नम धरती पर कई प्रकार की फसलें होती हैं जैसे लाहा, मक्का, तम्बाखू, तरबूज, आलू, प्याज, शलजम, बैंगन, मूली, सेम, आड़, खूबानी, बीही इत्यादि।

19.

खेतिहर जातियां

आम तौर पर यह सभी मानते हैं कि कश्मीरी लोग भारतीय आर्यों की ही संतान हैं। आरम्भ में इस घाटी में पिशाच, यक्ष और नाग जातियाँ रहती थीं। प्राचीन पुस्तकों में बहुत सी जातियों का वर्णन मिलता है जैसे निशाद्, खाशा, दरद्, भुट्ट भिक्ष, डमरा और तांत्रिन आदि। ईसा से दो शताब्दी पूर्व बौद्ध धर्म का प्रादुर्भाव हुआ और उसकी सहिष्णुता तथा धार्मिक जोश का लोगों पर बहुत प्रभाव हुआ और इस प्रकार से बहुत से लोग शीघ्र ही बौद्ध बन गये। 14 वीं शताब्दी में मुसलमानों ने इस घाटी पर आक्रमण किया और जहाँ-जहाँ वे गये वहीं उन्होंने लोगों का धर्म बदल दिया। उनके बाद सिख और फिर ईसाई यहाँ आये परन्तु इतने धार्मिक परिवर्तनों के होते हुए भी इस घाटी के निवासियों ने अपने विशेष व्यक्तित्व को बनाए रखा। "इम्पीरियल गजेटियर" में लिखा है कि कश्मीरी लोग मुगल, अफ़गान और सिखों के आव्रजन से सदैव अपरिवर्तनशील रहे। योद्धा और राजनैतिक आए और चले गये परन्तु कश्मीरियों के व्यक्तित्व को नहीं छू सके। कश्मीरियों ने अपना घर कभी नहीं छोड़ा।

उत्तर पश्चिम से दक्षिण पूर्व में, जो कश्मीर घाटी को चारों ओर से घेरे हुए है रहने वाले लोग जम्मू, पूंछ और दर्दिस्तान के हैं जो डोगरा, छिबाली और दरद कहलाते हैं। ये युद्धप्रिय जाति के लोग हैं जो घाटी पर बार-बार हमला करते थे। ये लोग निडर और विश्वमनीय, जुबान के पक्के और वफ़ादार होते हैं। ये जिनको वचन देते हैं उनके प्रति वफ़ादार रहते है। भारतीय सेना की कुछ विशेष टुकड़ियों में भी इस कौम के रंगरूट पाये जाते है।

यहाँ के मनुष्य स्वभाव और प्रकृति में एक दूसरे से भिन्न है। इनका वर्णन करते हुए पियर्स गरविस लिखते हैं कि जम्मू के लोग बहुत कम मुस्कराते और हँसते हैं।

गिलगित के लोग कभी ही मुश्किल से हँसेंगे क्योंकि उनका जीवन बहुत कठोर होता है और यहाँ पैदावार भी कम होती है। पूंछ के आदमी दोनों के बीच में है। यहाँ का आदमी सिपाही बनना भी पसंद करता है और बाद में पेंशन लेकर अपने घर आकर जमीन भी जोतता है। ये सभी जातियाँ विश्वसनीय सिद्ध हुई हैं और अपने मित्र की हर तरह से सहायता करने वाली हैं। ये आपको कैसी भी मुश्किल के समय में नहीं छोड़ेंगे। इनके बारे में एक सही कहावत है कि ये लोग बड़े साफ और स्पष्ट हैं। परन्तु ये लोग बड़े कट्टर भी हैं और अपनी स्त्री के प्रेम के मामले में बड़े खतरनाक है। जिसके पीछे पड़ जाएँ उसे लेकर ही रहते है। अपना सब कुछ कुर्बान

करके भी ये बिना किसी जाति भेद के जिससे भी प्रेम करेंगे उसे लेकर रहेंगे। यदि कोई स्त्री खूबसूरत हो तो उसकी रक्षा भी करेंगे। यदि खूबसूरत नहीं है तो वे उस पर निगाह ही नहीं डालेंगे और या कुछ दिनों के बाद उसे छोड़ देंगे। इनका उद्देश्य सिर्फ अपनी योग्यता दिखाने का होता है और उसे सिद्ध करने पर उनका जोश ठंढा पड़ जाता है। फिर भी वे विश्वास के योग्य व्यक्ति हैं। वे कभी अपने दोस्त या गुरु को नहीं लूटेंगे। यदि वे आपसे नफ़रत करते हैं या उन्हें यह यकीन हो जाय कि आप उनका अविश्वास करने लगे हैं तो वे आपको मार भी सकते हैं। यद्यपि उनको आक्रमणकारिणों ने दबाया है परन्तु विजेताओं ने भी उनको इतना सीधा नहीं पाया और हार कर भी उन्होंने अपना सिर गर्व से ऊँचा ही रखा है। वे विजेताओं के आगे भी न कभी गिड़गिड़ाते हैं और न उन्होंने कभी शासन वर्ग की खुशामद ही की है।

जम्मू के निवासी

डोगरा : पंजाब की सीमावर्ती पहाड़ियों के आस-सास के रहने वाली जाति डोगरा है। ये लोग हिन्दू धर्म को ही मानते हैं। जिस क्षेत्र में वे रहते हैं उसका नाम डूंगर है। ड्रियू के अनुसार उनका विकास जम्मू के पास की दो पवित्र झीलों से है। ये झीलें हैं सरो इंसर और मानसर। इनके कारण आस-पास का क्षेत्र संस्कृत में द्विगर्त देश कहलाता है अर्थात् दो झीलों का देश या डूगड़-डोगर कहलाता है। इन डोगरों में ऐसी ही जातियाँ हैं जैसी हिन्दुओं में और जातियाँ हैं। इन जातियों में कुछ जाति नामकरण के आधार पर हैं तथा कुछ पैतृक व्यवसाय के आधार पर बन गई हैं :—

मुख्य-मुख्य जातियों के नाम इस प्रकार हैं :

(1) ब्राह्मण, (2) राजपूत—मियां राजपूत और कामगर राजपूत, (3) खत्री, (4) ठाकुर, (5) जाट, और (6) धियर—मेघ और डम।

ब्राह्मण : यह जाति सबसे बड़ी और श्रेष्ठ जाति है। इनको धार्मिक रूप में सब ऊँचा मानते हैं। भारत के अन्य भागों की तरह यहाँ भी ब्राह्मणों को हिन्दू धर्म का एक पवित्र अंश मानते हैं। वे विद्वान हैं। उनको पंडित की पदवी दी जाती है। ब्राह्मण अपने पैतृक व्यवसाय को छोड़कर अधिक लाभपूर्ण व्यवसाय करने लगे है। कुछ तो पहाड़ियों में खेती का काम भी करते हैं। अखनूर के उत्तर और उत्तर पश्चिम के गाँवों में ये ज्यादातर काश्तकार हैं तथा यहाँ खेतिहर जातियों में अधिक तादात ब्राह्मणों की है।

राजपूत : सामाजिक कुलीनता की दृष्टि से दूसरी मुख्य जाति राजपूतों की है। यह जाति बहुत ही शताब्दियों से राज्य करती आ रही है। उसके कारण इस जाति में घमंड होना स्वाभाविक है। विशेषकर मियां तो अपने आपको राजपूतों से बहुत ऊँचा मानते हैं। ये लोग ज्यादा लम्बे नहीं होते। इनकी साधारण ऊँचाई 5 फुट 4 इंच तक होती है। ये छरहरे बदन के, उन्नत कन्धे, कुछ झुकी टाँगों वाले होते हैं। इनकी मांस-पेशियां ज्यादा सुडौल नहीं होतीं फिर भी ये शारीरिक शक्ति में बहुत अधिक फुर्तीले होते हैं। उनका रंग गेहुआँ या कुछ-कुछ बादामी सा होता है। ऐसा

ही रंग स्त्रियों का भी होता है। जो स्त्रियाँ पर्दे में शरीर को ढके रहती हैं उनका रंग अधिक साफ और सुन्दर लगता है।

ये लोग देखने में बुद्धिमान लगते हैं। इनका चेहरा नुकीला, कुछ छोटा, नाक नक्शा सुन्दर, गहरी भूरी आँखें, दाढ़ी, बाल हल्के काले होते हैं। पगड़ी के नीचे की ओर इनके बाल जरा घूघर वाले होते हैं और मूँछें उनकी और खिंची हुई होती है।

व्यवहार में राजपूत सीधे सच्चे बच्चों के से स्वभाव वाले होते हैं। यदि उनसे सीधी तरह बात की जाय तो मान जाते हैं। वे दखल पसन्द नहीं करते। जो बात उन्हें जच जाती है उसी पर अड़ जाते हैं और जिस रास्ते को पकड़ लेते हैं उसी पर जमे रहते हैं। जाति बन्धन और खानदान के उसूलों को बहुत मानते हैं। रुपये पैसों के मामलों में राजपूत और खासतौर से डोगरे कुछ कंजूस और लालची होते हैं।

राजपूतों के बहुत से भेद हैं। बहुत से भेद तो केवल इस कारण हो गए हैं कि वहाँ प्राकृतिक रूप से पहाड़ी देश अलग अलग खंडों में बँटा हुआ है। जैसे जाम्वाल, बालौरिया, जसरोटिया इत्यादि। अर्थात् इनका निकास क्रमशः पहले जम्मू राजवंश से, दूसरे बालाबार और तीसरे जसोटा राजवंश से है परन्तु मोटे तौर पर इनके दो फिरके हैं मियां और कामगर। मियां कोई काम नहीं करते और न खेती ही करते हैं। हल को हाथ लगाना अपमान समझते हैं। बहुत से मियाओं के पास थोड़ी-बहुत इनामी जमीन है जिसे वह औरों से बोआते हैं। इनके घर दूर और अलग होते हैं। ये या तो किसी जंगल के किनारे या बीच बीहड़ में होते हैं ताकि शिकार के द्वारा अपना वक्त आराम से व्यतीत कर सकें।

वे ज्यादा नौकरी का पेशा करते हैं। नौकरी में वे अपने राज्य की या फौज की नौकरी करते हैं जिसमें कि हाथ से काम न करना पड़े। ये लोग अच्छे और ईमानदार होते हैं और मालिक के प्रति वफादार होते हैं। ये झटपट काम करने वाले, तेज मिजाज, चतुराई रहित और मिलनसार होते हैं।

कामगर वे राजपूत है जो बहुत समय से खेती करने में लगे हुए हैं और उनकी एक अलग जाति बन गई है परन्तु और खेतिहर जातियों के मुकाबले में वे अच्छे किसान नहीं हैं।

ठाकुर : ठाकुर मुख्य रूप से खेतिहर कौम है। वे रहन सहन व स्वभाव में पंजाब के जाटों की तरह है परन्तु इनका एक दूसरे से कोई सम्बन्ध नहीं है।

छिबाली : अपने देश छिबाल के कारण ही ये लोग छिबाली कहलाते हैं। यह क्षेत्र चेनाब और झेलम के बीच की बाहरी पहाड़ियों का प्रदेश है। छिबाल शब्द छिब से निकला है और छिब एक राजपूत जाति का नाम है। वास्तव में आज के छिबाली और मुसलमान डोगरा जाति के हैं जो पहले हिन्दू थे। इनकी कुछ और जातियाँ भी डोगरा जाति की तरह से हैं। छिब, जराल और पाल इत्यादि मुसलमानों में भी पाई जाती है। राजपूतों के अतिरिक्त कुछ मुसलमान-जाट और कुछ ठाकुर-मुसलमान भी पाये जाते हैं। पीयर्स गरविस ने इनकी बनावट के बारे में लिखा है कि वे खूबसूरत रंग के होते हैं। उनकी आँखें नीली अंगूरी होती हैं तथा भूरे व सुनहरी बाल होते

बालक गोद में आते ही हर माँ के हृदय में ममता और आनन्द की लहरें उमड़ने लगती हैं यह कश्मीरी माँ भी इस से अछूती नहीं

प्रसन्न मुद्रा में दो डोगरा युवक गपशप में लीन

हैं। आदमी बहुत खूबसूरत होते हैं। परन्तु गिलगित के आदमियों के समान सख्त नहीं दिखते। घाटी के अन्य क्षेत्रों के युवकों के मुकाबले यहाँ के युवक खुशदिल होते हैं। लम्बी कद की नस्ल के होते हैं परन्तु शारीरिक बनावट में ज्यादा मजबूत नहीं होते। इनमें कोई मोटा आदमी बड़ी मुश्किल से ही मिलता है। उनका चेहरा लम्बा, रंग हल्का भूरा, लम्बी सुन्दर तोते की सी नाक, काले छल्लेदार बाल होते हैं। यहाँ की स्त्रियाँ तथा आदमी दोनों ही सुन्दर होते हैं। औरतें बुढ़ापे में भी सुन्दर लगती हैं। बुढ़ापे में आदमी दाढ़ी रख लेते हैं। एक और विशेष बात यह है कि ये अन्य कश्मीरी घाटी और लद्दाख के किसानों की तरह गन्दे नहीं होते। इनका धर्म बन्धन भी सख्त नहीं होता। उनकी स्वाभाविक स्वतन्त्रता ने ही उन्हें धार्मिक रूढ़ियों से मुक्त कर दिया है। इनकी स्त्रियाँ बाल्टिस्तान की स्त्रियों की तरह से ही बिना घूँघट के घूमती फिरती हैं। परदेशी को देखकर वे भागती नहीं हैं और अपना काम बराबर करती रहती हैं। ये लोग कट्टर और विश्वास करने वाले होते हैं। यदि उनके प्रेम को जीत लिया जाए तो वे मित्र को धोखे में नहीं रखते। वे रहमदिल भी होते हैं। वे चाहते हैं कि उनकी पत्नियाँ केवल उनकी ही बनकर रहें और वे पत्नी की बेवफाई को कभी भी माफ नहीं करते।

दर्दिस्तान के निवासी

दरद जाति : दर्दिस्तान के लोग मुसलमान हैं। गिलगित में शिया और सुन्नी तथा श्रीनगर में शिया रहते हैं। अली इलाही के फिरके के लोग हुंजा में रहते हैं। ये अली को ही खुदा मानते हैं। दूसरी जगहों पर मुल्लाई फिरके हैं। इन लोगों के चौड़े कन्धे और मजबूत शरीर होते हैं। शरीर के सब अंग मजबूत होते हैं। ये लोग बहुत चपल और होशियार होते हैं। अच्छे पर्वतारोही, आजाद और बहादुर होते हैं। किसी से दबने वाले नहीं होते और अपने हक के लिए लड़ते मरते हैं। अत्याचार का मुकाबला करने वाले हैं। वे कमजोर या बुजदिल नहीं होते। यदि उनसे ठीक से व्यवहार किया जाय तो वे अहसानमंद भी होते हैं। वास्तव में यह कौम होशियार है यद्यपि ये घाटी के और लोगों के मुकाबले में बुद्धिमान नहीं होते फिर भी इनका दिमाग अच्छा होता है। वे बहादुर होते हैं लेकिन आदमी के खून के प्यासे नहीं होते। ये हरेक से बराबरी का बर्ताव करते हैं और चापलूसी नहीं करते। वे किसी से डरते भी नहीं है और न गुस्ताख ही होते हैं।

दरद लोग ऊनी कपड़े पहनते हैं चाहे वे गरम जगह पर ही क्यों न रहते हों। गरमी में रुई के कपड़े यदि मिल जायें तो पहन लेते हैं। इनकी वेषभूषा में पायजामा, चोगा, कमरबन्द टोपी या पगड़ी इत्यादि हैं। उनकी टोपी आधे गज लम्बे ऊन के थैले जैसी होती है। इसे यह मोड़कर सिर पर आराम के लिए रख लेते हैं। पैरों पर पट्टी बाँधते हैं उनके नीचे चमड़े के टुकड़े रखते हैं। कभी-कभी ये पैरों पर चमड़े की पट्टी ही बाँधते हैं।

दरदों की पांच उपजातियाँ हैं : (1) रौन, (2) शिन, (3) याशकुन, (4) क्रोमिन, और (5) डम।

दरदों में याशकुन सबसे ज्यादा हैं। गिलगित और अस्टर में खेती करने वाले लोग रहते हैं। ऐसा मालूम होता है कि शिन तथा दरद ही सबसे जमीन को हथिया कर यहाँ आबाद हो गए थे। यहाँ की सबसे ऊँची कौम शिन ही है। कुछ दूरस्थ एवं एकांत जगहों पर वे ज्यादा तादात में भी पाये जाते हैं। लेकिन गिलगित में ये याशकुनों के मुकाबले कम हैं और न एस्टर में ही हैं। ठीक इसी प्रकार जैसे और मुसलमान लोग सूअर से नफरत करते हैं ये गाय से नफरत करते हैं। ये गाय का दूध तक भी नहीं पीते, न उसका मक्खन ही बनाते हैं और न गोबर के उपले जलाते हैं। खेती के काम में वे अवश्य पशुओं की सहायता लेते है। जब गाय का बछड़ा होता है तब वे लकड़ी की सहायता से उसका मुंह गाय के थनों में लगाते हैं और उसे अपने हाथ से छूना पसन्द नहीं करते।

कश्मीर घाटी के निवासी

इस घाटी के निवासी बड़े होशियार, हँसमुख, प्रकृति उपासक तथा तीव्र बुद्धि के होते हैं। ये गाना भी बहुत पसन्द करते हैं। ये भाग्यवादी हैं तथा भगवान का नाम लेकर दुखों को झेलते रहते हैं और दुर्घटनाओं को अपना दुर्भाग्य समझते हैं।

यहाँ के गाँवों में अपराध नहीं होते हैं। यहाँ सम्पत्ति सुरक्षित है किन्तु कभी-कभी चोरी या कत्ल जरूर होते हैं। अगर कहीं झगड़ा हो जाता है तो मामूली कहा-सुनी या ज्यादा से ज्यादा पगड़ी उछाल दी जाती है।

कश्मीरी कोई भी काम कर सकता है। वह चतुर किसान भी है, वह होशियार बागवान भी है और अच्छी फसल पैदा करना भी जानता है। वह होशियार जुलाहा भी है और आला दर्जे के कम्बल भी बना सकता है। गाँवों में मध्यवर्ती वर्ग के लोग कम रहते हैं और वह सारा व्यापार स्वयं ही करता है। इससे उसकी निगाह तेज हो गई है और उसका दक्ष-कौशल भी बढ़ गया है। वह कभी जान बूझकर नुकसान का सौदा नहीं करता। कश्मीरी पुरातनवादी है। हरेक खेती के काम में वह किसी न किसी प्राचीन कहावत को लेकर चलता है। अन्य कलाकार लोगों की तरह उसे भी अतिश्योक्ति की आदत है। और यह बात उस समय प्रकट होती है जब वह अफसरों से बातचीत करता है और निजी जीवन की बातों को बढ़ा चढ़ा कर कहता है। वह हर बात को बढ़ा चढ़ा कर कहना ही पसन्द करता है चाहे गर्मी, सर्दी, बरसात कुछ भी हो वह अतिश्योक्ति के साथ ही उसकी चर्चा करेगा। अपने से बड़े को वह 'हज' या 'संत' कहता है। वह बराबर वाले को 'सा' कहता है जो साहब का अपभ्रंश है और छोटों को 'बा' या भाई कहकर पुकारता है।

किसान का घरेलू जीवन बहुत अच्छा है। वह अपने स्त्री बच्चों से खूब प्रेम करता है। वह तलाक के झगड़ों को बिल्कुल पसंद नहीं करता। अगर कोई स्त्री दुराचरण करती है और यह बात यदि गाँववालों को मालूम हो जाती है तो गाँव के सभी आदमी उसके प्रतिकूल हो जाते हैं। पति अनुशासन रखने के लिए कभी-कभी अपनी पत्नी को घुड़कता भी है। वास्तव में यहाँ के सामाजिक जीवन में पति और पत्नी का स्थान बराबर है और वह उसकी सच्ची सहायक और साथी है।

इस घाटी के निवासियों के कपड़े सीधे और ढीले ढाले होते हैं। आदमी और औरत के कपड़ों में कोई खास भेद नहीं होता क्योंकि दोनों ही लम्बा कुर्त्ता पहनते हैं जो नीचे पैरों पर लटका रहता है। चोगे के नीचे की ओर वजनदार कपड़ा सी दिया जाता है जिससे हवा आदि न जा सके और कांगड़ी की गरमी अन्दर ही अन्दर रहे। कांगड़ी मिट्टी का कमंडल जैसा होता है जो बैंत की बुनावट से ढका रहता है। जाड़ों में और कभी गर्मियों में भी उसमें कोयले रख दिए जाते हैं और चोगे के नीचे की तरफ लटका दी जाती है। छोटे-छोटे बच्चे भी रात दिन इसी कांगड़ी को लटकाये बाहर घूमते रहते हैं।

दरअसल मामूली किसान की पोशाक एक टोपी, कुर्त्ता और धोती है। जब वह काम करता है तो एक सूती टोपी पहने रहता है, परन्तु खास-खास मौकों पर सफेद पगड़ी बाँध लेता है। चमड़े के जूते ज्यादातर बड़े आदमी पहनते हैं। बाकी आम आदमी त्यौहारों के मौकों पर ही चमड़े के जूते पहनते हैं। अधिकतर लोग साधारण चमड़े की एक प्रकार की सैंडिल पहनते हैं जिसे 'सपली' या 'फुलारू' कहते हैं। बरसात में ये लकड़ी की खड़ाऊँ भी पहन लेते हैं। बहुत से आदमी अपना 'फुलारू' धान के पतले डंठलों का बना लेते हैं।

यह सभी जानते हैं कि 14 वीं शताब्दी तक इस घाटी के निवासी हिन्दू ही थे और इस शताब्दी के अन्त में ये लोग मुसलमान बनाये गये। इस धर्म परिवर्तन में शाही हमदान और उसके अनुयायियों का बहुत बड़ा हाथ रहा। वह बड़ा जालिम मूर्ति विध्वंसक शासक था तथा सिकन्दर के वंशजों में से था। कहा जाता है कि इसके अत्याचार के कारण घाटी में केवल हिन्दुओं के ग्यारह घर बच रहे थे। उन हिन्दुओं के वंशज आज तक पाये जाते हैं और ये 'मलमास' कहलाते हैं। ये दक्षिण के अन्य हिन्दुओं से अलग हैं जो बाद में यहाँ आये। ये लोग 'बनमास' कहलाते हैं।

इस घाटी के हिन्दुओं में अधिकतर ब्राह्मण हैं। यह कहावत चली आती है कि यहाँ के ये 'लिजवायले' ब्राह्मण बड़े बलशाली हैं और वे इस क्षेत्र में तथा यहाँ के शासकों पर बड़ा प्रभाव रखते हैं। पुरानी पुस्तकों में लड़ने वाली जातियों का वर्णन भी मिलता है। इस कारण यह प्रतीत होता है कि प्राचीन हिन्दू अधिकतर किसान, जाट और वैश्य थे। अब इन जाटों का कुछ पता नहीं लगता किन्तु अब भी श्रीनगर में खत्री खूब मिलते हैं। इन्हें बोहरा कहते हैं। ये पंजाब के खत्रियों से अलग हैं। परन्तु कुछ मुसलमान अब भी ऐसे हैं जो अपना निकास खत्रियों से ही बताते हैं।

घाटी की मुख्य-मुख्य जातियों का वर्णन निम्न प्रकार है :—

ब्राह्मण : ब्राह्मण अधिकतर पंडित कहलाते हैं। उनके तीन भेद हैं—ज्योतिषी, गुरु या बघावट और कारकून। इनमें अन्तर्जातीय विवाह नहीं होता। क्योंकि ब्राह्मण अपने आपको दैविक और साधारण मनुष्यों से कुछ ऊँचे समझते हैं। ज्योतिषी और कारकून आपस में विवाह कर लेते हैं।

ज्योतिषी शास्त्रों के पंडित और बड़े विद्वान होते हैं। वे जन्मपत्री बनाते हैं जिसमें भविष्य का वर्णन होता है। पुरोहित धार्मिक कृत्य करते हैं। परन्तु अधिकतर

पंडित कारकून ही होते हैं और अपनी जीविका राज्य की नौकरी करके कमाते हैं। कारकून पंडित समझते हैं कि उनकी जीविका लेखनी है। ये लोग खेती तथा अन्य व्यापार भी करने लगते हैं परन्तु ये दफ्तर में क्लर्की करना ज्यादा अच्छा समझते हैं।

यहाँ के गाँवों के पंडित खेती करना, खेतों में खाद ले जाना इत्यादि बातों को बुरा नहीं समझते। परन्तु शहर का पंडित कृषि के काम को हेय समझता है। वह गाँव से बहू ले जाना पसंद करेगा परन्तु यदि कुछ भी हैसियतदार हुआ तो अपनी लड़की कभी गाँव में नहीं देगा। पंडितों की सुन्दर जाति है। इनके नाक नक्श भी सुन्दर होते हैं। उनके छोटे हाथ पांव और सुन्दर आकृति होती है। इनकी स्त्रियाँ भी बड़ी सुन्दर और बच्चे भी बड़े खूबसूरत होते हैं।

सिक्ख : इस घाटी के सिक्ख शुरू में पंजाब के ब्राह्मण थे। इनको लम्बी दाढ़ी, वेषभूषा और बालों के कारण आसानी से पहचाना जा सकता है। उनका पहनावा भी स्थानीय मनुष्यों से भिन्न होता है क्योंकि ये लम्बा चोगा नहीं पहनते। ये अधिकतर त्राहाल परगना, क्रिहुन और हमाल में भी पाये जाते हैं। यद्यपि वे किसान हैं परन्तु चावल की खेती में वे कश्मीरी मुसलमान का मुकाबला नहीं कर सकते। उनका शारीरिक गठन अच्छा होता है और देखने में भद्दे नहीं लगते।

शेख : गाँव के अधिकतर मुसलमान शेख हैं। वहाँ पहाड़ी **सैयद** भी बहुत हैं परन्तु वे मुगल और पठान दोनों मिलकर भी शेखों से कम हैं।

शेखों की चार श्रेणियाँ हैं : (1) पीरजाद वे हैं जो एकदम इस्लाम धर्म में आ गए। ये अपने आपको सैयदों के बराबर समझते हैं और उनसे शादी ब्याह भी[1] कर लेते हैं, (2) बाबा, भी धर्म परिवर्तित मुसलमान हैं परन्तु अब अधिकतर फकीर हैं, (3) ऋषि, ये अधिकतर पुराने कश्मीरियों द्वारा बनाई गई दरगाहों में रहते हैं, ये दरगाहें किसी समय पुराने दरवेशों ने कायम की थीं। ऋषि संस्कृत के रिखी शब्द का अपभ्रंश ही है, और (4) मुल्ला, ये पुजारी हैं। इनकी भी दो किस्में हैं। एक तो वे जो कानूने-इलाही के विद्वान हैं। इनमें मौलवी, काजी, अखंड और मुफ्ती आते हैं, दूसरे वे जो अपनी हैसियत से गिर गये हैं और अब माल कहलाते हैं। इनका काम मुरदों को नहलाना और दफनाने के लिये तैयार करना तथा कब्र खोदना है। ये लोग मुल्लाओं व शेखों से शादी नहीं करते।

सैयद : इनके भी दो फिरके हैं। (1) वे जो धर्म गुरू या पीर मुरीद होते हैं। (2) वे जो खेती या अन्य काम करते हैं। शेखों के मुकाबले में वे लोग बाहर के माने जाते हैं। परन्तु बाहरी तौर पर उनकी शक्ल तरीके और रहन सहन से ऐसा मालूम नहीं होता कि वे औरों से ज्यादा भिन्न लगें। गाँवों में सैयद खानदान के लोग हैं जो बड़ी इज्जत से रहते हैं। ये अब खेती करने भी लग गए हैं। खेती करके लोग अब सभी गाँववालों से हिल मिल गए हैं। इनका आपस में रोटी बेटी का सम्बन्ध भी है।

मीर : मीर नाम सैयदों का है। जब तक कोई मजहबी पेशा करता है तब

अपनी परम्परागत आकर्षक वेशभूषा में
सजी हुई कश्मीर घाटी की एक नारी

अपनी विशेष वेशभूषा में बकरवल
समुदाय की एक प्रसन्न युवती

तक उसके नाम के आगे 'मीर' शब्द लगाया जाता है परन्तु जब वह दूसरा पेशा करने लगता है तब उसके नाम के आगे से मीर शब्द हटा दिया जाता है।

मुगल : कश्मीर में इनकी संख्या बहुत कम होने से तथा अन्य मुसलमानों के साथ शादी विवाह करके घुलमिल जाने से इनके विकास का पता नहीं चलता है। ये लोग कश्मीर में पहले मुगल बादशाहों के जमाने में आये थे। ये अपने नाम के साथ मिर्जा (मीर) बेग, बंदी, बच और आशे इत्यादि शब्द लगाते हैं।

पठान : ये संख्या में कश्मीर के मुगलों से अधिक हैं। उत्तर में मच्छीपुर तहसील में उनकी तादाद ज्यादा है। जहाँ पर पठानों की बस्ती बसाई गई है वहीं पर कुछ बस्तियाँ, ककी, खेल, अफ्रीदी और द्रंगहेहामाओं की भी है। इन्होंने अपने सभी पुराने रिवाजों को कायम रखा है और ये पश्तो भाषा बोलते हैं। उनकी पोशाक भी आकर्षक होती है। वे तलवार और ढाल भी रखते हैं। उन्हें अपनी बहादुरी का घमंड है। यदि उन्हें वास्तव में कोई शत्रु लड़ने को न मिले तो वे भागते रीछ या छोटे मेढ़े पर ही हमला कर देते हैं।

डम : यह भी यहाँ की मुख्य कौम है और गाँवों में उनका बहुत असर है। डम गाँवों का चौकीदार होता है। वह चौकीदारी के काम के अलावा फसल की रखवाली भी करता है।

गल्वान : ये घोड़े रखने वाले सईस कहलाते हैं। इनको डमों का वंशज कहा जाता है। वैसे इनका रंग काला होता है जिससे पता चलता है कि ये लोग मुसलमानी काश्तकारों की कौम के नहीं हैं। कुछ लोग इनको शाक वंश के भी कहते हैं।

चौपान : कश्मीर के गड़रिये चौपान या पोहल कहलाते हैं। कश्मीर घाटी के अन्य किसान जातियों से ये ज्यादा अलग नहीं लगते किन्तु ये फिर भी एक अलग जाति के हैं जो कभी-कभी गल्वानों से विवाह आदि कर लेते हैं। ये खुशमिजाज होते हैं और सीटी बजाते रहते हैं और ऊँचे पहाड़ों पर स्वथ्य जीवन बिताते हैं। इसी कारण ये खूब मजबूत और हट्टे-कट्टे होते हैं। इनको पेड़ पौधों का भी ज्ञान होता है। ये हकीमों के लिए जड़ी-बूटियाँ लाते हैं। ये चरागाहों को आपस में बाँट लेते हैं और दूसरे को उसमें घुसने नहीं देते। जाड़ों में वे पहाड़ों के बजाय गाँव में रहते हैं जहाँ उनकी थोड़ी बहुत खेती की जमीन होती है। इनमें जो सिरगूजरी या दूध बेचने वाली स्त्रियाँ होती हैं वे बग्गी कहलाती हैं।

बंद : कश्मीरी भगत (भजन गाने वाले) बंद कहलाते हैं। वे अपने लम्बे काले बाल और चाल-ढाल से अलग ही पहचाने जा सकते हैं। इनका व्यवसाय गाना बजाना, कला अभिनय, नृत्य और भीख माँगना है। ये घुमंतु होते हैं और हिन्दुस्तान के सभी प्रदेशों में घूमते-फिरते रहते हैं। जहाँ जाते हैं वहीं कश्मीरी लोक-संगीत से लोगों का मनोरंजन करते है।

अकंघम कम्पनी को छोड़कर जो पंडितों की है बाकी सभी भगत मुसलमान हैं। शादी या दावतों में इनकी बहुत जरूरत पड़ती है। फसल को कटाई के दिनों में वे

किसानों का मनोरंजन करके अपना पेट पालते हैं। उनके बाजे चार प्रकार के होते हैं सारंगी, ढोल, नफीरी और ढोलक। उनकी एक टोली में लगभग 20 आदमी होते हैं। इनका अभिनय बड़ा अच्छा होता है। ये अच्छा गाते हैं और नकल भी खूब उतारते हैं। ये बड़े निडर और सुधारवादी होते हैं और बिना नतीजे की परवाह के कोई भी काम कर डालते हैं।

हंजी : ये कश्मीर के नाविकों की एक मुख्य जाति है। किसी को इनके विकास का पता नहीं है। पर उनका व्यवसाय पुराना है। इतिहास कहता है कि पर्वतसेन राजा ने इन नाविकों को सिंघलद्वीप से बुलाया था। ये कौम से वैश्य हैं। कश्मीर के हंजियों में यह आम रिवाज है कि यदि कोई इनके व्यवसाय को हेय दृष्टि से देखता है तो ये उसे शूद्र कहते हैं। ये हजरत नूह को अपना पूर्वज मानते हैं।

इनके कुल में बाप ही सर्वेसर्वा होता है और लड़का या लड़की जो भी कमाता है सभी बाप ले लेता है। अगर लड़का विवाह करना चाहता है तो उसे अपने पिता की रजामन्दी लेनी पड़ती है जो अक्सर मना भी कर देता है क्योंकि कश्मीर की किश्तियों में युवा युवतियों के लिये अधिक स्थान नहीं रहता।

हंजियों की अनेक उपजातियाँ हैं। कुछ तो डल झील के पानी में घूमने वाले लोग हैं जो वास्तव में सब्जी की खेती करते हैं। वुलर झील के नाविक सिंघाड़े की खेती करते हैं। ये दोनों अपने आप को उच्च कोटि का समझते हैं। दूसरे इनसे नीचे किस्म के नाविक हंजा बड़ी-बड़ी किश्तियों में रहते हैं और किश्तियों में अनाज या लकड़ी इत्यादि ढोकर लाते ले जाते हैं। इनसे नीचे डोंगा या सवारियों की किश्ती के मालिक होते हैं जिनको नाला मार कहते हैं। इनसे नीचे गद हंज होते हैं। ये अच्छे व्यावसायिक मछेरे हैं। इनका काम मछली पकड़ना होता है। एक कौम इनमें हक हंज भी है जो नदियों में बहके आई हुई लकड़ियाँ उठाकर अपनी रोजी चलाते हैं। डंगा और गद हंज गालीगलौज के लिए मशहूर हैं। इनमें जब दो कुटुम्बों में झगड़ा होता है तो एक औरत किश्ती के इस किनारे पर और दूसरी किश्ती के दूसरे किनारे पर खड़ी होकर खूब गाली-गलौज करती हैं और आने-जाने वाले आदमी किश्ती में बैठ कर खूब सुनते रहते हैं। इस प्रकार लड़ते-लड़ते रात हो जाती है और झगड़ा समाप्त नहीं हो पाता और ये लड़ते-लड़ते थक जाते हैं तो चावल की टोकरी को जो पाई कहलाती है उलट कर रख देते हैं जिसका अर्थ होता है कि अभी झगड़ा खत्म नहीं हुआ है और अगले दिन फिर पूरी ताकत के साथ शुरू होगा। हंजी बड़े मेहनती हैं और उनके साथ बहुत बड़ी-बड़ी किश्तयाँ होती हैं। जाड़ों में ये किश्तयों में अपने कमरे बना लेते है जो गरम रहते हैं। कश्मीर की आधी से अधिक कहानियाँ हंजियों की अपनी मनगढ़न्त हैं। ये आयरलैंड के मोटर ड्राइवरों की तरह मुसाफिरों को अजीब-अजीब कहानियां सुना कर उनका मन बहलाते हैं और इस तरह उनसे पैसे माँगते रहते हैं। वे बहुत होशियार और मेहनती हैं। ये अनाज का व्यापार करते हैं और यात्रियों का खाना पकाते हैं तथा पैसा कमाने में बड़े होशियार हैं।

अथक श्रम करने के बाद आराम
करता हुआ प्रसन्न हंजी परिवार

चाय अब तो भारत का राष्ट्रीय पेय बन गया है
और यह कश्मीरी परिवार भी इससे अछूता नहीं है

वतल : ये कश्मीर के बन्जारे या जिप्सी कहलाते हैं। ये बड़े अजीब लोग हैं और इनका स्वभाव भी बड़ा अजीब है। इनके दो भेद हैं—एक वे जो मुर्दा जानवरों को नहीं खाते हैं और मसजिदों में आते जाते हैं तथा मुसलमान धर्म को मानते हैं। दूसरे वे हैं जो मुर्दा जानवर का गोश्त खाते हैं और मसजिदों में नहीं घुस सकते। यह घुमंतु लोग हैं। ये लोग कहीं-कहीं किसी गाँव में जाकर भी बस जाते हैं परन्तु घूमने की आदत से मजबूर होने के कारण फिर गाँव को छोड़कर निकल जाते है। इनका मुख्य व्यवसाय चमड़ा कमाना है। इनकी आबादी ज्यादातर किसानों की झोपड़ियों से हटकर गाँव से दूर पर होती है।

वे मरे जानवर जैसे भैंस, भेड़-बकरी आदि की खाल कमाते हैं। मुर्गी पालन का काम भी करते हैं। वतलों की औरतें बड़ी खूबसूरत होती हैं और शहरों में जाकर नाचने-गाने का पेशा करती हैं।

नंगर : उपरोक्त जातियों के अलावा गाँव में शूद्र भी होते हैं जो किसानों की बस्ती से बाहर रहते हैं। ये लोग नंगर कहलाते हैं और गाँव में बढ़ई, कुम्हार, लुहार, जुलाहे, कसाई, धोबी, नाई, दर्जी, रोटी पकाना, सुनार, सक्का, तेली, रंगरेज, धुना, हुलास या सूंघनी तैयार करने इत्यादि का काम करते हैं और उसके बदले में फसल का हिस्सा या नकद पैसे लेते हैं। मकानों के पास के बगीचों की थोड़ी सी जमीन को छोड़कर इनके पास अपनी कोई जमीन नहीं होती।

गूजर : ये अर्ध घुमक्कड़ जाति हैं। ये घाटी के आस-पास की पहाड़ियों पर भैंस तथा बकरी चराने का व्यवसाय करते हैं। ये और इनके पशु चपटी छत के मकानों में रहते हैं। यद्यपि ये लोग मुसलमान ही होते हैं परन्तु कश्मीरियों से ज्यादा हिलते मिलते नहीं। ये बड़े खूबसूरत लम्बे-तगड़े, भावहीन मुखमुद्रा लिए हुए होते हैं। इनके दाँत बाहर से ही सफेद दिखाई देते हैं। इन्हें केवल अपने जानवरों की रक्षा का ही अधिक ध्यान रहता है। खेती में वे मक्का जानवरों के लिए पहले उगाते हैं खाने के लिए बाद में। वैसे ये लोग सीधे साधे और उदार प्रकृति के होते हैं। ये सबका विश्वास कर लेते हैं। इनकी अशिक्षित औरतें जितना मक्खन या दूध बनियों को देती हैं उनका हिसाब रस्सी में गाँठ बाँधकर रख लेती हैं। मोहम्मद इनमें एक लोक-प्रिय नाम है। इनमें बड़ों को भाई कहकर सम्बोधित करते हैं।

पूर्वोत्तर पर्वतों के निवासी

पूर्वोत्तर पर्वत शृंखलाओं पर बसने वाली जातियाँ लद्दाखी, चम्पा और बाल्टी हैं। ये तिब्बती जातियों से निकली हैं। लद्दाखी अभी तक बौद्ध धर्म को मानते हैं जो बहुत वर्षों से तिब्बत के पूर्वी भाग के निवासियों का धर्म रहा है। ये लोग सिन्धु की घाटी और आस-पास की घाटियों में छोटे-छोटे गाँवों में बस गये हैं। चम्पा पशुपालक जाति है। ये ऊपर की घाटियों में घूमते फिरते रहते हैं। बाल्टी तिब्बती जाति का वह भाग है जो कभी सिन्धु की घाटी में आकर बसे और मुसलमान हो गये।

लद्दाखी : इनकी तूरानियों की सी शक्ल होती है और ये लोग पक्के चीनी या उनके नमूने जैसे लगते है। इनके गालों की हड्डियाँ उठी हुई होती हैं और चेहरा नीचे

की ओर पतला होता चला जाता है। इनकी ठोड़ी छोटी और पीछे की ओर झुकी हुई होती है। इनकी आँखें तिकोनी और छोटी-छोटी होती हैं और भौएँ मांसल होने के कारण आँखों के ऊपर लटकी रहती हैं। नाक पिचकी, चेहरा चौड़ा और भावहीन होता है। होंठ आगे को निकले होते हैं परन्तु मोटे नहीं होते। बाल काले होते हैं और आगे और दायें बायें कटे हुए रहते हैं, पीछे की ओर बालों का जूड़ा होता है या एक चुटिया सी लटकी रहती है। मूँछें बहुत छोटी-छोटी होती हैं। दाढ़ी भी बड़ी छरहरी होती है। इनका कद छोटा होता है। इनमें लगभग 5 फुट 2 इंच तक के पुरुष और 4 फुट 10 इंच तक की स्त्रियाँ होती हैं। मर्द औरत दोनों ही मजबूत और चौड़े होते हैं। उनके अच्छे से अच्छे मित्र भी यही कहते हैं कि ये एक खूबसूरत जाति नहीं है। औरतों के बारे में भी यही कहा जा सकता है। हाँ, कम उम्र की युवतियाँ या किशोरियाँ अवश्य बहुत भद्दी नहीं लगतीं।

लद्दाखी बड़े खुश मिजाज और अच्छे स्वभाव के होते हैं। ये हर वक्त हँसते रहते हैं और चंग पीकर लड़ने लगते हैं और फिर सब कुछ भूल जाते हैं। चंग पीने के लिए सदैव लालायित रहते हैं।

लद्दाख में ज्यादातर लोग बौद्ध हैं। इनके दो फ़िरके होते हैं—लाल टोपी वाले और पीली टोपी वाले। लाल टोपी वाले ज्यादातर कट्टर पंथी हैं। लद्दाख में घुसते ही आपको बड़े-बड़े मठ और लम्बे चोगे पहनने वाले लामा दिखाई पड़ेंगे। यहाँ हर परिवार में कम से कम एक आदमी लामाओं की लाल टोपी पहिने या एक स्त्री भिक्षुणी की पोशाक 'चोमो' पहने हुए अवश्य होगी। धर्मानुसार धार्मिक लद्दाखी हर समय भक्ति से मठों की ओर देखते हुए माला फेरता मिलेगा। इन मठों में ही सैकड़ों लामा भी रहते हैं। हरेक मठ के साथ खेती की जमीन मिली रहती है। इसकी उपज से मठ का निर्वाह होता है।

बहुत संख्या में होते हुए भी लामाओं की यहाँ बड़ी इज्जत है और ये लोग धार्मिक गुरु माने जाते हैं। मेजर गोम्पर्टज ने अपनी किताब जादुई लद्दाख (मैजिक लद्दाख) में लामाओं के जीवन के सभी पहलुओं का वर्णन किया है। यह पढ़ना लिखना सीखते हैं, मन्त्र जपना सीखते हैं, बौद्ध ग्रन्थों का अध्ययन करते हैं और टैंगयूर और कंगिर बौद्ध ग्रन्थ, जिनके क्रमशः 108 भाग और 63 भाग हैं, का अध्ययन करते हैं।

लद्दाखी लामा

एक लामा युवक यहाँ धार्मिक पूजा करना सीखता है और धार्मिक वाद्य यन्त्रों को बजाना भी सीखता है। इन वाद्य यन्त्रों में बड़े कढ़ाव के शक्ल के ढोल, क्लारनेट, झांझ, बड़ी-बड़ी 7-8 फुट तक लम्बी पीतल या तांबे की तुरही इत्यादि होते हैं। वह 'डोरजे' कातना सीखता है। यह लामाओं की साधना की पवित्रता को नापने का एक मापदंड है। डमरू बजाना भी सीखता है। ये छोटा डमरू डंडी से बजाया जाता है। सबसे बढ़िया डमरू आदमी की खोपड़ी की हड्डियों से बनाया जाता है। यह राक्षसों के भगाने के काम में भी आता है।

वह धर्मानुसार चंग (एक देशी लद्दाखी जौ की शराब) का भोग लगाना भी सीखता है और विशेष त्यौहारों पर भुने अनाज और मक्खन ढेरी (पिरामिड) बनाना भी सीखता है। यह भूत प्रेतों को भगाने या वश में करने वाले मन्त्र बोलना सीखता है। जब वह बौद्ध धर्म का प्रचार करने के लिए जाता है तब ये सभी चीजें काम आती हैं।

वह आपको कभी किसी बूढ़े लामा के साथ विवाह या मृत संस्कार में जाते हुए मिलेगा और उसके साथ उस समय पीतल के पतरों पर लिखे धर्म ग्रन्थ और पीतल की मूर्ति भी होंगे। इस प्रकार वह धर्म की रचनात्मक शिक्षा भी लेता है।

लद्दाख के लामा

इन सब कार्यों में रुचि दिखाकर ही सच्चा लामा बना जा सकता है। उनको अन्य कला कौशल का ज्ञान कराया जाता है जैसे धातु और लड़की पर मन्त्रों की खुदाई की कला, धातु, लकड़ी या प्लास्टर की मूर्तियों के साँचे बनाना, दीवारों पर चित्रकारी करना भी उसे सीखना पड़ता है। क्योंकि इन कलाओं के बिना बौद्ध मठों को नहीं सजाया जा सकता अर्थात् ये सभी कलाएँ यहाँ के धार्मिक जीवन का मुख्य अङ्ग हैं। इसके साथ-साथ वह जन्मपत्री बनाना भी सीखता है। उसे विवाह का मुहूर्त, बच्चों के नाम, मृतक संस्कार का दिन आदि निश्चित करना सिखाया जाता है।

लद्दाखियों में बहुपति प्रथा प्रचलित है। यहाँ बड़े बेटे का विवाह होने पर उसकी स्त्री सब छोटे भाइयों की कानूनन स्त्री बन जाती है और इस तरह से इस स्त्री के बच्चों के एक बड़ा बाप, बाकी सब छोटे बाप होते हैं। इस रिवाज से लद्दाखियों को

सबसे बड़ा लाभ यह हुआ है कि उनकी आबादी अधिक नहीं बढ़ी है। मठों में स्त्री पुरुष ज्यादातर अविवाहित रहते है यद्यपि उनको विवाह करना वर्जित नहीं है।

लद्दाखियों में जाति भेद है। इनमें कुछ लोहार हैं और कुछ गवैये। गवैये बैम या नीची जाति के कहे जाते हैं। लामाओं की कोई जाति नहीं है। लामाओं का पद भी पैतृक नहीं होता बल्कि साधना बद्ध होता है। लामाओं की पोशाक सादी और देशी हाथ की कती ऊन की होती है। आदमी एक लम्बा कोट या चोगा, जो सामने से पल्टा हुआ होता है, पहनते हैं। कमर पर एक ऊनी कमरबन्द बँधा रहता है। वे इसके नीचे कुछ नहीं पहनते। जूते, टोपी और अधिक से अधिक एक और ओढ़ने की चादर को छोड़कर उनकी ये पूरी पोशाक हैं। लद्दाखियों में जूते बड़े ही महत्त्व के होते है। इनका प्रयोग पथरीली और बर्फदार सभी जगह पर जाड़ों में चलने के लिए किया जाता है। जूते का तला मोटे चमड़े का होता है। ये टांगों के बचाव के लिए लम्बी चमड़े की गेटिस भी बाँधते हैं। इसके ऊपर फीता बाँधा जाता है। ये सब चीजें जाड़ों के बचाव के लिए तथा ऊँची-ऊँची पहाड़ियों पर चढ़ने के लिए सुविधाजनक होती हैं।

औरतें धारीदार गाउन या चोगा पहनती हैं। उनमें लहँगे (स्कर्ट) की तरह चुन्नटें होती हैं। ऊपर भेड़ की खाल का शाल ओढ़ती हैं। खाल के अन्दर की ओर ऊन रहती है। ये सिर पर एक कपड़ा बाँधती हैं जिसमें किनारों पर फर लगी रहती है। ये जूते आदमियों जैसे ही पहनती हैं। इनकी पोशाक सदा एक ही रहती है।

चम्पा : ये भी लद्दाखियों से मिलते जुलते हैं। इनके चेहरे मोहरों में मामूली भेद होते हुए भी काफी समानता होती है। ये भी बड़े मेहनती और खुशमिजाज होते हैं। हमेशा कड़ी ठंढ में रहने पर तथा अपर्याप्त भोजन मिलने पर भी ये हमेशा खुश रहते हैं। शाम को जब ये लोग आग के चारों तरफ बैठकर खाना पकाते हैं तो यह देखकर आश्चर्य होता है कि मुश्किलों में भी ये लोग कितने हँसमुख और खुश रह सकते हैं। ये लोग सारी उमर तम्बुओं में ही बिता देते हैं और संघर्षपूर्ण जीवन में भी अपने भेड़ और बकरियों को चराने के लिए वे थोड़े-थोड़े दिन एक जगह पर ठहरते हैं। ठंढ बढ़ने के साथ-साथ आगे बढ़ते रहते हैं तथा उस स्थान पर जाकर ठहर जाते हैं जहाँ ज्यादा और अच्छी घास होती है।

चम्पाओं की पोशाक भी लद्दाखियों जैसी ही होती है। इनमें से कुछ लोग मैमने की खाल का कोट पहनते हैं और कुछ ऊनी कपड़े भी पहनते हैं। आमतौर पर चम्पा और लद्दाखी आपस में कभी विवाह नहीं करते। यद्यपि दोनों का एक ही धर्म है परन्तु चम्पा नौजवान लामा जीवन बिताना अधिक पसन्द नहीं करते।

बाल्टी : ये मुसलमानी तिब्बती हैं। ये भी लद्दाखियों की कौम में से है। इनका चेहरा कुछ-कुछ तूरानियों जैसा होता है। इनके गालों की हड्डी ऊँची होते हुए भी एक कोने में दबी रहती हैं। आँखें भी छोटी-छोटी होती हैं। उनकी भौंहें जरा सी भूरी पड़ने पर एक दूसरे से मिल जाती हैं। उनकी नाक भूटानियों और

बौद्ध तिब्बतियों की तरह पिचकी हुई नहीं होती और न ही भूटानियों और तिब्बतियों की तरह उनकी छितरी हुई दाढ़ी ही होती है।

बाल्टी लोग चोटी कटवा कर मुसलमानों की तरह सर घुटा हुआ रखते हैं। वे कनपटी के पास बाल जरूर रखते हैं जो कभी थोड़े और घुंघर वाले और कभी चपटे होते हैं। वे लद्दाखियों जैसे चौड़े पर अधिक लम्बे होते हैं। यह सब जलवायु के कारण भी हो सकता है। क्योंकि बाल्टिस्तान की जलवायु लद्दाख के समान अधिक ठंढी नहीं होती और यहाँ का जीवन भी लद्दाख के मुकाबले अधिक कठोर नहीं है।

व्यवहार में बाल्टी बड़े खुशमिजाज और उदार होते हैं। हालांकि ये भूटानियों की तरह ज्यादा खुशमिजाज नहीं होते परन्तु विनोदप्रिय अवश्य होते हैं। इस्लाम धर्म मानने के कारण इनके यहाँ एक स्त्री के कई पति नहीं होते। बल्कि एक पति कई-कई पत्नियाँ रखता है। इस प्रथा से आबादी बहुत बढ़ गई है और अपने प्रदेश में न समा सकने के कारण बहुत से बाल्टियों को अपना मुल्क छोड़ना पड़ता है। अनुमान है कि हर साल एक हजार बाल्टी दूसरे देशों में रोजी कमाने के लिए जाते हैं। इतना ही नहीं लद्दाख के आदमियों के पास पहनने को काफी कपड़े होते हैं परन्तु बाल्टिस्तान के निवासी नंगे, भूखे और गरीब ही रहते हैं।

बाल्टियों की पोशाक भूटानियों की पोशाक से कुछ भिन्न है। ये लोग लम्बे ढीले ढीले चोगे के बजाय घुटनों से जरा नीचे चोगा और छोटा पायजामा पहनते हैं। ये अपने कन्धों पर या कमर पर लपेटने के लिए पटके भी रखते है। ये सिर पर छोटी गोल टोपी पहनते हैं। मुखिया या बड़े-बूढ़े लोग उस टोपी के ऊपर एक ऊनी पगड़ी या साफा बाँधते हैं। ये अधिकतर नंगे पाँव ही फिरते हैं। केवल ठंढे स्थानों पर जाते समय जूते पहिन लेते हैं। जूते बकरी की खाल के बने होते हैं और चमड़े के बाल अन्दर की ओर ही रहते हैं।

20.

ग्राम संगठन

कश्मीर के गाँव बड़े शान्त और प्राकृतिक सौन्दर्य से ओतप्रोत हैं। पहाड़ियों और जंगलों के बीच किसानों की झोंपड़ियाँ सघन वृक्षों की झुरमुट से झाँकती हुई प्रतीत होती हैं। यहाँ फैली हुई गरीबी और छितरी आबादी के चारों ओर अखरोट, खुबानी और सेब के पेड़ फैले हुए हैं। इनके आस-पास के झरने, सुन्दर ताल और सीढ़ीदार खेतों की कतारें मनोरम और लुभावना चित्र उपस्थित करते हैं।

इस राज्य के भिन्न-भिन्न क्षेत्रों की विशेषताएँ यात्रियों को यहाँ के विभिन्न ग्रामीण सौन्दर्य से ही पता चलती हैं। घाटियों के गाँव, जम्मू, पुंछ, दर्दिस्तान, लद्दाख और बाल्टिस्तान के गाँवों से काफी भिन्न दिखाई देते हैं।

जम्मू : जम्मू की अपनी अलग ही विशेषता है। यहाँ की जलवायु उष्ण कटिबंधीय है। यहाँ के मकान आस पास के पंजाब के मकानों जैसे बनाए गए हैं। इनकी छतें चपटी हैं और इस प्रकार की बनी हैं कि इनमें रहने वालों की गरमी से रक्षा हो सके। सम्पन्न जमींदारों के मकान दो या तीन मंजिल के पक्की ईंटों के बने हैं। यहाँ के लोग मकानों को सजाने में खूब पैसा खर्च करते हैं और अपनी सामर्थ्य के अनुरूप मकानों को खूब अच्छी तरह सजाते हैं। यहाँ के गाँवों की गलियाँ सँकरी, लम्बी और घुमावदार हैं। इससे सारी आबादी कुछ बेतरतीब सी मालूम होती है।

पुंछ : यह पहाड़ी प्रदेश है। यहाँ की पहाड़ियाँ और उनके ढाल बड़े सुन्दर लगते हैं। घाटियाँ ऐसी बनी हुई हैं कि लगता है किसी समय यहाँ केवल पठार रहे होंगे। हल्के-हल्के पत्थर, मिट्टी और मिट्टी रहित धुले हुए पत्थरों की पहाड़ियों पर ग्रेनाइट बिखरा हुआ है। इन पर काले भूरे चीड़ और फर वृक्षों की कतार पर कतार लहरों की भाँति लगती हैं। सारी घाटी में कल कल नाद करने वाले झरने रेतीले पत्थरों की चट्टानों पर झर-झर झरते हुए बहुत ही सुन्दर लगते हैं। चश्मों से लेकर मकानों तक जाने वाली अनेक सकरी पहाड़ी पगडंडियाँ हैं। कुछ पगडंडियाँ चौड़ी भी हैं जिन पर खच्चर या अन्य पशु पीठ पर माल लाद कर आसानी से आते जाते हैं। यहाँ कदम-कदम पर फूल बहुतायत से मिलते हैं और हरे-भरे अनाज के खेत भी कहीं-कहीं ऊँचे नीचे जगहों पर दिखाई देते हैं। यहाँ के गाँव छोटे छोटे मकान व चारों तरफ खेतों से घिरे हुए हैं और गाँवों के पास ही आटा पीसने की चक्की लगी हुई हैं। ये गाँव बहुत ही साफ सुथरे और व्यवस्थित हैं।

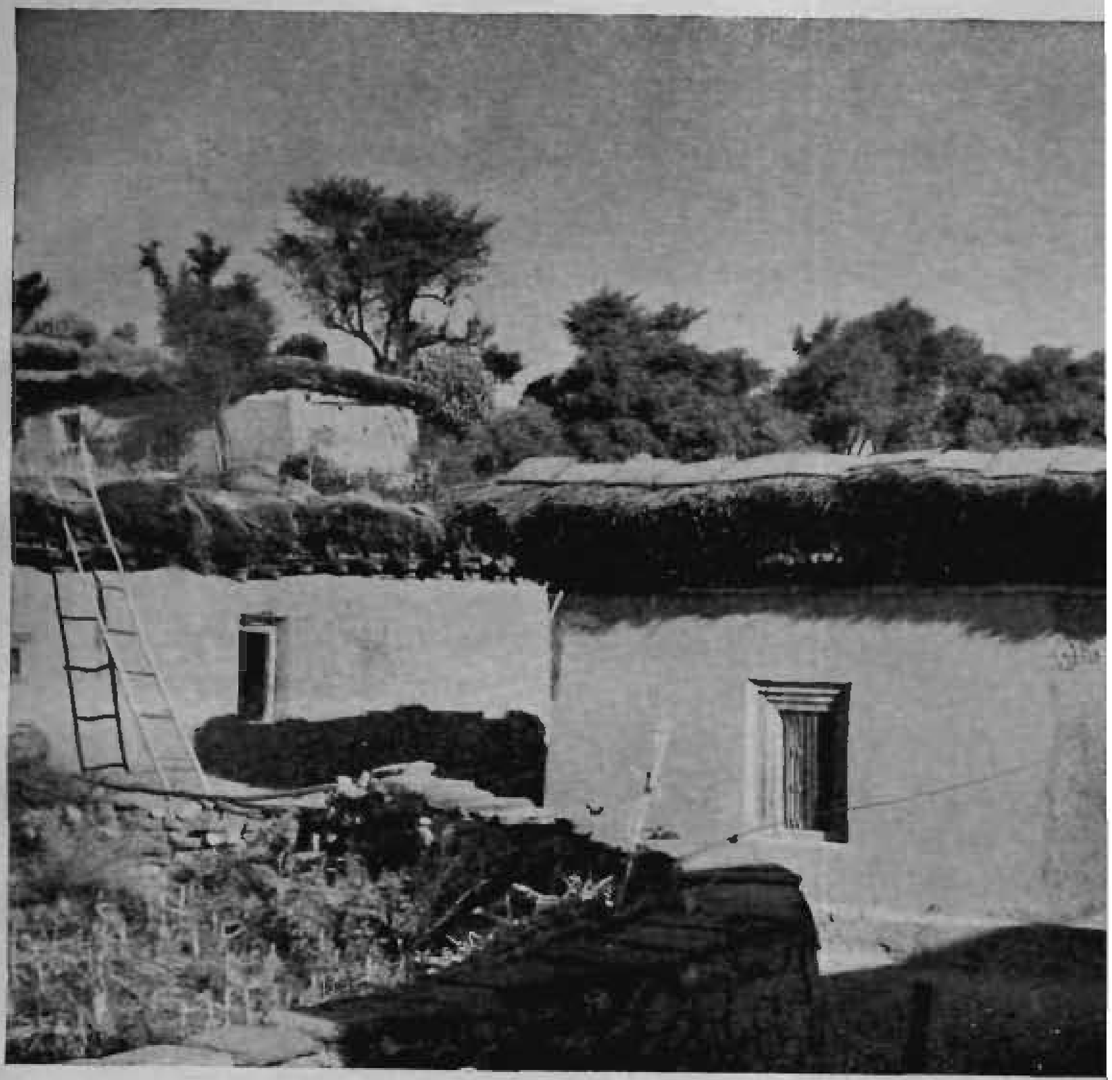

जम्मू के इस ग्रामीण घर
की सफाई अनुकरणीय है

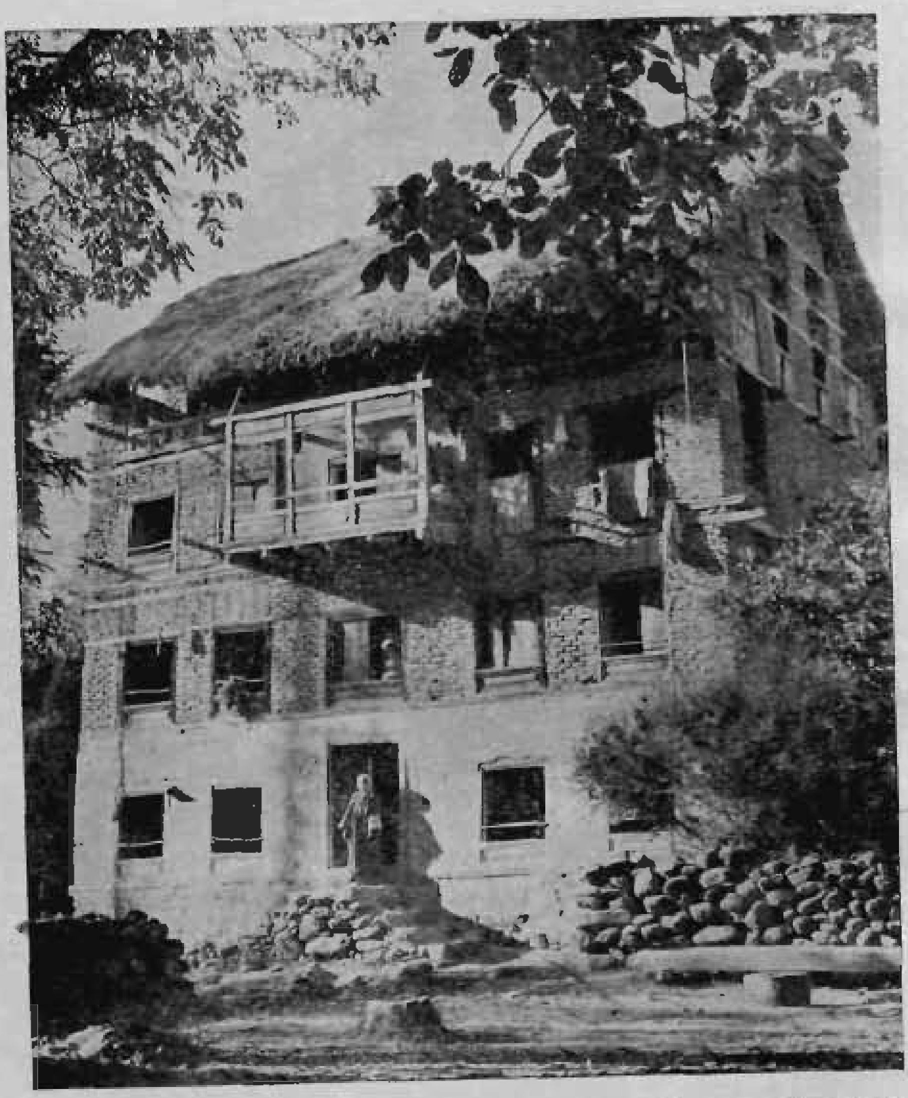

कश्मीर के एक सम्पन्न किसान का यह घर बीती
सदियों की कहानी-सी कहता जान पड़ता है

दर्दिस्तान : 13,500 फुट की ऊँचाई पर बुरज़िल के दर्रे के पास का सारा प्रदेश घने जंगलों से ढका हुआ है और यहाँ की धरती बहुत उपजाऊ है। परन्तु यहाँ से ऊपर की भूमि बंजर और कल्लर है। जैसे-जैसे हम इससे ऊपर चढ़ते है हमें चारों ओर बर्फीले पहाड़, खुरदरी और सूखी चट्टानों का साम्राज्य नजर आता है।

दर्दिस्तान का सबसे मुख्य स्थान गिलगित है और गिलगित की घाटी ही यहाँ सबसे अधिक उपजाऊ है। जहाँ सिंचाई के साधन हैं वहाँ फल, गेहूँ, चावल और जौ की खेती होती है। परन्तु जहाँ अभी तक खेती नहीं की गई वहाँ की भूमि कल्लर पड़ी है। जैसे गाँवों की हम कल्पना करते हैं यहाँ वैसे गाँव नहीं हैं। यहाँ जिंदगी अत्यधिक कठोर होने के कारण यहाँ के लोग ज्यादातर शहरों के आस-पास ही रहते हैं। कहीं कहीं पहाड़ों पर इधर उधर बने एक-आध झोंपड़े दिखाई पड़ते हैं। यहाँ अधिक सफाई भी दिखाई नहीं पड़ती और हिमाच्छादित चोटी पर कहीं-कहीं बसी मामूली आबादी भद्दे धब्बों की तरह दिखाई पड़ती है।

बाल्टिस्तान : सिन्धु नदी के दोनों तरफ कश्मीर की उत्तरी सीमा पर 150 मील के क्षेत्र में बाल्टिस्तान का विशाल क्षेत्र फैला हुआ है। यहाँ की भूमि पर कहीं बर्फ की नदियाँ और कहीं संगमरमर की धवल चट्टानें दिखाई पड़ती हैं। इनके पास गर्म पानी के सोते बहते हैं जिनका तापमान 108° फै० तक रहता है। यहाँ चारों ओर ऊँचे-ऊँचे गगनचुम्बी पहाड़ हैं। इनमें पहुँचने के लिए दर्रे भी बहुत कम हैं। यही कारण है कि बाहरी दुनिया का यहाँ के लोगों पर विशेष प्रभाव नहीं है।

हर प्रदेश में जहाँ कहीं पहाड़ी चश्मा बहता है उसी के आस पास यहाँ के लोगों ने खेती बाड़ी शुरू कर दी है और पानी को अपनी जरूरत के मुताबिक मोड़ लिया है। ऐसा करने में उन्होंने बड़ा श्रम और कौशल दिखाया है और चश्मों को मीलों दूर से लाकर अपने खेतों में मिला दिया है। फार्म या खेतों के चारों तरफ चपटी छत के मकानों के झुण्ड दिखाई देते हैं। ये लकड़ी के लट्ठों की दीवारों से बनाए गए हैं। इन पर मिट्टी की लिपाई व पटाव है तथा अखरोट और खूबानी के वृक्षों की छाया रहती है। यहाँ के गाँवों में किला या राजा का महल तो नहीं पर एक मसजिद जरूर होती है। हर गाँव में मसजिद श्रीनगर की शाहे हमदान मसजिद की नकल की बनाई गई है। और यह गाँव वालों के लिए चौपाल का काम भी देती है। शिगार से ऊपर यह घाटी बहुत उपजाऊ है। यहाँ नाशपाती, सेब, अखरोट, और खूबानी के बगीचे हैं और जौ, सेम, शलजम, जई और घास के हरे भरे खेत और चरागाह मिलते हैं। जाड़ों में झाड़ियों में लाल बेर भी खूब पकते हैं। यहाँ के लोग धूप में अखरोट और खूबानियों को सुखाकर रख लेते हैं और फिर उन्हें बाहर भेजते हैं।

कश्मीर की घाटी : कश्मीर की घाटी पहाड़ों की मेखला के बीच बसी हुई है। यहाँ पहाड़ों और जंगली घाटियों के बीच खेत, फार्म और छोटी-छोटी बस्तियाँ दिखाई पड़ती हैं। यहाँ अधिक घने मकान नहीं हैं बल्कि ज्यादातर झोंपड़ियाँ एक दूसरे से दूर-दूर हैं और उनमें हर झोंपड़ी का अलग छोटा बगीचा है। जब हम यहाँ घूमते हैं तो युवतियाँ घर-घर में धान कूटती हुई दिखाई देती हैं और जो बच्चे पशु

नहीं चराते वे गलियों में खेलते मिलते हैं। गाँव वाले झील पर नहाते और कपड़े धोते रहते हैं।

लारेंस ने अपनी किताब (दि वैली आफ कश्मीर) में यहाँ का सुन्दर चित्रण किया है, जिसका कुछ अंश हम ज्यों का त्यों दे रहे हैं :

यहाँ के मकान कच्ची ईंटों के बने हैं। ये लकड़ी के चौखटे में ईंटें लगाकर बनाए गए हैं। मकानों के लिये लकड़ी शहतीर, चीड़ या फर के पेड़ों से ली गई है। मकानों की छत इतनी ढलवाँ बनाई गई हैं कि बर्फ खुद ब खुद फिसल कर गिरती रहे। छत के एक हिस्से में लकड़ी या घास का ढेर रखा रहता है। यह ढेर बाँध कर नहीं रखा जाता क्योंकि आग लगने पर इसे फौरन फेंकने में कठिनाई होती है। छप्पर फूस के बने होते हैं और चावल की पुआल ज्यादा काम में लाई जाती है।

कश्मीर घाटी का एक मकान

जंगली इलाकों के मकान तो बिलकुल लकड़ी के ही होते हैं। लकड़ी के लट्ठों की ही दीवारें और छत बना ली जाती हैं जैसी कि किसानों की झोंपड़ियाँ होती हैं। बनों से दूर स्थानों पर दीवारें शहतीरों के क्रासनुमा तख्ते फंसाकर बनाई जाती हैं। पहली मंजिल पर एक बालकनी होती है जिस पर सीढ़ी लगाकर चढ़ते हैं। यहाँ कश्मीरी लोग गर्मी के दिनों में बैठ करके मौसम का आनन्द लेते हैं। गर्मी के बाद यहाँ शलजमों के पत्ते, सेब, मक्का का भुट्टा, सब्जी, मिर्च आदि भी जाड़ों के लिए सुखाने को रख

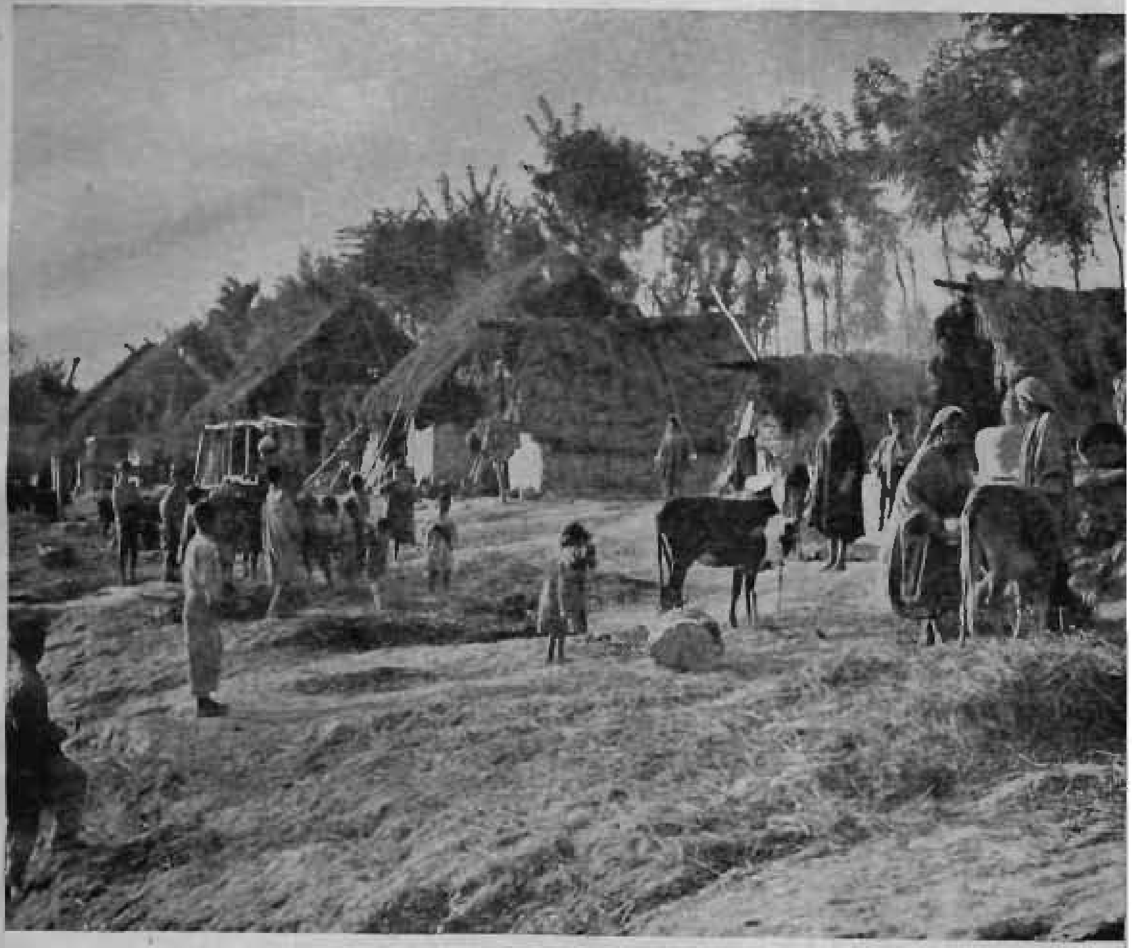

कश्मीर के गांव की एक खुशनुमा सुबह

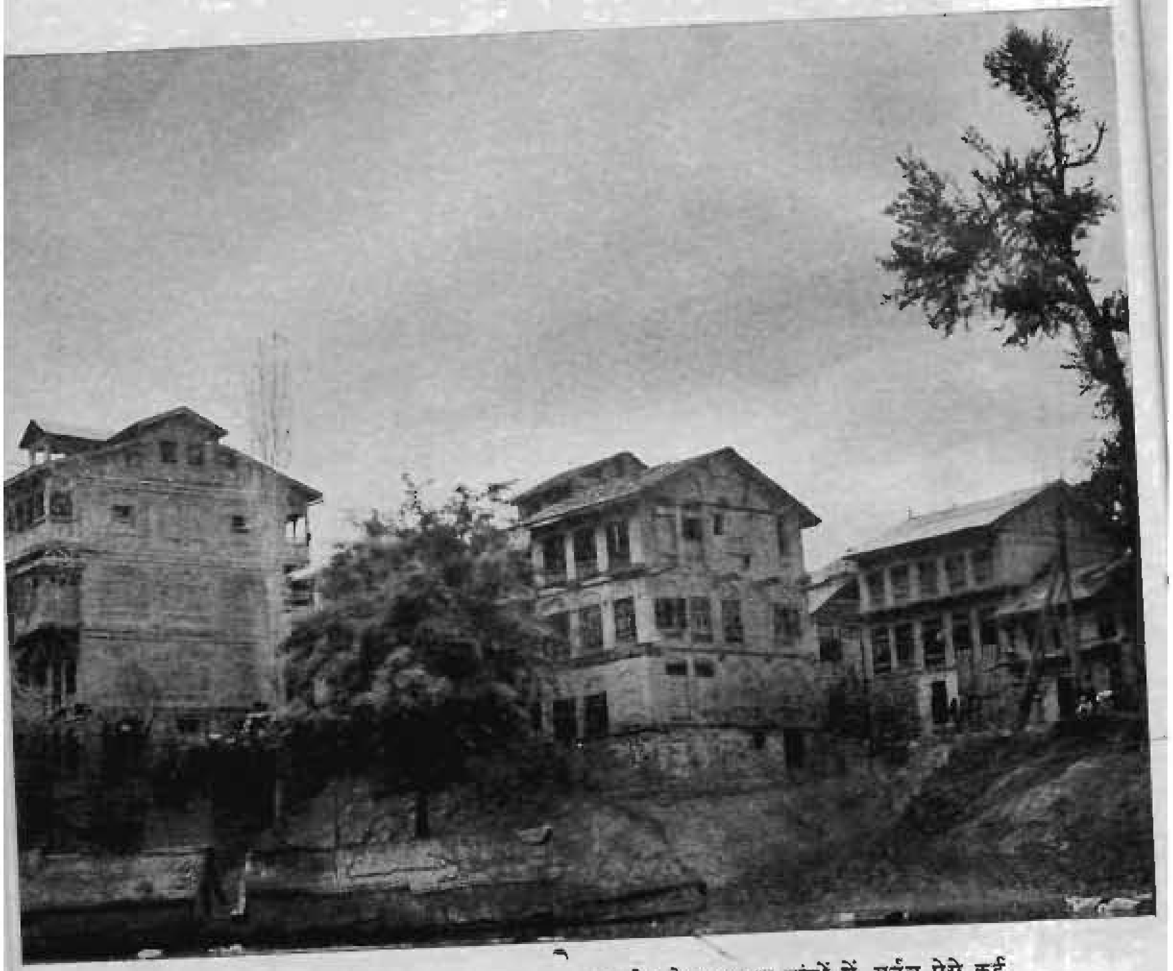

कश्मीर के खुशहाल गांवों में सर्वत्र ऐसे कई
मंजिले मकान बराबर देखने को मिलते हैं

दी जाती है। कहीं-कहीं किसी बड़े गाँव में लोग मन्दिरों (जियारत) और मकानों की बड़ी छतें बेंत की संटियों पर मिट्टी जमा कर बना लेते हैं। इस तरह से छतें बड़ी मजबूत और सुन्दर बन जाती है। बसन्त आते ही ये छतें तरह-तरह के रंग बिरंगे फूलों से लद जाती है। इरिस, गुलाबी, सफेद व पीले तुर्क फूल तथा ब्राउन व इम्पीरियल प्रजाति के लिली के फूल इन पर बहुतायत से उग जाते हैं।

मकान के नीचे के भागों में ढोर, बकरी, आदि बाँधे जाते कहैं। हीं-कहीं भेड़ों को अलग एक छोटे बाड़े में भी बाँधते हैं जिसे डंगी कहते हैं। यहाँ छोटे बच्चे भी जाड़ों में बैठा करते हैं। कश्मीरी मकान में फरनीचर नहीं होता। शहर हो या गाँव यहाँ खाटें नहीं होतीं और सभी चटाई पर सोते है। चर्खा, ओखली, मूसल, धान कूटनी, खाने पकाने के मिट्टी के वर्तन, नाज भरने की कोठी इत्यादि इनके घर में देखे जा सकते हैं। कश्मीरी के पास एक उपयोगी किल्टा भी मिलता है जिसे कश्मीरी कमर पर बाँध लेता है और इसमें भारी सामान भरकर ले जाता है। ये ज्यादातर बेंत का बना हुआ होता है।

लद्दाख : लद्दाख को छोटा तिब्बत या शंगरीला भी कहते हैं। यह 25,000 फुट की ऊँचाई पर चारों ओर हिम पर्वतों से घिरा हुआ है। 30 हजार वर्गमील में फैली हुई लामाओं की घाटी है। यहाँ गगनचुम्बी पर्वतों पर खड़े लामाओं के बौद्ध मठ काल चक्र की गति पर अट्टहास करते हुए प्रतीत होते हैं।

कश्मीर की राजधानी श्रीनगर से लेह तक हवाई जहाज से जाने से एक घंटा लगता है। किन्तु पहले जमाने में काफिले पहाड़ों व दर्रों के रास्ते में पैदल चलकर महीनों में पहुँचा करते थेऔर ये दर्रे भी ऐसे थे जो साल में छः महीने खुलते थे। यही कारण है कि लद्दाखी बाहर कम आते जाते हैं। वे कभी कहीं जाते हैं तो जल्दी ही लौट आते हैं क्योंकि उन्हें नीचे के प्रदेश की आबोहवा सुहाती नहीं है। लद्दाख अभी कुछ पहले तक थोड़े से निकटवर्ती प्रदेशों को छोड़कर दुनियाँ के अन्य देशों के लिये एक अपरिचित प्रदेश था और सब से महत्वपूर्ण बात तो यह है कि यहाँ के लोग अपराध के बारे में बिल्कुल अनभिज्ञ हैं।

लद्दाख एक ऐसा प्रदेश है जहाँ जाड़ों में तेज सर्दी, गर्मी में तेज गर्मी और पतझड़ में भी तेज काटने वाली सूखी हवाएँ चलती हैं। वर्षा बहुत कम होती है। इसलिए वनस्पति भी बहुत कम दिखाई पड़ती है। परन्तु यहाँ वर्फीले प्रदेश का तेन्दुआ, तिब्बत का हिरन और बकरी इत्यादि पशु पाये जाते हैं।

लद्दाख के गाँव में थोड़े से घर होते हैं जो पहाड़ और ढालू चट्टानों पर बने होते है जहाँ कि चढ़ना भी असम्भव सा लगता है। यहाँ के खेतों में गेहूँ, जौ, तुरम्बा, मटर, सेम और अलसी आदि पैदा होते हैं और फलों में खूबानी, सेब तथा शहतूत बहुतायत से होते हैं। यहाँ 'झो' नाम के एक जानवर से खेत जोते जाते हैं। ये जानवर 'पहाड़ी गाय' और 'याक' की संकर सन्तान है, जो हर समय धुरधुराता रहता

है। सिंचाई यहाँ नालियों से की जाती है। यहाँ के किसान प्रकृति के कठोर स्वरूप से संघर्ष करता हुआ भी हमेशा खुश रहता है।

यहाँ की औरतें आदमियों के साथ-साथ खेतों में काम करती हैं। जुताई और कटाई के समय सारा परिवार एक साथ जुट जाता है। काम करते समय बीच-बीच में सब मिलकर साथ-साथ खाते पीते हैं। कभी-कभी थकान उतारने के लिए साथ मिलकर नाचते गाते भी हैं। लद्दाखी लोग अपनी खुशनुमाँ शाम को चंग (जौ की देशी शराब) के दौर के साथ मजे से गुजारते हैं।

21. सांस्कृतिक जीवन

कश्मीरी लोग विभिन्न धर्मों के अनुयायी होते हुए भी सांस्कृतिक रूप में एकता के सूत्र में बँधे हुए हैं। मुसलमान हिन्दुओं के साधु-संन्यासियों का आदर-सत्कार करते हैं तथा हिन्दू उनके पीर और फकीरों को पूजते हैं। श्रीनगर में मुसलमानों की शाह हमदान की मसजिद हिन्दू तथा मुसलमान दोनों का पवित्र स्थान है। इसी प्रकार पीर पंडित बादशाह की जियारत को कश्मीरी हिन्दू व मुसलमान सभी श्रेष्ठ मानते हैं। प्रायः ग्रामों में फसल काटने के समय हिन्दू और मुसलमान एक ही जियारत पर चढ़ावा चढ़ाने के लिए जाते हैं।

कश्मीरी एक दूसरे के सामाजिक उत्सवों तथा त्यौहारों में सम्मिलित होते हैं। ग्रामों में तो प्रायः कश्मीरी पंडित स्त्रियाँ और मुसलमान महिलाएँ विवाह तथा अन्य सामाजिक उत्सवों पर एक साथ मिलकर नाना प्रकार के गीत गाती हैं।

घाटी में बसने वाले लगभग सभी कश्मीरियों की भाषा और पहरावा एक सा है। मुसलमान और हिन्दू अपने घरों में प्रायः अपनी वही पुरानी पोशाक पहनते हैं जो वे सदियों से पहनते चले आये हैं और वह है 'फिरन' एक ढीला ढाला सा चोगा जैसा।

कश्मीरी अपने प्राचीन साहित्यिकों, ललघद्, हब्बाखातून, शेख नूरुद्दीन तथा रूप भवानी आदि की समान रूप से प्रशंसा करते हैं और चाव से उनके गीत गाते हैं। इस प्रकार धर्म उनके लिए एक व्यक्तिगत मामला बन गया है; सांस्कृतिक तौर पर वे एक दूसरे से बँधे हुए हैं।

अभी कश्मीर में सम्मिलित कुटुम्ब की प्रथा है। घर के लगभग सभी सदस्य परिश्रम करते हैं और सबका खाना एक ही जगह पकता है। सर्दी शुरू होने से पहले ये लोग आवश्यकता की अधिकांश सामग्री इकट्ठी कर लेते हैं। सर्दियों में ताजी सब्जियाँ न मिलने के कारण इन्हें टमाटर, बैंगन, लाल मिर्च आदि अन्य सब्जियाँ कई महीने पहले सुखा कर रखनी पड़ती हैं। जाड़ों में कश्मीर घाटी के लोग प्रायः वही काम करते हैं, जो घर बैठ कर किया जा सके। इसका कारण यह है कि बर्फ चारों ओर पड़ती है और अभी तक आने जाने के साधनों का उतना सुभीता नहीं हुआ है कि सभी कारोबार सुचारू रूप से चल सकें। परन्तु इतना होने पर भी निम्न-मध्यवर्ग के लोग घरों में करघे पर निरन्तर काम करते रहते हैं। इन ही दिनों में कश्मीरी कांगड़ी (अंगीठी) इनके लिए सबसे ज्यादा कीमती बन जाती है।

कश्मीरी मुसलमानों के उत्सव व गीत

कश्मीरी मुसलमानों ने सामन्तशाही की अनेकों मुसीबतों का सामना करते हुए भी अपनी संस्कृति को सुरक्षित रखा है। वे अपने उत्सवों को खुशी के गीतों के साथ चाव से मनाते हैं। पूरी कश्मीर घाटी में इन गीतों की गूंज सुनाई देती है। कुछ पद्यांश अर्थ सहित यहाँ दिये जा रहे हैं, ताकि मालूम हो कि उत्सव गीतों की रूपरेखा क्या व कैसी होती है।

हिन्दुओं की तरह कश्मीरी मुसलमानों के यहाँ जब बच्चा पैदा होता है तो प्रायः सातवें दिन बच्चे व प्रसूता को स्नान कराया जाता है। तभी बच्चे का नाम रखा जाता है। यह कश्मीरी मुसलमान के घर बच्चा पैदा होने का सबसे पहला उत्सव होता है और इसे 'सोन्दर' कहते हैं। स्त्रियाँ इस अवसर पर तरह तरह के गीत गाती हैं। एक गीत की पंक्तियाँ निम्नलिखित हैं :

सतिमे दोहय सोंदर : करमय,
बाजस वुतमय पान फरमाश।

गाने वाली औरत कहती है—('ऐ बहू ! आज सातवाँ दिन है और हम तुम्हें नहलाते हैं। रसोइये को हमने खुद तरह-तरह के पकवान तैयार करने के लिए कहा है')

प्राचीन काल में यह उत्सव काफी जोश के साथ मनाया जाता था, परन्तु आजकल इसका महत्त्व कम हो गया है।

बच्चे के जन्म के एक या दो वर्ष बाद कश्मीरी मुसलमान के घर दूसरा उत्सव बच्चे का मुंडन संस्कार होता है। इस संस्कार को वह जरकासय के नाम से पुकारते हैं और एक अजीब बात यह है कि कश्मीरी पंडित भी इसे मुंडन संस्कार जरकासय के नाम से ही मनाते हैं। मुसलमानों में यह मुंडन लड़के-लड़कियों दोनों का होता है परन्तु कश्मीरी पंडितों में केवल लड़के का। नीचे लिखी हुई दो लाइनों में स्त्रियाँ गाती हुई बच्चे से कहती हैं :

बिसमिलाह् करिथ जर कासयो,
इसम आजम परियो।

(हम खुदा का नाम लेकर तुम्हारा मुंडन कराते हैं और इसमें आजम (अल्लाह्) का जप करते हैं)

जरकासयो शालमार गोशन
मोज छेय पोशन माल करान्।

(हम तुम्हारा मुंडन शालीमार बाग के आकर्षित दृश्यों में करा रही हैं। तेरी मां तेरे लिए फूलों के हार गूंथ रही है)

यह प्रथा भी पढ़े लिखे मुसलमानों में आजकल कुछ कम होती जा रही है।

जरकासय या मुंडन-संस्कार के बाद कश्मीरी मुसलमानों के घर एक बड़ा उत्सव 'खतना' (मुसलमानी करना) का होता है। इस अवसर पर प्रत्येक मुसलमान

के घर जितनी खुशी होती है उतनी 'ईद' के अलावा शायद ही किसी और दिन होती हो। इस उत्सव पर भी औरतें तरह-तरह के खुशी के गीत गाती हैं। एक गीत की कड़ियाँ सुनिये :

खतनिहाजि मंडवय गिदवय फोतन,
अज हय छयम तोतस खतनहाल।

(आओ री, सखियों, हम मंडप में जाकर मोती पिरो लें, क्योंकि वहाँ पर खतने की रसम अदा की जा रही है। मां कहती है, 'आज मेरे तोता लाड़ले की 'खतने' की रसम है)

ये औरतें गाती हुई नाई की ओर मुखातिब होकर कहती हैं :

फोतिस तल कोकर छयम अथन मोहर बाजे
खतनहाजे मुबारक।

(अरे भाई नाई! तुम्हारे लिए मुर्गी दरबे में रख छोड़ी है। आकर ले जाना और हम नगीने वाली अँगूठी भी पेश करते हैं। आज खतने की रसम है और यह सबको मुबारक हो)

मुसलमान इस उत्सव को बड़े ठाट-बाट से मनाते हैं। लड़की के विवाह से पहले मेंहदी रात का उत्सव होता है। इस अवसर पर औरतें निम्नलिखित गीत गाती हैं :

मांजे राचय सोवरिम बाचय,
रहमत बाचय बरकच सान।

(तुम्हारी मेंहदी रात के त्यौहार पर मैंने अपना सारा परिवार इकट्ठा किया। यूँ समझो कि खुदा ने बरकतों के साथ अपनी रहमत भेजी)

अज छयम मांजिरात पगाह यनि वोलुय,
कुकिलव पोट गुलि वोलुये।

(आज मेंहदी रात है। कल बारात आयेगी। फाख्ताओं ने इसीलिए अपनी कलाइयों में रेशम की राखियाँ सी बाँध ली हैं)

अजहय वाति मांज चे चन्दन कुलि तलिये,
दन्दन कर मोक्तहार यंबरजलिये।

(अरी ओ मचली लड़की! तेरे लिये मेंहदी, सन्दल की डालियों के तले से लायी गयी है। अरी ओ नरगिस! तू अपने दांतों को आज मोतियों का हार बना दे)

बुनिस्ताम सुजिनम मंजिमयारी
अजहय आव पान बापारिये।

(अब तक तो वह (ससुराल वाले) मध्यस्थ भेजते रहे। आज व्यापारी (तुम्हारा पति) खुद चला आया है)

शादी से चन्द घन्टे पहले "हमाम" की एक रस्म भी होती थी। कश्मीर एक सर्द देश है। दूल्हा और दुल्हन को शादी से चन्द घन्टे पहले "हमाम अर्थात् गर्म

पानी" में नहलाया जाता था। इस उत्सव पर भी गीत गाये जाते हैं। यह प्रथा अब लगभग समाप्त ही हो गयी है।

दूल्हा जब सज-धज के दुल्हन के घर के द्वार पर पहुँचता है, तो इस उत्सव पर औरतें निम्नलिखित गीत से उसका स्वागत करती हैं :

घदिये ओवुय खानय मोलुय
नेरिसी रोनि मंजोलुय ह्यत
सौन संजि सदरे रोप संज कच्छवचि,
यहै छुय मोगुल बचि वार वनिवलोस।

(दादी अम्मा! आज तुम्हारा लाड़ला आया है। घुंघरू लगे हुए थिगोड़े को साथ लेकर उसका स्वागत कर। उसके तन पर सोने का कुरता है, जिसमें चांदी की आस्तीन है। ऐसे मुगल बच्चे के लिए तू दिल खोल कर गीत गा ले)

निकाह पढ़ते समय नीचे लिखे गाने की पंक्तियों में दुल्हन की मां दुल्हन से कहती है :

ओबरस करिमय शांदय गुंडिये
थोद रोजि बोंबरस बराबर।

(मैंने तेरे लिए बादल के तकिए बनाए और तू उनसे पीठ लगाकर ठीक तरह से अपने भौंरे (दूल्हा) के बराबर में बैठ जा)

एक अन्य गीत में निकाहनामा लिखते समय मां अपनी बेटी से कहती है :—

हवालय करमख पीरि पीरानस
चीर थफ करिज्यस दामानस।

(मैंने तुम्हें पीरों के पीर के हवाले कर दिया है। देखना, अब कहीं तुम्हारे हाथ से आंचल छूट न जाये)

जिस समय दुल्हन अपने माता-पिता के घर से बिदा होती है और रोती हुई डोली में बैठ जाती है, उस समय औरतें नीचे लिखा गीत गाती है :

युथ न बा डोले गछि अल-डलय,
अथ अन्दर नार वुजमलय छय।
डूलि पकनाव्यून रूजो रूजी,
मसलन मानि बूजि बूजिये।
ऑन जंपानस चटिमय जाली,
तथ्य अन्दर छखे हीमालिये।

(देखो जी, कहीं डोली हिल न जाय, क्योंकि इसमें एक नन्ही बिजली है। डोली को धीरे-धीरे ले जाना भाई, और जो लोकोक्तियाँ मैं कह रही हूँ, उनका मतलब भी समझाते जाना) शीशा लगी हुई डोली में मोतियों के झरोखे लगा दिये हैं। इसी में 'नागराज की हीमाल' (दो प्रेमियों की लोक-कथा) छिपी हुई है। अब हम कश्मीरी

मुसलमानों के बड़े-बड़े उत्सव 'ईद' पर आते हैं। दूसरी जगहों की तरह यहाँ भी ईद की तैयारी रमजान के महीने से ही शुरू होती है जबकि मुसलमान अपना रोजा रखते हैं।

रमजान के महीने के आरम्भ होते ही मुस्लिम औरतें खुशी के गीतों से ईद का स्वागत करती हैं। इन दिनों जो गीत गाये जाते हैं, उनकी कुछ पंक्तियाँ यहाँ दी जाती हैं :

व्यसिये जानिजान वंदि जानानस,
माहि रमजानस बन्दहव जान।

(अरी सखि, तुम मेरी प्राणों की प्राण हो। मेरे उस प्राण प्यारे से कह दो कि रमजान का महीना आ गया है और मैं चाहती हूँ कि उस पर अपने प्राण वारूँ)

'पारँ पारँ लगहव हकि सुबहानस।
युस छ अज रहमत बाग़वान।

(मैं पाक परमेश्वर पर बलिहारी जाती हूँ खुदा ही तो लोगों में रहमत बाँटता है)

दोह दोह रोजदर बाईमानस,
रोज छय जनतिच वय हावान।
ईद आयि शादि छय मुसलमानस,
माहि रमजानस बन्दहव जान।

ईमान रखने वाले हर रोज रोजा रखते हैं। रोजा रखने से जन्नत के रास्तों का पता चलता है। ईद आयगी और वह मुसलमान के लिए शादी का पैगाम लायेगी। मैं रमजान के महीने पर बलिहार होना चाहती हूँ)

कश्मीरी पण्डितों के उत्सव व गीत

कश्मीरी पण्डितों के यहाँ बच्चे के जन्म से 11 दिन बाद काहनेथर नामक पहला उत्सव मनाया जाता है। इस दिन हवन आदि होता है और बच्चे का नाम रखा जाता है।

कश्मीरी मुसलमानों की तरह कश्मीरी पंडितों का भी दूसरा उत्सव 'जरकासय' (मुन्डन-संस्कार) होता है। बच्चा जब चार पाँच साल की आयु का हो जाता है तो उसका मुन्डन संस्कार होता है। हवन आदि के बाद सब रिश्तेदारों को दावत दी जाती है।

कश्मीरी पंडित के जीवन में सबसे महत्वपूर्ण उत्सव 'यज्ञोपवीत' संस्कार होता है। लगभग 8-12 वर्ष की उम्र में इस संस्कार के अवसर पर बालक के गले में कुल-पुरोहित यज्ञोपवीत डाल देता है। इसी दिन से वह लड़का कश्मीरी पंडित (द्विज) बन जाता है। इस संस्कार पर दावत होती है और कश्मीरी औरतें तरह-तरह के गीत गाती हैं।

लड़के या लड़की के विवाह से पहले मेंहदी-रात का उत्सव होता है। इस अवसर पर पंडित औरतें निम्नलिखित गीत गाती हैं :

मांज खच स्वर्गह तय मंअज आयि पानी मांजि कर मेहरबानी ये।
दछह् राठ खचयँ दारे तह हंगस आलि तह रोंगस मंअजीराथ ॥
राधा कृष्ण छु रथस खसिथ महारिनह् लागव अथस मंअल।

(आज मेंहदी रात के लिए जो मेंहदी लायी है, वह मेंहदी पवित्र है और स्वर्ग से लायी गयी है, किसलिए ? दूल्हा और दुल्हन के लिए। दरवाजे के किवाड़ों और खिड़की के भी चारों ओर नक्शे किसलिए बनाये गये हैं, क्योंकि आज दूल्हा और दुल्हन की मेंहदी रात है। राधा और कृष्ण जी रथ पर सवार है। दुल्हन के हाथों को मेंहदी लगाओ)

जब कश्मीरी पंडित दूल्हा ससुराल की ओर प्रस्थान करता है तो मुस्लिम स्त्रियाँ निम्नलिखित गीत गाती हैं :

योरह् यलि गछ-हम वछिन किन दार छय,
तथ्य अन्दर हअर छय शोलह् माराण ॥ १ ॥
बजह् वति खोत खब बज्य ब्रसवारे,
पीरह् सुन्द गुर हव छय सवारे ॥ २ ॥

(औरतें इस गीत में दूल्हा से कहती हैं कि जब आप यहाँ से चलकर ससुराल पहुँचेंगे तो वहाँ पर दाएँ तरफ की खिड़की पर बैठी हुई आपकी नाजुक दुल्हन खुशी मना रही होगी। वह आपकी प्रतीक्षा कर रही होगी। गुदवार के राजे राजमार्ग से जा रहा है, दूल्हा पीर अर्थात् कुलगुरू के घोड़े पर वह सवार है)

और जब दूल्हा दुल्हन के दरवाजे पर पहुँचता है तो मुस्लिम औरतें यह गीत गाती हैं :

गोड़ह् आख वुछने मंज आख खबरे,
अज हव आख बबरे मुल करने।
अस्य है वननावव बाई जानान्स,
हिन्दोस्तान किस पठानस।

(सबसे पहले आप यहाँ दुल्हन को देखने आये थे और फिर बाद में आप उसको खबर लेने के लिए यहाँ आये थे। आज आप बबर (एक प्रकार का कोमल और सुगन्धित पौधा) के समान अपनी कोमल और सुन्दर दुल्हन लेने के लिए आ गये हो। हम अपने दूल्हा भाई के लिए गायेंगी, दूल्हा हिन्दुस्तान के पठान के समान है)

त्योहार

15 मार्च को बसन्त का त्योहार सोंत के नाम से मनाया जाता है। अक्सर इस अवसर पर गाँव या शहर में खुले मैदान में एक मेला लगता है। नौजवान खेल खेलते हैं और महिलाएं नए मौसम की गर्म धूप में आनन्द मनाती हैं।

चैत्र शुक्ल पक्ष प्रथमा (मार्च-अप्रैल) को नये साल का उत्सव मनाया जाता है, जिसे कश्मीरी नवरे (नया वर्ष) कहकर पुकारते हैं। इस त्यौहार पर भी लड़की के माता-पिता अपने दामादों को दावत देते हैं और साथ में रुपये आदि की भेंट भी उपस्थित करते हैं। इस दिन हर गाँव या कस्बे में, जहाँ कश्मीरी पंडित अधिक तादाद में रहते हैं, एक मेला लगता है। आमतौर पर इस दिन नये कपड़े पहने जाते हैं।

मई-जून में ज्येष्ठ-अष्टमी का पर्व मनाया जाता है। यह दिन रागन्या देवी (क्षीर भवानी) के जन्म दिन के कारण पवित्र माना जाता है। इस दिन तुल-मुला गाँव में पंडितों का बड़ा भारी मेला लगता है। यहाँ एक पवित्र चश्मा है, जिसका जल कभी कभी रंग बदलता है। इसी चश्मे के चारों ओर हजारों की तादाद में लोग रात-रात भर ईश्वर-भजन और गीत गाते रहते हैं।

जून-जुलाई में शारिका देवी के जन्म दिन पर हारनौमी का त्यौहार होता है। इस दिन प्रातः से ही श्रीनगर के निवासी हरि-पर्वत की पहाड़ी पर आते हैं, जहाँ शारिका देवी की पूजा में यज्ञ आदि का अनुष्ठान होता है।

अगस्त-सितम्बर में श्रीकृष्ण के जन्म दिन पर जन्माष्टमी का त्यौहार होता है। इस दिन चन्द्रमा निकलने तक हिन्दू व्रत रखते हैं। इस रोज भी लोग अपनी विवाहिता लड़कियों के घर फल और रुपये आदि भेजते हैं।

भादों में ही विनायक चतुर्थी आती है। शायद गणेश जी से इसका सम्बन्ध है। इस दिन प्रत्येक पंडित के घर सवा सेर आटे की रोटियाँ खास ढंग से बनायी जाती हैं। अब कम से कम इस रोटी का नाम ही सवा सेर पड़ा है। 'पन' की ये रोटियाँ अड़ोस-पड़ोस और सब रिश्तेदारों में बाँटी जाती हैं। सितम्बर-अक्तूबर के एक पखवाड़े में पंडित अपने मृतक पित्रों का श्राद्धपक्ष मनाते हैं। इसे काम्बर पक्ष (कन्यागत का पखवाड़ा) कहते हैं।

कश्मीर के लोकगीत

भौगोलिक रूप से अलगाव होने के बावजूद भी कश्मीरियों ने अपने इतिहास बद्ध पैतृक और युग-युगों से चली आ रही लोक परम्परा और संस्कृति को अक्षुण्ण बना रखा है। यहाँ की लोक कथाएँ, गाथाएँ और रहस्य भरी किंवदंतियाँ अभी तक लोगों की जुबान पर हैं। कश्मीरियों के ग्राम्य जीवन के लोकगीत और नृत्य-नाद आज भी यहाँ की सुरम्य घाटियों में गूँज रहे हैं। यहाँ के देसी भाट अब भी अतीत की गौरव गाथाओं को बड़े गर्व से गाकर सुनाते हैं। कवि कल्हण ने भी अपने प्रसिद्ध ग्रन्थ राजतरंगिणी में प्राचीन काल से लेकर अब तक के इतिहास को सुन्दर छन्दों में गाया है। आज भी यदि कोई जनजीवन का अध्ययन करना चाहे तो उसे यहाँ की लोककथाओं का ही आश्रय लेना पड़ेगा।

कश्मीर के लोकगीतों में प्रेम, वीरता और ऐतिहासिक काल की घटनाएँ गायी गयी हैं। इन कथाओं और गीतों में हर मौसम के अनुसार फसल की लावनी, खेत

जोतना, विवाह, जन्मोत्सव, मुंडन आदि सभी विषयों व सामाजिक त्यौहारों के वर्णन भरे पड़े हैं। कथाओं का विषय चाहे कुछ भी हो लेकिन उन्हें काव्य सौंदर्य और माधुर्य के सूत्र में पिरोया गया है। वियोगिनी बाला अपने दूरस्थ प्रियतम की याद में तड़प-तड़प कर आँसू बहा रही है। उसकी वेदना इन गीतों के छन्द-छन्द में समायी हुई है :

मेरा सांवरिया गया पामपुर रे।
केसर की गंध में बँध गया रे।
वह वहां, मैं यहाँ,
हे विधाता, मुझे मेरे प्रियतम का मुख दिखला दे रे,
मेरे प्रियतम को वापस बुला दे रे ।

विवाह की रात में वधू का सौंदर्य एक परम्परागत लोकगीत में किस सौन्दर्य के साथ सँजोया गया है :

मलमल की साड़ी पहिने दुलहनियाँ, मलमल की साड़ी रे।
किसने सजाया तुमको दुलहनियाँ, किसने सजाया रे।
तेरी चमकीली आँखें प्यारी रे बता तुझे किसने सजाया रे।
तेरे मोती से चमकें दांत रे, उन्हें सागर से कौन लाया रे।
ओ दुलहनियाँ कहीं तू, जौहरी तो नहीं, तुझे किसने सजाया रे।
ओ ज्योतिमुखी, ओ ज्योतिमुखी, तुझे देख चाँद शरमाया रे।
तुझे किसने सजाया रे।
तू कूंकने वाली कोयल रे, तूने सब कुछ कहाँ से पाया रे,
तुझे किसने सजाया रे।
मलमल की साड़ी पहिने दुलहनियाँ, किसने सजाया रे।
ओ गोरी, तुझे किसने सजाया रे।

जब रोजे खत्म होते हैं और ईद आती है और शाम होते ही चांद छिटकता है, फसल कटती है तो गाँव की लड़कियाँ चाँदनी रात में घंटों तक नाचती कूदती और गाती हैं। इनके गीतों में लोरी जैसी ताजगी रहती है। मस्ती, उछल-कूद और उल्लास उनके यौवन के उभार और अल्हड़पन का प्रतीक है। हिकरी डिकरी डाक नामक नृत्य तो उनकी जवानी की उमंगों का जीता जागता नाच है जिसे देखकर मुर्दा दिलों में जवानी जाग उठती है।

कश्मीर के लोकगीत कोमल भावनाओं से भरपूर हैं। कश्मीर की भाषा में प्रेम का अर्थ है 'लोल' (दिल्लगी)। यह मोहब्बत की उमंग और सच्चे प्रेम का एक पर्यायवाची है जिसे वाल्टर डि ला मेयर के शब्दों में एक अतृप्त वासना—नाशवान वासना, कहें तो ज्यादा ठीक होगा।

एक ओर वसंत में फूल खिलते हैं और उधर यौवनाएँ अपने परदेसी प्रीतम को रो-रो कर याद करती हैं :

नए रंग लिए प्रिय फूल खिले, मेरे दिलवर बता तू कहाँ है ।
वो सोनपाश खिल जाये, डाली-डाली पे सारे फूल खिले,
मेरे हमदम बता तू कहाँ है ।

क्या बेदर्द और बेवफा प्रेमी भी कभी लौटता है, वह कभी नहीं लौटता और मिलन व चाह का जोश उफन उफन कर सिमट जाता है। वियोग की अग्नि इन वियोगिनियों को जलाए डालती है और उनके मन की आग अंगारे बनकर सुलग रही हैं। उसका स्वर गूँज उठता है—

दूर दूर घाटी, प्रियतम महक उठे हैं फूल
तूने दिल का दर्द न जाना प्रिय ये तेरी भूल
दूर पहाड़ी झील महकती रंग बिरंगे फूलों वाली
आजा रसिया तुझे बुलाए, मेरे गीतों की हरियाली
हिमगिरि की चोटी पर प्रियतम, चाँदी से झरने झरते हैं
वनप्रान्तर में अरे पास ही, फूल लिली के हँसते हैं ।
ओ बेदर्दी क्या मेरी आवाज, न तुझ तक जाती है
मेरे गीतों की कोयलिया, कब से तुझे बुलाती है ।

सब्र की भी कोई हद होती है जब उसका प्रेमी नहीं लौटता तो फिर वह पागल होकर उसे बदजात, आवारा, परनारी-बिहारी और बेवफा कहकर कोसने लगती है।

मैं अपने सांवरिया को मधु का प्याला लेकर जाती,
किन्तु उसे तो मेरी सौतिन के आंगन की गंध सुहाती
मैं वन वन घाटी में फिरती प्रियतम को पास बुलाती
पर सौतों की सेज सजाकर उसने कितनी रात गुजारीं
जंगल जंगल, घाटी घाटी, चोटी चोटी, फिरता है पागल आवारा
दूर कहीं घाटी में छिपकर, पीता है उनकी ही हाला ।

लोकगीतों के भाव और भी हैं पर सबमें वेदना, कसक, सादगी और प्रेम की टीस भरी हुई है। शताब्दियों से ये लोकगीत कश्मीरी नारियों के जीवन की थाती रहे हैं और वह इन्हें गाकर अपना सब कुछ पा लेती है।

कश्मीर की नृत्यकला

प्राचीन काल से ही कश्मीर में नृत्यकला फलती-फूलती रही है। धर्म के साथ-साथ जीवन के हर क्षेत्र में इसका एक महत्त्वपूर्ण हिस्सा रहा है। कश्मीर में आरम्भ से ही यह कला शासकों की संरक्षता में थी। भारत, अफगानिस्तान, तुर्किस्तान ईरान से समय-समय पर नर्तक यहाँ आते रहे हैं और उनकी इस कला ने कश्मीर की नृत्यकला की प्रगति में सहयोग प्रदान किया है। कलशदेव और हर्षदेव, जो बारहवीं शताब्दी में कश्मीर के शासक थे, नृत्यकला के निपुण कलाकार थे। इसी जमाने में सारंगदेव ने 'संगीत-रत्नाकर' नामक एक मशहूर किताब लिखी। संगीत-चूड़ामणि

नामक किताब सुलतान जैनुल-आबदीन के शासन काल में कश्मीरी नर्तक व नर्तकियों के लिए एक रोशनी का काम दे रही थी। बादशाह औरंगजेब के समय में सेफखान कश्मीर का सूबेदार रहा। सेफखान के सहयोग से मीरजफरउल्ला ने राग-दर्पण नामक किताब का फारसी में अनुवाद किया। यह पुस्तक नृत्यकला तथा संगीतकला से सम्बन्धित है।

कश्मीर में प्रचलित नृत्यकला की दो किस्में हैं। एक क्लासीकी और दूसरी आमियाना। क्लासीकी नृत्यकला में सूफियाना (सूफी) संगीत का प्रयोग होता है और आमियाना नृत्यकला में सहराई संगीत से काम लिया जाता है। क्लासीकी नृत्य के द्वारा भावनाओं को उभारा जाता है। इसमें स्वर और ताल का विशेष ध्यान रखा जाता है। यदि नर्तक और नर्तकी का एक कदम या पैर की एक थाप भी बेसुरी या बेताल पड़ जाय तो नर्तक या नर्तकी के बेहोश होकर गिर पड़ने या परेशान हाल होने की सम्भावना रहती है, जिससे दर्शकों का आनन्द जाता रहता है। कभी-कभी इस नृत्य में दर्शकगण दीवाने-से हो जाते हैं। आमियाना नृत्यकला में ऐसा कोई बन्धन नहीं है। इसका अर्थ यह नहीं कि आमियाना नृत्य में स्वर और ताल का ध्यान नहीं रखा जाता। इनमें स्वर और ताल का ध्यान अवश्य रखा जाता है, परन्तु कलाकार के लिए यह जरूरी नहीं है कि वह शास्त्रीय विधियों से पूरा परिचित हो।

प्राचीनकाल से ही कश्मीर में नाच-गाने की घर-घर प्रथा थी। कलाकार व नर्तकियाँ हर जगह पायी जाती थीं। शांगसर कुटहार—अनन्तनाग की नर्तकियाँ तो कश्मीर भर में मशहूर थीं। आजकल नर्तकियों को कश्मीरी लोग 'हाफिजा' कहते हैं, क्योंकि यह कहा जाता है कि वे ईरान के महाकवि हाफिज के शेर गाया करती थीं। इनके नाच को कश्मीरी भाषा में हाफिज नग्मा कहा जाता है। मौजूदा जमाने की मशहूर नर्तकी अजीजे जानम थी। लोग उसे 'टाठ साहब' अर्थात प्यारी साहबा नाम से भी पुकारते थे। इसका दूसरा नाम सात बहनों वाली अजीजा खातून भी था। अन्य प्रसिद्ध नर्तकियाँ थीं: नरह आरमेनी, मुक्तदन्दानी, गुलाब, फजली, गोजबारी, आशियाअसी तथा मेहर छकरी। इस मेहर छकरी नर्तकी के लिए पं० तोतजू हतवली ने एक उस्ताद नियुक्त किया था जिसे वह बारह वर्ष तक वेतन देता रहा। नूर ककर नाम की एक और मशहूर नर्तकी थी, जो गाव-कदल की रहने वाली थी। इस नर्तकी को एक दर्शक ने दस हजार रुपये का कीमती हार भेंट किया था। कहा जाता है कि शास्त्रीय नृत्य के अन्तिम दौर में यह कला वेश्याओं तक ही सीमित रही। नाच की सभाएँ अकसर रात को हुआ करती थीं। देश-विदेश के दर्शक-गण कश्मीर की इन नर्तकियों का नृत्य देखकर आनन्द-विभोर हो जाते थे।

कश्मीर में शास्त्रीय नृत्य अब अवनति पर है। आमियाना नर्तक व नर्तकियाँ अब भी काफी हैं। कुछ प्रसिद्ध नर्तकियाँ इस समय भी कश्मीर में मौजूद हैं, परन्तु अब उन्होंने गृहस्थ-जीवन धारण कर लिया है और वे अब पर्दानशीन महिलाओं में गिनी जाती हैं। आमियाना नृत्य के कुछ के मुख्यकेन्द्र कश्मीर केवलपूर, वाथोर तथा मोहरीपुरा (अकिन गाँव) में अब तक मौजूद हैं।

कश्मीर की इस वृद्ध जोड़ी में भी दो शरीर और एक आत्मा को भावना निहित सी दिखाई पड़ती है

वर्तमान संकट के कारण लद्दाख का महत्व बहुत बढ़ गया है। ये ल्हासी युवतियाँ भी संकट का सामना करने के लिए तैयार दिखाई पड़ती हैं

अभावों में भी बचपन की गुलाबी दिखाई पड़ ही जाती है । कश्मीर के इस बालक और बालिका की यह मुस्कराहट इसका प्रमाण है

कश्मीर में परिवार के सारे सदस्य कृषि क्रियाओं में हाथ बँटाते हैं ।
इस बालिका ने गेहूँ का यह मूँठा शायद अपने आप ही काटा है

"दमाल्य" नाम का लोक-नाच ग्रामों के सामूहिक जीवन में अति लोकप्रिय है। अक्सर मेलों पर यह नृत्य किया जाता है।

कश्मीर की नृत्यकला ग्रामों के लोकनृत्यों के रूप में अभी तक मौजूद है। मैंने अक्सर ग्रामीण महिलाओं के सामूहिक नाच देखे हैं।

कश्मीर की कल्चरल कान्फ्रेंस ने ग्रामों में जगह-जगह सांस्कृतिक केन्द्र खोलने शुरू कर दिये हैं, ताकि कश्मीर की यह कला दिन-प्रतिदिन उन्नति कर सके।

कश्मीर के लोकनृत्य

अन्य प्रदेशों की भाँति कश्मीर के लोकनृत्यों का आधार भी धार्मिक परम्पराएँ हैं और नृत्यकला धार्मिक-रीति रिवाजों में ही पोषित हुई। मन्दिर के नर्तकों ने इसको पोसने में पूरा योग दिया है। राजतरंगिणी के कुछ पदों से मालूम होता है कि कुछ मन्दिरों में तो नाचना गाना परम्परागत व्यवसाय की तरह चलता रहता है। यहाँ तक कि इस्लाम धर्म के प्रादुर्भाव से भी नृत्यकला के विकास पर विशेष प्रभाव नहीं पड़ा क्योंकि सूफी लोगों ने भी नाचने और गाने को भगवत प्राप्ति का एक साधन माना है। किन्तु इस बात का एक असर यह पड़ा कि कश्मीरी नृत्य भारतीय और फारसी सभ्यता का एक मिश्रित रूप बन गया और इस की नयी नयी शैलियाँ और पद्धतियाँ विकसित हो गई।

हाफिजा नाच : हाफिजा नाच इस घाटी का एक मुख्य नाच है। इस पर सूफीमत का भी काफी प्रभाव पड़ा है। सन् 1920 तक हाफिजा नाच नाचने वाली लड़कियाँ शाही दरबार, मेले-तमाशे और बहार के जश्नों में बुलाई जाती थीं और वे व्यावसायिक रूप से नाचने गाने वाली होती थीं। उनका साज बाज भी सूफियाना-कलम सन्तूर, साजे-कश्मीर, सितार और तबला इत्यादि हुआ करता था। वे कश्मीरी व फारसी गजलों व गानों को गाती थीं और हाथ-पैर व आँख-नाक को भी बड़ी नजाकत भरी और लुभावनी मुद्रा में चलाती थीं।

इस नाच की पोशाक भी उत्तर भारत के कत्थक नाच नाचने वालों से काफी मिलती जुलती थी। एक चुस्त ब्लाउज, घूमदार लहँगा, सर व कंधों पर लटकता हुआ रेशमी दुपट्टा और कश्मीरी जेवर जैसे बड़े कुंडल, 'तलराज' बालियाँ, हार आदि इस नृत्य करने वाले को पहनने पड़ते थे।

आमतौर पर दो हाफिजा लड़कियाँ एक साथ नाचती हैं। नाच शुरू होते ही हाफिजा सुर व ताल के साथ हाव-भाव व अन्य भंगिमाएँ दिखाती हैं और ततकार के साथ बार बार चक्कर भी खाती हैं। फर्श पर दूर से नाचती हुई आती है और कभी कभी आधी घूम लेकर भाव दिखाती है। घूम के साथ उनका लहँगा भी घूमता था। उनके पैरों का ठुमका बड़ा तेज चलता था और वह आँखों को नचाकर और तरह तरह के भाव दिखाकर दर्शकों को अपनी ओर आकृष्ट कर लेती हैं।

यह नाच सभी वर्ग के लोगों को अच्छा लगता है। आमतौर पर ये नाच सार्वजनिक उत्सवों में मनोरंजन के लिए नाचा जाता है। बहुत से यूरोपीय यात्रियों ने कश्मीर की हाफिजा लड़कियों के साधनामय जीवन की विशद चर्चा की है क्योंकि कश्मीर की हाफिजा लड़कियाँ इस नृत्य को धार्मिक दृष्टिकोण से सीखती हैं जिस प्रकार कि दक्षिण में देव कन्याएँ भगवान को रिझाने के लिए नृत्य सीखती थीं।

आजकल इस नाच का रिवाज धीरे-धीरे उठता जा रहा है क्योंकि राजसी और कुलीन लोगों ने इस तरफ से अपना हाथ खींच लिया है और वे इसमें अब ज्यादा पैसा खर्च नहीं करते।

बच्चा नगमा नृत्य : यह भी हाफिजा के ढंग का एक रूपांतरित नृत्य है। इस नृत्य के अन्तर्गत एक कम उम्र का सुन्दर लड़का हाफिजा नर्तकी के साथ नाचना सीखता है। इस लड़के के लम्बे बाल होते हैं और वह भी हाफिजा नाचने वाली की सी पोशाक पहनता है। मगर इस नृत्य का साज बाज हाफिजा नृत्य के मुकाबले कुछ हल्का होता है। इसमें केवल शहनाई और ढोलक पर ही नाच चलता है। यह नाच फसल कटने के समय अधिक नाचा जाता है।

बत्तल धुमल नृत्य : यह बत्तल नामक घुमक्कड़ जाति का नाच है। ये त्यौहारों और मेलों के समय नाचा जाता है। तीस-चालीस लड़के रंग बिरंगे कपड़े पहनकर और लम्बी ऊँची टोपी पहन कर, जिसमें मोती, कौड़ी और चांद सितारे लगे होते हैं, नाच नाचते हैं। नाचने वाले धीरे-धीरे नाचते-नाचते उत्सव के झण्डे या प्रतिमा की ओर बढ़ते हैं और उसके चारों तरफ घूमते रहते हैं। नाच के साथ ढोलकी बजती जाती है और गति बढ़ने पर ढोलकी वाला भी ताल बढ़ाता है और नाचने वाले तरह-तरह की कलाबाजियाँ दिखाते हैं। कभी-कभी ढोल एकदम रुक जाता है और नाचने वाले ताल के साथ खड़े हो जाते हैं। कुछ देर बाद यह नाच फिर आरम्भ हो जाता है और मेले के अन्त तक यही सिलसिला चलता रहता है।

रूफ नाच : यह औरतों का नाच है। यह फसल कटाई व अन्य उत्सवों पर नदी के किनारे शहनाई की धुन पर नाचा जाता है। 10-15 स्त्रियाँ एक कतार में एक-दूसरे की कमर में हाथ बाँध कर आगे पीछे हट कर ठुमका लगा-लगा कर नाचती हैं। इस मौसम में छोटी-छोटी नदियों के किनारे रूफ नर्तकों के झुण्ड आते हैं और घाटियाँ संगीत व नृत्य से गूँज उठती हैं। हालांकि उत्साह और कलाबाजियों की दृष्टि से इसका मुकाबला बत्तल धुमल के साथ नहीं किया जा सकता, फिर भी इस नाच का अपना एक विशेष आकर्षण है और इसके गीतों की धुन नाच बन्द होने पर काफी देर तक कानों में गूँजती रहती है।

हिकात नाच : यह नाच गाँव के छोटे लड़के लड़कियों का सामूहिक नाच है। ये एक दूसरे का हाथ पकड़कर सिर और सीने को पीछे की ओर तान कर बिना साज संगीत के ही नाचते रहते हैं।

लोक नृत्य के लिए तैयार जम्मू के कुछ डोगरा नर्तक

डरिये नहीं, ये कोई राक्षस नहीं हैं, ये तो
भयानक चेहरे लगाये हुए लद्दाखी नर्तक हैं

जम्मू का भंगड़ा नाच : इस नाच में जम्मू की अपनी एक अलग विशेषता है। भांगड़ा नाच एक सर्वप्रिय लोकनृत्य है क्योंकि इसमें डोगरों की सैनिक प्रवृत्तियों का प्रदर्शन किया जाता है। इसे केवल पुरुष ही नाचते हैं स्त्रियाँ नहीं। मेले व त्यौहारों पर ढोल के डंके के साथ यह नाच नाचा जाता है, नाचने वालों की कलाबाजी शूरता और उत्साह से दर्शक प्रभावित हुए बिना नहीं रह सकते। नाच देखते समय लगता है जैसे नर्तकों के शरीर में कोई अद्भुत शक्ति भरदी गयी है। ये भीलों की तरह वीरता और युद्ध का प्रतीक नृत्य है।

लद्दाख का चेहरा नाच : ऊँचे-ऊँचे पहाड़ों में घिरा हुआ यह प्रदेश जहाँ बर्फीली हवाएँ चलती हैं अपने चेहरा नाच के लिए प्रसिद्ध है। नृत्य के द्वारा लद्दाखी लोग प्रकृति के प्रति भय और श्रद्धा को मुँह पर बहुरूपी नकली चेहरे लगाए नाच कर व्यक्त करते हैं। नृत्य के साथ में लम्बी तांबे की एक तुरई (स्वाम) और ढोल बजाते रहते हैं। नाच का भाव सत्य की असत्य पर विजय दर्शाता है। यह नाच बौद्ध मठों में ही होता है और इसे देखने स्थानीय लोग ही नहीं बल्कि लाहौल, कश्मीर व जम्मू आदि दूर-दूर के प्रदेशों के लोग भी आते हैं। यह नाच मठों के जगमोहन (विशेष प्रकार का आँगन) में सवेरे से रात तक चलता रहता है। इस नाच में सत्य और असत्य के बीच चल रहे द्वन्द्व का प्रदर्शन होता है और इसके नाचने वाले लामा लोग ही होते हैं।

यह नाच तुरई, डफ और ढोल के साथ शुरू होता है। 15-20 लामा काले टोप पहने हुए मंच पर नये-नये कपड़े पहन कर आते हैं और सब पर पवित्र जल छिड़कते हैं। जल का पात्र उनके हाथ में होता है। इसके बाद एक और टोली आती है जिसमें आधे मनुष्य और आधे दानव होते हैं। दानव मनुष्य को जीवात्मा की मुक्ति की राह से विचलित करने के लिए उन्हें बार-बार डराते हैं। जैसे ही जीवात्मा पाप से डर कर हारने लगती है तभी दूसरी टोली सुन्दर धवल वस्त्र पहिने व सुन्दर चेहरे लगाए आती है और अपनी शक्ति से दानवों को भगा देती है। इसके बाद भद्दी खोपड़ी, लम्बी-लम्बी उँगली और अँगूठे वाले भूत आते हैं। ये देखने में अस्थि-पिंजर जैसे लगते हैं। अस्थियों का प्रदर्शन शरीर पर चुस्त कपड़े पहन कर व पसलियों का प्रदर्शन उन्हें लाल रंग लगा कर किया जाता है। ये शव के चारों तरफ नाचते हैं और उसे खींचते व ठुकराते हैं तथा अपने भयानक भावों को दिखा-दिखा कर डराते हैं। कभी-कभी ये जोर से चीख मार कर तेज छुरे से वार करते हैं। इसके कुछ देर बाद पवित्र आत्मा के रूप में कुछ आकृतियाँ उनको मन्त्रों से मार भगा देती हैं। इसके बाद एक बारह सिर तथा नीले चेहरे वाला यमराज नामक नरक का देवता हाथ में तलवार लिए लाशों पर आकर खड़ा हो जाता है। वह तलवार को चला कर लाशों को काटना चाहता है कि फौरन दूसरा आकर उसे मार कर भगा देता है। इसके बाद कॉमिक (प्रहसन) शुरू होता है। उसमें एक बूढ़ा मास्टर मोटे जोकर के रूप में मंच पर आता है। उससे आसानी से चला फिरा भी नहीं जाता। उसके साथ स्कूल के छोटे-छोटे बच्चे लाल गुलाबी चेहरे लगाए आते हैं। वह एक जगह बैठकर अपने शिष्यों

को पढ़ाना शुरू करता है। ये लोग उसका मजाक उड़ाते हैं और वह छड़ी लेकर उनके पीछे दौड़ता है। इस प्रकार काफी देर तक इस तरह के कॉमिक चलते रहते हैं।

ऐसा है कश्मीर का मस्ती भरा जीवन। तस्वीर के दो रुखों की तरह कश्मीर में जहाँ सुन्दरता है वहाँ गरीबी भी है पर लोकप्रिय प्रधान मन्त्री बख्शी गुलाम मुहम्मद के नेतृत्व में कश्मीर की जन सरकार ने गरीबी के खिलाफ जिहाद बोल रखा है। राज्य में अनेकों विकास योजनाएँ चल रही हैं। प्रगति के पथ पर जम्मू और कश्मीर देश के अन्य राज्यों के साथ कन्धे से कन्धा मिला कर चल रहा है।

स्थानीय शब्दावली

स्थानीय नाम	विवरण और व्याख्या
अम्बरी	सेब की किस्म
अम्ब्रू	सेब की किस्म
उग्गू	सामाजिक बहिष्कार
ओगरा	घर के नीचे का भाग जिसमें मवेशी बँधे रहते हैं
औरी	भेड़ बकरियों का बाड़ा
कप्पी	सरसों की पत्ती और चावल का फोक
करेवा	राजपूतों का अनियमित विवाह
करथी	पंजाब का लोकनृत्य
कारकुन	कामगर लोग
कुल्थ	कुल्थी
कुरहट	मवेशी घर
कोदल	देसी हल
कांगर	सिंघाड़े की एक प्रजाति
खारसू	बलूत की एक किस्म
खेर	बीज बोने का एक देशी तरीका
गद्दी	पंजाब का लोकनृत्य
गनहर	अमरंथ
गिद्धा	पंजाब का लोकनृत्य
ग्रिम	जौ की एक किस्म
गुपन निंद	कीचड़ वाले खेत
गुर्ज	क्लब
गोहरा	बिटौरा
चाला	नवम्बर में बोई जाने वाली मटर
चीर	रंगीन पगड़ी
चूबा	चपकन जैसी जनानी पोशाक
चेरा भोतून	बाल्टिस्तान का कश्मीरी नाम
चो	पहाड़ी झरना
चंग	जौ की देसी शराब
छापर	गाँव का तालाब
जाच	त्यौहार

जियारत	पवित्र स्थान
जोट	लालटेन या दीपक
झिजनी	चावल की लाल प्रजाति
डेम्ब	एक खास तरह की भूमि
डोगरू	देसी सिंघाड़ा
डोंगे	यात्रियों की नाव
ढाल	ढेले फोड़ने वाली जुताई
तोरिया	तिलहन की एक किस्म
तुरुम्बा	जई या कोदो
थिप्पु	रुमाल
दाब कराना	खरपतवार को हटाना
दाग	मवेशी
दुद अम्बरी	सेब की किस्म
दोपाई	दोपहर का भोजन
दंदराल	लकड़ी का दाँतेदार देसी औजार
धार	चरागाह
धानक	जुलाहे
धातू	औरतों द्वारा सिर पर बाँधे जाने वाला रुमाल
नाबादी ट्रेल	सेब की किस्म
नुहारी	नाश्ता
पफ	खमीर
पट्टू	कम्बल
पाटन	जूता
पुल्हरू	सैंडलनुमा जूता, एट्टा
पोरा	बीज बोने की नली
पोकर	कीचड़ व घास के ढेले
फिमरा	चावल व सब्जी के साथ गेहूँ और अमरंथ का मिश्रण
बाघू	मोटे अनाज की एक किस्म
बोलू	बुलाक जैसा नाक का आभूषण
बेझर	मिला जुला चना और जौ
बाँखल कियार	झरनों द्वारा सिंचित धरती
बियाली	शाम का खाना, रात का खाना
पबीवाई	रामपुर तहसील की औरतों का पहनावा
भरोटा	एक लकड़ी का यंत्र

भरथ	दाल की एक किस्म
भुकरां कथेला	खेत के ढेले फोड़ने वाला यंत्र
माच	मिट्टी इकसार करने वाला पटरा
माह	उड़द की दाल
मालमू	सेब की किस्म
मेजन	पतझड़ का आगमन
मंडल	मसाला
मंजा	खाट
रम्बा	खुरपे
राढ़	तैरते हुए बागान
रंगन	दाल
लान	खेती की साझेदारी
वत्तर	जोतने योग्य भूमि
सरजमी	काली मिट्टी
सुर या लुगरी	हल्की शराब
सोहागा	पाटा
संजियार	बरसात के इकट्ठे किये गये पानी से सिंचित धरती

पारिभाषिक शब्दावली

अर्ध उष्णकटिबंधीय	Semi Tropical
अम्लीय	Acidic
अर्धआर्कटिक	Semi Arctic
अजीवाश्मीय, फ़ॉसिल रहित	Unfossiliferous
अनार	Pomegranate
अर्ध शुष्क	Semi-arid
अस्थि पंजर,	Skeleton
अनुसंधान केन्द्र	Research Station
अभ्रकी स्लेटें	Micaceous Slates
अवपतन	Precipitation
आकृति	Configuration
आग्नेय	Igneous
आर्द्रता	Humidity
उपोष्ण कटिबंधीय	Sub-Tropical
उर्वर	Fertile
उर्वर तलछट	Fertilizing silt
उपजातियाँ	Sub-castes
उप पर्वतीय	Sub-Montane
तटस्थ	Neutral
उपरिस्थ	Overlain
ऊँचाई	Elevation
उच्च भूमि	High Lands
ऊँचाई, उच्चता	Altitude
ऐमोनाइट	Ammonite
अंकुरण	Germination
अंधविश्वास	Superstition
कड़ियाँ	Rafters
कुल	Clans
कल्लर या लवण संचयन	Accumulation of salt
कर्म काण्ड	Rituals
क्वार्टजाइट	Quartzite
कायांतरित	Metamor[illegible]hic

कुहरा	Fog
कुटाई	Husking
कूड़ा	Litter
कूट्टू	Buck-wheat
कूँड	Furrows
कैलकैरियस, चूनेदार	Calcareous
कृषि कर्म	Husbandry work
कंकड़	Pebbles
कृषि क्रियायें	Inter-culture
कंकर, मिट्टी	Grit
खरपतवार निकालना	Weeding
खनिज पदार्थ	Mineral matter
खेती योग्य भूमि	Arable-land
खादर	Ravine land
खाद्यान्न	Cereals
गलित जीवांश, ह्यूमस	Humus
गहाई	Threshing
गहरी गलीदार भूमि	Deeply ravine land
ग्रन्थि वाला (गांठदार)	Nodular
ग्रेनाइट का चूरा	Granite dust
घूरे की खाद	Farmyard Manure
घना	Dense
चारण	Minstrel
चालू परती	Current Fallow
चारा	Fodder
चिकनी मिट्टी के ढेले	Clods
चूना पत्थर	Lime Stones
ज्वालामुखी	Volcanic
जल निकास	Drainage
जमावटें	Deposits
जलोढ़क	Alluvium
जल-थलचर, उभयचर	Amphibious
जल सार	Water extracts
प्रजाति	Species
जीवाश्म, फासिल	Fossil
झांझ	Cymbols

झीनी या छिद्रल	Porous
छिप्पेदार चट्टान	Squalor
तलछटी दुमट	Silt Loam
तलछटी, कल्कीय	Sedimentary
तलछटी अंश	Silt Fraction
ताप क्रिया	Thermal Action
तिल	Sesamum
तेजाबी	Acidic
तोरिया बीज	Rapeseed
दलिया	Porridge
देवता	Deity
नट	Acrobat
नमी	Moisture
नकदी फसल	Cash Crop
निपुणता	Ingenuity
नीड़स्थ	Nestling
नधन	Penetrate
पर्वत प्रक्षेप	Mountainous spurs
पठार	Plateau
परस्पर सम्बन्धी	Inter related
पहाड़ी चरागाह्	Hill Pastures
पाकशाला	Culinary
पाडसोल	Podsol
पालन पोषण	Rearing
पौद	Seedling
प्रस्तर विद्या	Lithologics
फास्फोरिक तेजाब	Phosphoric Acid
बर्फ का जमाव	Snow accumulation
बलूत	Oak
बहुवर्णी, चितकबरा	Variegated
बहु पुंकेसर	Polyandrous
बलुई पट्टी	Dust Fringe
बाँध	Bunds
बाई कार्बोनेट	Bicarbonate
बारानी खेती	Dry Farming
बागवानी	Horticulture

बीज दर	Seed rate
बीज बखेरना	Broadcast
बोलियाँ	Dialects
भारी, स्थूल	Massive
भू-भाग	Tract
भूमिगत	Subterranean
मठ	Monastery
मंदिर (चैत्य)	Shrine
मल की खाद, विष्ठाचूर्ण	Poudrette
मलवा, डैट्रीटस	Detritus
मामूली क्षारीय	Slightly alkaline
मिट्टी की प्रतिक्रिया	Soil reaction
मिट्टी की पर्तें	Soil crust
मिट्टी का नमूना	Soil sample
मिट्टी चढ़ाना	Earthing
मूर्ति, बिम्ब	Image
मूसली और ओखली	Pestle and Mortar
मूँगा प्रवाल	Coral
मैगनेशियम	Magnesium
मैंगनीज	Manganese
मैली	Scum
मोटे अनाज	Millets
निवास	Habitations
राजगिरी	Masonry
रासायनिक उर्वरक	Chemical Fertilizer
रूपाभास	Physiognomy
रेतीली दुमट	Sandy loams
रेतीला पठार	Sandy upland
लाल स्फटिक (क्वारटजाइट)	Red Quartzite
राख	Ash
लिपि या लेख	Scriptures
लोक कथा	Folk lore
वर्षानुवर्षी	Perennial
वर्षा सिंचित	Rain-Fed
विकिरण	Radiation
विघटन	Decomposition

वंशगत	Genealogical
वंशज, संतति	Descendants
शाकीय वनस्पति	Herbaceous Vegetation
शीतोष्ण क्षेत्र	Temperate Zone
शीतोष्ण फल	Temperate fruit
शुष्क पहाड़ियाँ	Dry Hills
शुष्क पटल-भूमियाँ	Arid table lands
शुष्कावस्था	Arid conditions
स्तर	Stratum
स्लेटी पत्थर	Shales
पीट	Peat
सम्प्रदाय, पंथ	Cult
सतह की मिट्टी	Surface soil
सबाथू	Sabathu
सिंचित क्षेत्र	Irrigated area
सिलिकामय	Siliceous
सीढ़ीदार खेत	Terraces
सुगंधित, सुगंध	Perfume
साइडर	Cider
सोडियम क्लोराइड	Sodium Chloride
संगम	Confluence
संक्रमण	Transition
संस्तरित	Bedded
श्रृंग	Crag
हल्की वर्षा	Scanty rainfall
हवा द्वारा कटाव	Wind erosion
क्षरण	Erosion

Central Plantation Crops
Research Institute Regional
S... ...-673011
A... No. 980
Date